ISSN : 2321-0443
UGC Care list Journal

सत्यमेव जयते

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

संयुक्तांक 66-67

(अप्रैल -जून एवं जुलाई-सितंबर, 2020)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार
COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY
MINISTRY OF EDUCATION
(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)
GOVERNMENT OF INDIA

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक 66-67

अप्रैल -जून एवं जुलाई-सितंबर , 2020

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

2020

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION

(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

ज्ञान गरिमा सिंधु 'मानविकी और सामाजिक विज्ञान' की एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है- हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी एवं अन्य छात्रों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञान-संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश-

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विषयों से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 से 3000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र-व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएँगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए प्रोत्साहन के तौर पर आयोग के नियमानुसार मानदेय दिया जाएगा। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    संपादक, ज्ञान गरिमा सिंधु

    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

    पश्चिमी खंड - 7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066

11. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक / पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

पत्रिका का शुल्क :	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा
सामान्य ग्राहकों / संस्थाओं के लिए प्रति अंक	Rs 14.00	पौंड 1.64 डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	Rs 50.00	पौंड 5.83 डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	Rs 8.00	पौंड 0.93 डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	Rs 30.00	पौंड 3.50 डॉलर 2.88

वेबसाइट :
www.cstt.education.gov.in
कॉपीराइट : ©2019
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड -7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066

बिक्री हेतु पत्र-व्यवहार का पता :
प्रभारी अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड -7,
रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066
टेलीफोन - (011) 20867172
फैक्स - (011) 26105211/246

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। संपादक मंडल की इनसे सहमति आवश्यक नहीं है।

अध्यक्ष की कलम से

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग अपने स्थापना काल से ही ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा, राजनीति, पर्यावरण तथा मानव जीवन आदि को दृष्टि में रखकर राष्ट्रीय स्तर पर तकनीकी शब्दावली के निर्माण में संलग्न हैं। शब्द- निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है, तथापि आयोग शब्द- रचना, परिवर्तन तथा सटीक अर्थ- सम्प्रेषणीय शब्दावली निर्माणकर प्रकाशन के माध्यम से जन साधारण को अवगत कराता रहा है। आयोग, आधुनिक विषयों के लिए न केवल शब्द- निर्माण, बल्कि आधुनिक विषयों की जानकारी जन- सामान्य तक पहुँचानें के लिए कोश- निर्माण के साथ पुस्तक तथा पत्रिकाओं के प्रकाशनों का कार्य भी करता है। आयोग की पत्रिकाएँ 'ज्ञान गरिमा सिंधु' मानविकी और सामाजिक विज्ञान से संबंधित विभिन्न विषयों के लिए तथा 'विज्ञान गरिमा सिंधु' विज्ञान एवं तकनीकी विषयों के लिए पाठकों और जिज्ञासुओं को उच्च स्तरीय पठनीय विषयवस्तु प्रस्तुत करती हैं एवं हिंदी में विभिन्न विषयों की मानक शब्दावली के प्रयोग से भी परिचित कराती हैं।

मुझे प्रसन्नता है कि आयोग 'ज्ञान गरिमा सिंधु' त्रैमासिक पत्रिका का 66 व 67वाँ अंक, संयुक्तांक रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है। इस संयुक्तांक में प्रमुखत: नवीन समसामयिक विषयों को स्थान मिला है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा कोविड काल में शिक्षा जैसे नवीन विषयों को लेकर वर्तमान, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं भाषायी विषयों पर आलेख इस अंक में संकलित किए गए हैं। आशा है यह संयुक्तांक विद्यार्थियों, शिक्षकों, अनुसंधानकर्ताओं तथा सामान्य पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

(प्रो. एम. पी पूनिया)
अध्यक्ष 26/05/22
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादकीय

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की त्रैमासिक पत्रिका "ज्ञान गरिमा सिंधु" का प्रस्तुत अंक 66-67वें अंकों को मिलाकर संयुकतांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें संस्कृति, शिक्षा, साहित्य, समाज एवं समसामायिक विषयों से संबंधित आलेखों को स्थान दिया गया है। विगत दो वर्ष सम्पूर्ण प्रगति अवरुद्ध सी हो गयी। किंतु शिक्षा विकास की दृष्टि से ये दो वर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं। भारतीय प्राचीन गरिमा के संरक्षण, शिक्षा के उन्नयन तथा भावी राष्ट्रीय स्वरूप के आकलन के लिए इसरो के पूर्व अध्यक्ष डॉ. कस्तूरी रंगन की अध्यक्षता में प्रस्तुत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस काल की एक बड़ी उपलब्धि है। इसी प्रकार कोविड काल में शिक्षा की निरंतरता के लिए ऑनलाइन शिक्षा एक नवाचार के रूप में सामने आया है। पत्रिका के प्रस्तुत अंक में इन दोनों संदर्भों पर आलेख हैं। नारीवाद का गांधीवादी विमर्श, समाज के उपेक्षित वर्ग तृतीय लिंग (किन्नरों) पर अनुसंधान, मूल्य शिक्षा, शिक्षा विकास समन्वय कार्य़क्रम, लोकतांत्रिक समाज की सैद्धांतिकी, एकात्मक मानववाद की प्रासंगिकता तथा स्वदेशी और आत्मनिर्भर भारत जैसे लेख से सज्जित इस अंक में मानविकी और सामाजिक विज्ञान के महत्वपूर्ण पक्षों पर विषय सामग्री प्रस्तुत की गई है। अनुसंधान संबंधी कई आलेख शोधकर्ताओं को विविध विषयों पर शोध के लिए प्रेरित करने वाले हैं।

आलेखों के संकलन में भारत के भविष्य स्वरूप निर्धारण पर पाठकों को विचार करने के लिए स्तरीय सामग्री प्राप्त होगी ऐसी आशा है।

डॉ.प्रेमनारायण शुक्ल
सहायक निदेशक

परामर्श एवं संपादन मंडल

प्रधान संपादक

प्रोफेसर एम. पी. पूनियां

अध्यक्ष

संपादक

डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, सहायक निदेशक

संपादक मंडल

प्रो. आर. पी. पाठक
शिक्षा संकाय
श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रीय संस्कृत
विश्वविद्यालय, नईदिल्ली

डॉ. अरविन्द नारायण मिश्र
सहायक प्रोफेसर,
शिक्षाशास्त्र विभाग,
उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय ,
हरिद्वार (उत्तराखंड)

डॉ. वेद प्रकाश
पूर्व सहायक निदेशक (भाषा)
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार, नईदिल्ली

श्री. के. के. सिंह
पूर्व उपनिदेशक (भाषा)
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
नई दिल्ली

डॉ. मनोरमा मिश्रा
सहायक प्रोफेसर ,हिंदी विभाग
मिहिरभोज पी.जी.कॉलेज ,गौतम बुद्ध नगर
उत्तर प्रदेश

डॉ. अमितकुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग,
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज,
प्रयागराज, उ.प्र.

डॉ. गोपीनाथ शर्मा
पूर्व प्रोफेसर ,जगत गुरू रामानंदाचार्य सास्कृत विश्वविद्यालय
जयपुर (राजस्थान)

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेखशीर्षक	लेखक	पृष्ठसं.
1	भारतीय वांग्मय में विद्या की संकल्पना	डॉ. पतंजलि मिश्र	1
2	एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता	डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय	9
3	नारीवाद की अवधारणा एवं स्वरूप	डॉ. तृप्ति त्रिपाठी	14
4	संस्कृत भाषा और गढ़वाली का साहचर्य: बहुभाषिकता के संदर्भ में	डॉ. अरविन्द नारायण मिश्र	19
5	संत साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली और संत दरिया साहब	विवेक शर्मा	26
6	नारीवाद का गांधीवादी विमर्श	डॉ. सुमन कुमार एवं डॉ. सुशांत कुमार झा	35
7	सुशासन,सूचना और नागरिक अधिकार : लोकतान्त्रिक समाज की सैद्धांतिकी	निकिता जायसवाल एवं डॉ. विवेक जायसवाल	41
8	स्वदेशी और आत्मनिर्भर भारत : शैक्षिक संदर्भ	डॉ.संजय शर्मा एवं डॉ. अश्वनी कुमार	49
9	कालिदास द्वारा वर्णित प्रमुख शिक्षण विधियाँ एवं उनकी प्रासंगिकता	डॉ. अमित कुमार जायसवाल	60
10	भारतीय शिक्षा : अतीत से वर्तमान	डॉ. विनोद कुमार सिन्हा	67
11	प्राथमिक स्तर पर भाषायी कौशलों के विकास की युक्तियाँ	डॉ. मोनिका पारिक	73
12	ऑनलाइन और ऑफलाइन आधारित विद्यालय अनुभव कार्यक्रम : कोविड महामारी के समय में सेवा-पूर्व छात्राध्यापकों के प्रत्यक्षण का एक अध्ययन	डॉ. मीना सहरावत और डॉ. एम.एम. रॉय	79
13	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : मुद्दे और चुनौतियाँ	डॉ. अमित कुमार	90

14	ऑनलाइन माध्यम से अधिगम ;चुनौतियाँ और समाधान	डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार	96
15	प्राचीन भारतीय शिक्षा में शिल्पों का शिक्षण-शास्त्र	डॉ. अजीत कुमार बोहत	103
16	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विविध आयाम	डॉ. मनोरमा मिश्रा	109
17	'शिक्षक विकास समन्वयक ' कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षकों की सतत व्यावसायिक शिक्षा : सिखाने की आजीवन यात्रा	डॉ. एम.एम. रॉय औरडॉ. मीना सहरावत	115
18	भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिष्य की संकल्पना	डॉ. प्रवीण कुमार तिवारी	125
19	वर्तमान युग में मूल्यपरक शिक्षा	डॉ. के.सी. गौड़	134
20	किन्नरों के शैक्षणिक अधिकार : मानव अधिकारों के संदर्भ में	डॉ. प्रियंका सिंह एवं शोधार्थी सुधा मिश्रा	140
21	वर्तमान युग में राष्ट्रीय समस्याएं एवं समाधान	डॉ. सुनीता गौड़	150
	विविध- **ज्ञान-चर्चा :**		
1	प्रभामंडल	डॉ. विजय कुमार उपाध्याय	155
2	खिचड़ी - एक संपूर्ण और पौष्टिक व्यंजन	सतीशचन्द्रसक्सेना	159
3	पत्रिकाएँ (त्रैमासिक) Journals (Quarterly) बिक्रीसंबंधीनियम / Rules Regarding Sales		162
4	पत्रिकाकीसदस्यताहेतुग्राहक/ अभिदानफार्म		165
5	प्रकाशनविभागकेबिक्रीकेंद्र / Sale Counters of Department of Publication		166

भारतीय वाङ्मय में विद्या की संकल्पना

डॉ. पतंजलि मिश्र

भारतीय वाङ्मय में विद्या के स्थान की विवेचना की जाए तो यह बात सहजतः स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय ज्ञान-परम्परा में विद्या का स्वरूप अत्यंत उत्कृष्ट है। आज हम विद्या एवं शिक्षा को समानार्थी समझते हैं किन्तु यदि हम भारतीय वाङ्मय का आद्योपांत निरीक्षण करते हैं तो हमें यह आभास होता है कि शिक्षा एवं विद्या, दोनों अलग- अलग संप्रत्यय हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश काल में किसी विशिष्ट उद्देश्य के वशीभूत विद्या के स्थान पर शिक्षा को स्थापित किया गया। स्वंतत्रता के पश्चात् ज्ञान-मनीषियों द्वारा भारतीय सन्दर्भों में विद्या को समझने का प्रयास नहीं किया गया। परिणाम यह हुआ कि आज भी सामान्य जनमानस विद्या एवं शिक्षा को समान अर्थों में उपयोग करता है।

यदि हम विद्या और शिक्षा का अर्थ के सन्दर्भ में व्याकरण की दृष्टि से विवेचना करें तो पाते हैं कि इनके अर्थों में भेद है। विद्या शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की विद् धातु से हुई है। विद् धातु में क्यप् एवं टाप् का जब योग होता है तो विद्या शब्द निष्पन्न होता है । इसका अर्थ है "जाना हुआ" अर्थात् अवगम्

विवेचना करते हैं तो पाते हैं कि शिक्षा शब्द की उत्पत्ति "शिक्ष्" धातु में 'अ एवं टाप् प्रत्यय के संयोग से हुई है। इसका अर्थ होता है अधिगम, अध्ययन या किसी काम को करने के योग्य होने की इच्छा (आप्टे, 1996, पृ. सं. 1015)।

संसार में जो कुछ भी विद्यमान है वह सब विद्या के माध्यम से ही जानने योग्य है। यहाँ तक कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की भी प्राप्ति विद्या से ही संभव है। अतएव वैदिक साहित्य में विद्या के स्थान की विवेचना करना आवश्यक है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में विद्या शब्द का प्रयोग संज्ञा के अर्थ में ही हुआ है। विद्या को धर्म के लक्षणों में भी स्थान देते हुए वर्णित किया गया है कि 'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः, धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् (मनुस्मृति -6.92)। अर्थात् धृति (धैर्य), क्षमा (अपना अपकार करने वाले का भी उपकार करना), दम (हमेशा संयम से धर्म में लगे रहना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (भीतर और बाहर की पवित्रता), इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों को हमेशा धर्माचरण में लगाना), धी (सत्कर्मों से बुद्धि को

बढ़ाना), विद्या (यथार्थ ज्ञान),सत्यम् (हमेशा सत्य का आचरण करना) और अक्रोध (क्रोध को छोड़कर हमेशा शांत रहना)। इसका तात्पर्य है कि विद्या की उपासना करना भी एक तरह से धर्म का अनुसरण करना है (जैसा कि ईशोपनिषद् 9 तथा 11 में वर्णित है)। ईशोपनिषद् में अति की वर्जना करने की सलाह दी गई है। ऋषि वर्णन करते हैं कि 'अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते, ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः' (ईशोपनिषद्-9)। इसका अभिप्राय है कि जो अविद्या का अनुसरण करते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो केवल विद्या में ही रत रहते हैं, वे उससे भी अधिक घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं। इससे ऋषि का मंतव्य, स्वयं को किसी भी प्रकार की आसक्ति से बचाने से है। उपनिषद् में अविद्या का अर्थ मात्र अज्ञान से नहीं है ,और न ही विद्या का अर्थ मात्र ज्ञान से है। अविद्या से उपनिषद् का अभिप्राय भौतिक ज्ञान से है। अविद्या का अर्थ है ऐसी विद्या जिसे स्वयं नहीं जाना जा सके। उस ज्ञान को उपनिषद् विद्या कहते हैं, जो अपने में ही मुक्ति है। जो ज्ञान स्वयं में मुक्ति नहीं है वह विद्या नहीं है। अतः प्रश्न यह उठता है कि फिर उपासना किसकी की जानी चाहिए? विद्या की अथवा अविद्या की ? इसका स्पष्टीकरण देते हुए ऋषि का मत है कि 'अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यया, इति शुश्रुम धीराणां येनस्तद्विचचक्षिरे (ईशोपनिषद्-10)। विद्या का फल अन्य है तथा अविद्या का फल और ही है। ऐसा हमने उन धीर पुरुषों (बुद्धिमान्पुरुषों) से सुना है, जिन्होंने हमें ऐसा समझाया था। इसके संदर्भ में ऋषि ने विद्या एवं अविद्या शब्द के भेद को स्पष्ट करते हुए कहा है, 'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह, अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते (ईशोपनिषद्-11)। विद्या एवं अविद्या दोनों के गुणों को समझाते हुए स्पष्ट किया है कि जो विद्या और अविद्या, दोनों को ही एक साथ जानता है, वह अविद्या के माध्यम से मृत्यु को पार करके विद्या से अमृतत्त्व (देवत्व) प्राप्त कर लेता है। उक्त मंत्र का गूढ़ार्थ समझने के लिए प्रथमतः इस बात पर ध्यान देना होगा कि यहाँ पर 'विद्या' शब्द विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सामान्यतः किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना ही विद्या अर्जित करना माना जाता है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों में द्यूतविद्या, चौरविद्या जैसे विषयों का भी उल्लेख मिल जाता है, किंतु इन विद्याओं की व्यापक सामाजिक संदर्भ में वह अर्थवत्ता नहीं है जो व्याकरण, विज्ञान, चिकित्सा आदि के अध्ययन में निहित है। वस्तुतः द्यूतविद्या जैसे विषयों को अन्य हितकर विधाओं की तरह विद्या शब्द से संबोधित किया जाना ही अप्रिय लगता है। इन विषयों को अविद्या कहना अधिक उचित होगा। इस स्थिति में

अविद्या का अर्थ भिन्न होगा ऐसा ज्ञान जो जानने योग्य नहीं है, यद्यपि उस ज्ञान के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है, अविद्या है।

मनुष्य का अंतिम ध्येय ईश्वर से साक्षात्कार और उसी में विलीन हो जाना है। आध्यात्मिक प्रकृति के इस ज्ञान का अर्जन ही विद्या है। जो ज्ञान परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग नहीं दिखाता है वह विद्या कहे जाने योग्य नहीं है। लौकिक प्रयोजनों की सिद्धि से जुड़े अन्य सभी ज्ञानमार्ग ऐहिक महत्ता तो रखते हैं, किंतु विद्या के उपर्युक्त सीमित अर्थ के अनुसार 'विद्या' कहे जाने योग्य नहीं हैं। ऐसा ज्ञान इस संसार में भौतिक उपलब्धि तो प्रदान करेगा, किंतु वह आध्यात्मिक उन्नति का आधार सिद्ध नहीं होगा। इसलिए ऐसा ज्ञान अविद्या नाम से संबोधित किया जाना चाहिए। विद्या-अविद्या के इस भेद को रेखांकित करने के साथ-साथ वैदिक चिंतक अविद्या के महत्त्व को स्वीकारते हैं। दरअसल, अविद्या तथा विद्या, दोनों को ही सम्यक् रूप से स्वीकारना चाहिए और उनके माध्यम से क्रमशः ऐहिक जीवन तथा पारलौकिक अस्तित्व को सार्थक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। यही संदेश इस मंत्र में दिया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् का ऋषि कहता है कि 'द्वे अक्षर ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे, क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः (5.1.1)। अतः जो परमेश्वर, ब्रह्मा से भी अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, सीमारहित और अविनाशी हैं अर्थात् जो देशकाल से सर्वथा परे हैं, जिनका कभी किसी प्रकार से भी विनाश नहीं हो सकता तथा जिन परमात्मा में अविद्या और विद्या दोनों विद्यमान हैं, वे पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। इस मंत्र में परिवर्तनशील, उत्पत्ति-विनाशशील क्षरतत्त्व को अविद्या कहा गया है, क्योंकि वह जड़ है। उसमें विद्या का, ज्ञान का सर्वथा अभाव है। उससे भिन्न जो जन्म-मृत्यु से रहित है, वह अविनाशी कूटस्थ तत्त्व (जीवसमुदाय) विद्या के नाम से जाना गया है, क्योंकि वह चेतन है। उपनिषदों में जगह-जगह उसका विज्ञानात्मा के नाम से वर्णन आया है। यहाँ श्रुति ने स्वयं ही विद्या और अविद्या को परिभाषित कर दिया है।

भारतीय वाङ्मय में विद्या के उद्देश्य को लेकर भी गंभीर मंथन किया गया है। विष्णु पुराण, विद्या एवं अविद्या में स्पष्ट अंतर न समझ पाने का कारण मनुष्य की अज्ञानता को मानता है। विष्णुपुराण में वर्णित है कि 'विद्या बुद्धिरविद्यायाम् ज्ञानान्तात जायते, बालोग्निम् किम् न खद्योत मसुरेश्वरमन्यते (1.19.40)। अर्थात् अज्ञान के ही कारण मनुष्यों की अविद्या में विद्या-बुद्धि होती है। बालक क्या अज्ञानतावश खद्योत को ही अग्नि नहीं समझ लेता है? इस श्लोक में ऋषि उन पर व्यंग्य करता है, जो अविद्या को ही अज्ञानतावश विद्या का रूप मानते हैं। विष्णुपुराण में विद्या को मुक्ति की साधिका के रूप में वर्णित किया गया है। विष्णुपुराण के अनुसार 'तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये, आयासायापरं कर्म

विद्यान्न शिल्पनैपुणम् (1.19.41)। अर्थात् कर्म वह है जो बन्धन का कारण न हो और विद्या वह है जो मुक्ति की साधिका हो। इसके अतिरिक्त कर्म तो परिश्रमरूप तथा अन्य विद्याएँ, कला-कौशल मात्र हैं अर्थात् जिस कर्म से मनुष्य बन्धन में नहीं बंधता वही सच्चा कर्म है। जो मनुष्य के लिए मुक्ति का कारण बनती है वही सच्ची विद्या है। शेष कर्म तो बंधन का ही कारण बन जाते हैं, जिनके करने से प्राय: चिन्ता और कष्ट ही प्राप्त होते हैं।

वैदिक संस्कृत वाङ्मय में जितना महत्व विद्या का है, क्या उतना ही महत्व लौकिक संस्कृत वाङ्मय में विद्या को प्रदान किया गया है ? लौकिक संस्कृत साहित्य में हितोपदेश एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। हितोपदेश के प्रथम श्लोक में भगवान् शिव की स्तुति एवं द्वितीय श्लोक में हितोपदेश के महत्त्व का उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात् तृतीय श्लोक से लेकर सप्तम श्लोक तक विद्या की महत्ता का वर्णन मिलता है। अतः अन्य प्रयत्नों के बजाय लेखक ने तृतीय श्लोक से लेकर सप्तम श्लोक तक की विवेचना करने का प्रयास किया है। हितोपदेश के तृतीय श्लोक 'अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्, गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् के अनुसार बुद्धिमान् मनुष्य विद्या एवं धन अर्जित करने का विचार ऐसे करे जैसे कि वह जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से मुक्त हो। किंतु साथ में धर्माचरण भी ऐसे करे जैसे कि काल उसके सिर पर ही विराजमान हो और कभी भी उसे इहलोक से उठा सकता है। तात्पर्य यह है कि मृत्यु अवश्यंभावी है और कभी भी आ सकती है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए मनुष्य धर्म-कर्म में संलग्न रहे। मृत्यु के भय से पुरुषार्थ करना न छोड़े और जब तक जीवन है तब तक वह विद्या एवं धन के लिए प्रयत्नशील रहे। अतः स्पष्ट है कि विद्या का महत्व भौतिक जीवन में भी धन के समक्ष देखा गया है। जिस प्रकार हम धन का अर्जन करने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहते हैं, उसी प्रकार हमें विद्या-अर्जन हेतु भी सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। हितोपदेश में विद्या-रूपी धन को सर्वोत्तम धन की संज्ञा देते हुए उल्लेख किया है कि 'सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्, अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा' (श्लोक-4)। इसका तात्पर्य है कि विद्वान् लोग कभी न चुराए जा सकने, अनमोल होने तथा कभी क्षय न होने के कारणों से सभी द्रव्यों (पदार्थों), यानी सुख-संपदा-संतुष्टि के आधार में से विद्या को ही सर्वोत्तम द्रव्य निर्धारित करते हैं। वस्तुतः विद्या है तो बहुत कुछ संभव है, इस मत पर विद्वज्जन हमेशा सहमत रहे हैं। मान्यता है कि विद्याहीन मनुष्य कई मायनों में निरर्थक जीवन जीता है। लेकिन हितोपदेश में विद्या को सर्वोत्तम धन की संज्ञा देते हुए, इसे भाग्योदय में सहायक भी बताया गया। हितोपदेश का पंचम श्लोक निर्देशित करता है कि 'संयोजयति विद्यैव नीचगापि नरं सरित्, समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम्' (हितोपदेश-5)। अर्थात् जिस प्रकार नीचे की ओर बहती नदी अपने साथ जैसे तृण आदि तुच्छ पदार्थों को समुद्र से जा मिलाती है, ठीक वैसे ही विद्या भी अधम मनुष्य को राजा (श्रेष्ठ या उत्तम पुरुष) से मिलाती है और उससे ही उसका भाग्योदय होता है। हितोपदेश में

लिखा है 'विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्, पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्' (हितोपदेश-6)। अर्थात् विद्याध्ययन से मनुष्य विनम्रता तथा सद्व्यवहार प्राप्त करता है, जिसके माध्यम से उसे योग्यता प्राप्त होती है। योग्यता से धनोपार्जन की सामर्थ्य बढ़ती है और जब धन प्राप्त होता है तो धर्मसम्मत कर्म कर पाना संभव होता है, जिससे अंततः सुख तथा संतोष की प्राप्ति होती है। हितोपदेश में विद्या की शस्त्र-विद्या की तुलना एवं विवेचना शास्त्र-विद्या से की गई है,- 'विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विद्ये प्रतिपत्तये, आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा' (हितोपदेश-7)। अर्थात् शस्त्र-विद्या एवं शास्त्र-विद्या यानी ज्ञानार्जन, दोनों ही मनुष्य को सम्मान दिलवाती हैं, किंतु वृद्धावस्था प्राप्त होने पर इनमें से प्रथम यानी शस्त्र-विद्या (तलवार, गदा, धनुष इत्यादि शस्त्रों के सञ्चालन से सम्बंधित विद्या) उसे उपहास का पात्र बना देती है, जब उस विद्या का प्रदर्शन करने की उसकी शारीरिक क्षमता वृद्धावस्था के कारण नष्ट-प्राय हो जाती है। लेकिन शास्त्र-विद्या (विभिन्न शास्त्रों यथा वेद, वेदांग, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथों इत्यादि से सम्बंधित विद्या) सदा ही उसे आदर का पात्र बनाये रखती है। शस्त्र-विद्या के लिए दैहिक क्षमता तथा बल की आवश्यकता रहती है। प्राचीन काल में अस्त्र-शस्त्र चलाना एक प्रमुख कार्य रहा होगा। आज उनकी बातें सामान्यतः नहीं की जाती हैं। विभिन्न प्रकार के बौद्धिक कार्यों की महत्ता इस युग में बहुत बढ़ चुकी है। भर्तृहरि ने अपने ग्रन्थ 'नीतिशतकम्' में भी विद्या के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है 'येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः; ते मर्त्यलोके भुविभारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति' (श्लोक-13)। जिसका तात्पर्य यह है कि जिन लोगों के पास न तो विद्या है, न तप, न दान, न शील, न गुण और न धर्म। वे लोग इस पृथ्वी पर भार स्वरूप हैं और मनुष्य के रूप में मृग अर्थात् पशु की तरह विचरण करते रहते हैं। भर्तृहरि द्वारा रचित नीतिशतकम् का 20वाँ श्लोक उल्लेख करता है - 'विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम् विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः, विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम् विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः। जिसका अर्थ है कि विद्या मनुष्य का विशिष्ट रूप है, गुप्त धन है। वह भोग देने वाली, यशदात्री और सुखकारक है। विद्या गुरुओं का गुरु है, विदेश में वह मनुष्य की बंधु है। विद्या परदेवी के रूप में है; राजाओं में विद्या की पूजा होती है, धन की नहीं। इसलिए विद्याविहीन व्यक्ति पशु स्वरूप ही है।

प्रथम आचरण के लिए तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है कि 'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति, सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः; आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेसीः, सत्यान्न प्रमदितव्यम्, धर्मान्न प्रमदितव्यम्; कुशलान्न प्रमदितव्यम्, भूत्यै न प्रमदितव्यम्; स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्' (तैत्तिरीय उपनिषद्, (शिक्षावल्ली 11-1)। अर्थात् वेद के शिक्षण के पश्चात् आचार्य आश्रमस्थ शिष्यों को अनुशासन

सिखाता है। सत्य बोलो। धर्मसम्मत आचरण करो। स्वाध्याय के प्रति प्रमाद मत करो। आचार्य को जो अभीष्ट हो वह धन (भिक्षा से) लाओ और संतान-परंपरा का छेदन न करो (यानी गृहस्थ बनकर संतानोत्पत्ति कर पितृऋण से मुक्त होओ)। सत्य के प्रति प्रमाद न होवे, अर्थात् सत्य से मुख न मोड़ो। धर्म से विमुख नहीं होना चाहिए। अपनी जिनमें कुशलता बनी रहे, ऐसे कार्यों की अवहेलना न की जाए। ऐश्वर्य प्रदान करने वाले मंगल कर्मों से विरत नहीं होना चाहिए। स्वाध्याय तथा प्रवचन कार्य की अवहेलना नहीं होनी चाहिए। यह श्लोक समस्त समस्याओं से बचाव के उपाय की तरफ इशारा करता है।

द्वितीय आचरण के लिए तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली के अनुवाक-11 के श्लोक-2 में लिखा है कि 'देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि । यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि'। अर्थात् देवकार्य तथा पितृकार्य से प्रमाद नहीं किया जाना चाहिए। कदाचित् इस कथन का आशय देवों की उपासना और माता-पिता आदि के प्रति श्रद्धा तथा कर्तव्य से है। माता को देवी तुल्य मानने वाला बनो। पिता को देव तुल्य मानने वाला बनो। आचार्य को देव तुल्य मानने वाला बनो। अतिथि को देव तुल्य मानने वाला बनो। अर्थात् इन सभी के प्रति देवता के समान श्रद्धा, सम्मान और सेवाभाव का आचरण करे । जो अनिन्द्य कर्म हैं उन्हीं का सेवन किया जाना चाहिए, अन्य का नहीं। हमारे जो-जो कर्म अच्छे आचरण के द्योतक हों, केवल उन्हीं की उपासना की जानी चाहिए, उन्हीं को संपन्न किया जाना चाहिए। संकेत है कि गुरुजनों का आचरण सदैव अनुकरणीय हो ऐसा नहीं है। अपने विवेक के द्वारा शिष्य क्या करणीय है? और क्या नहीं? इसका निर्णय करे और तदनुसार व्यवहार करे।

तृतीय आचरण के लिए तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली के अनुवाक-11 के श्लोक-3 में लिखा है कि 'ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः, तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्, श्रद्धया देयम्, अश्रद्धयाऽदेयम्, श्रिया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्, संविदा देयम्'। अर्थात् जो भी ब्रह्मचारी हमसे अधिक श्रेष्ठ एवं महान् हों तुम्हें उनको आसन देकर सम्मानित एवं परितृप्त करना चाहिये। तुम्हें श्रद्धा एवं आदरपूर्वक दान करना चाहिये; अश्रद्धा से तुम नहीं दोगे। (तुम श्री-सम्पत्ति के अनुरूप दान करोगे)। तुम सलज्जभाव से दान करोगे, तुम सभय दान करोगे; तुम संविदभाव से (सहृदयता एवं सहानुभूतिपूर्वक) दान करोगे।

चतुर्थ आचरण के लिए तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली के अनुवाक-11 के श्लोक-4 में लिखा है कि 'अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः, युक्ता आयुक्ताः, अलूक्षा धर्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्तेरन्,तथा तत्र वर्तेथाः; अथाभ्याख्यातेषु, ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः, युक्ता आयुक्ताः, अलूक्षा धर्मकामाः स्युः, यथा ते तेषु वर्तेरन्, तथा तेषु

वर्तेथाः'। अर्थात् इसके अतिरिक्त यदि तुम्हें अपने कर्म तथा कर्मपथ (आचरण) के विषय में शंका हो, तो जो भी ब्राह्मण वहाँ हों, जो सुविचारशील हों, भक्त हों, दूसरों से संचालित न हों, धर्मपरायण हों, कठोर एवं क्रूर न हों, जैसा वे उस विषय में आचरण करें, वैसा ही तुम करो और यदि कोई व्यक्ति, दूसरों के द्वारा, अभियुक्त तथा अपराधी घोषित हो तो उसके साथ भी तुम उसी प्रकार आचरण करो, जैसा उसके प्रति वे सब ब्राह्मण करते हैं जो सुविचारवान्, श्रद्धावान् हैं और दूसरों के द्वारा संचालित नहीं हैं, धर्मपरायण हैं, जो कठोर एवं क्रूर नहीं हैं।

अतः यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय विद्या का मूल आधुनिक शिक्षा एवं मानव कल्याण के लिए स्थापित किए जाने की आवश्यकता है | इस हेतु वैदिक साहित्य के साथ ही लौकिक साहित्य का भी संदर्भ लिया जाना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार से भारतीय वैदिक साहित्य अपने आप में अद्भुत ज्ञान समेटे हुए है ठीक उसी प्रकार से लौकिक साहित्य भी लोक की ज्ञान परम्परा का ध्वजवाहक है |

डॉ. पतंजलि मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर ,शिक्षा विभाग
वर्धमान महावीर खुला वि.वि.,कोटा (राज.)

संदर्भ :

आप्टे, वामन शिवराम (1996). *संस्कृत-हिन्दी कोश* (पुनर्मुद्रित संस्करण). दिल्ली: नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड.

ईशोपनिषद्, श्लोक-10.

तैत्तिरीय उपनिषद्

भर्तृहरि (नीतिशतकम्), श्लोक-13.

भविष्यमहापुराण

भागवतपुराण

मनुस्मृति

मुण्डकोपनिषद्

मुण्डकोपनिषद्

याज्ञवल्क्यस्मृतिः, आचाराध्यायः, उपोद्घातप्रकरणम्, पैरा-1, श्लोक-3.

रूहेला, वंदना (**2016**). शिक्षा के आदर्श: वैदिक दृष्टि. *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड अप्लाइड रिसर्च*

विष्णुपुराण (वि.स. 2067), भाग-1, अध्याय-19, श्लोक-40. गोरखपुर: गीता प्रेस.

श्वेताश्वतरोपनिषद्

हितोपदेश

एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता

डॉ0 बृजेश कुमार पाण्डेय

विश्व में अनेक ऐसे चिन्तक, समाजसुधारक दार्शनिक और राजनेता हुए ,जिन्हें युगों-युगों तक याद किया जाता रहा है। भारतवर्ष में एक ऐसे महापुरुष तथा मनीषी पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी हुए हैं। पं0 दीनदयाल उपाध्याय को राष्ट्र के सजग प्रहरी तथा एक सच्चे राष्ट्रभक्त तथा भारतवासियों के बीच में प्रेरणास्रोत के रूप में माना जाता रहा है। राष्ट्रचिंतन करते समय स्वाभाविक रूप से पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के सम्मुख अनेक प्रश्न उपस्थित हुए। उनके उत्तर राष्ट्रीय वास्तविकताओं को ध्यान में रखकर उन्हें देने थे। हमारी मातृभूमि का विभाजन क्यों हुआ ? खण्डित भारत अंग्रेजों की दासता से मुक्त होकर स्वाधीनता संग्राम में कांग्रेस के माध्यम से काम करने वाले दिग्गजों के हाथों में सत्ता की बागडोर आने के बाद भी राष्ट्र सुदृढ़ एवं एकात्म क्यों नही हो रहा है ? अपने त्याग का मूल्य वसूलने की इतनी शीघ्रता नेता लोग किसलिए दिखा रहे हैं ? आंतरिक कलह क्यों बढ़ती ही जा रही हैं? अपने राष्ट्र को समर्थ एवं समृद्ध बनाने का उत्साह और स्फूर्ति जनता में क्यों नहीं पाई जा रही है ? इत्यादि नाना प्रकार के प्रश्न उनके मन में उठते थे। जब पं0 दीनदयाल उपाध्याय इन सभी

समस्याओं के मूल में गए तब उन्होनें विश्वास के साथ कहा-"केवल भूमि और उस भूमि पर रहने वाले लोग ही राष्ट्र हैं, यह धारणा गलत है। स्वाधीनता के आन्दोलन में यही माना गया था कि हिन्दुस्तान में रहने वाले सब लोगों को मिलाकर राष्ट्र है। क्या पूँजीवाद तथा समाजवाद की विचारधाराएं आधुनिक मानव को भीतरी सुख दिला सकती हैं ? क्या करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त रहेंगे ? क्या भारत की प्रजा के पास इन समस्याओं का कोई समाधान नहीं है? इन खतरों को पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने पहले ही भाँप लिया था और भारतीय परम्पराओं के अनुसार इनके उत्तर भी खोज लिए थे। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने व्यष्टि बनाम समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय बताया था तथा व्यष्टि एवं समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने इस पहचान के लिए **एकात्म मानव दर्शन** के रूप में एक दार्शनिक व्यवस्था प्रस्तुत की ,पर विडम्बना यह रही कि उनकी यह खोज, उनका यह दर्शन आगे न बढ़ सका । दोष शायद परिस्थितियों का रहा, उनके दर्शन को आगे बढ़ाने का जिम्मा नानाजी देशमुख ने लिया ,लेकिन उनकी भी मृत्यु उपाध्याय जी की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही हो गई ।

एकात्म मानववाद जीवन और प्रकृति के प्रत्येक भाग को अपने में समाहित करने वाली एक ऐसी विचारधारा है, जो प्रत्येक कालखंड की सभी समस्याओं के व्यावहारिक समाधान हेतु प्रासंगिक सिद्ध हुई है। इसमें समग्र सृष्टि पर विचार किया गया है। यह एक ऐसी विचारधारा है, जिसमें जीवन का समग्रता से चिंतन किया गया है। उसके साथ ही जीवन के विकास का प्रबंध भी किया है। संपूर्ण मानवता ही

एकात्म मानववाद का केंद्र है। हमारी संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव होना चाहिए ,जो "यत् पिंडे तद् ब्रह्मांडे ' के न्याय के अनुसार समष्टि का जीवमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन हैं , साध्य नहीं। एकात्म मानववाद में शरीर, मन, बुद्धि ,आत्मा-युक्त अनेक एषणाओं से प्रेरित पुरुषार्थचतुष्ट्यशील, पूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का ही विचार किया जाए , वह धारणा अधूरी है। हमारा आधार एकात्म मानव है जो अनेक एकात्म समष्टियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का **एकात्म मानववाद** व **अन्त्योदय** मानव जीवन को संतुलित, सुखी, सम्पन्न व आनन्दमय बनाने का सूत्र प्रस्तुत करता है।एकात्म मानववाद एक ऐसा जीवन-दर्शन है जो मनुष्य का विचार केवल आर्थिक मानव के एकांगी विचार से न करते हुए उसके जीवन के समग्र पहलुओं का अन्य मानवों एवं मानवेतर सृष्टि के साथ परस्पर पूरक एकात्म सम्बंधों को भी ध्यान में लेकर समस्त मानवों के समृद्ध, सुखी एवं कृतार्थ जीवन की दिशा दर्शाता है। इस प्रकार एकात्म मानव दर्शन भारतीय संस्कृति का जीवन दर्शन है। भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है, अतः शरीर मन, बुद्धि एवं आत्मा से युक्त धर्म,अर्थ, काम एवं मोक्ष के चतुर्विध पुरुषार्थों की साधना करने वाला, और एक ही साथ परिवार, जाति, राष्ट्र एवं मानव समाज आदि विविध एकात्म समष्टियों का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखने वाला मानव इस दर्शन का केंद्र-बिंदु है।पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद वह है जिसका उद्देश्य एक ऐसा स्वदेशी, सामाजिक-आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करना था, जिसमें विकास के केंद्र में मानव हों। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने आधुनिक तकनीकी एवं पश्चिमी विज्ञान का स्वागत किया । वे पूँजीवाद एवं समाजवाद के मध्य एक ऐसी राह के पक्षधर थे जिसमें दोनों प्रणालियों के गुण तो मौजूद हों, लेकिन अलगाव इत्यादि जैसे अवगुण न हों। आज दुनिया को एक ऐसे विकास मॉडल की तलाश है, जो एकीकृत एवं संधारणीय हो। एकात्म मानववाद ऐसा ही एक दर्शन है, जो अपनी प्रकृति में एकीकृत एवं संधारणीय है। एकात्म मानववाद का उद्देश्य प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन प्रदान करने के साथ-साथ अंत्योदय अर्थात् समाज के निचले स्तर पर स्थित व्यक्ति के जीवन में सुधार करना है।पंडित दीनदयाल जी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के महत्वपूर्ण प्रवक्ता थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति को एकात्म मानववादी के रूप में प्रकट किया था। दीनदयाल जी की आस्था है कि प्रकृति का उन्नयन कर उसे संस्कृति तो बनाया जा सकता है, पर उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। एकात्म मानववादी अवधारणा में वह जीवन पद्धति संस्कृति है, जिसके द्वारा मानव सत्ता के उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। पंडित दीनदयाल जी जीव से सृष्टि और परमेष्टि तक के व्यापक फलक पर चिंतन करते हैं। वे कहते हैं कि शरीर-सुख को लोग सुख समझते हैं, किंतु हम जानते हैं कि मन में चिंता रही तो शरीर सुख नहीं पाता। प्रत्येक व्यक्ति शरीर का सुख नहीं पाता, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति शरीर का सुख चाहता है । किंतु किसी को यदि कारागार में डाल दिया जाए और बहुत अच्छा खाने को दिया जाए तो उसे सुख होगा क्या? आनंद होगा क्या?उपाध्याय जी ने कहा है कि मनुष्य मन,बुद्धि, आत्मा और शरीर का समुच्चय है। हम उसको टुकड़ों में बाँटकर विचार नहीं कर सकते। वे कहते हैं कि आज पश्चिम में जो कष्ट पैदा हुए हैं उसका कारण यह है कि उन्होंने मनुष्य के एक भाग का विचार अलग से किया है। उन्होंने कहा कि मानव की प्रगति का अर्थ शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा- इन चारों की प्रगति है।

दीनदयाल जी का व्यापक फलक वाला दृष्टिकोण रहा है, जिसमें संकुचित विचार के लिए कोई स्थान नहीं है और इसको सूत्र-रूप में स्वीकार करने पर ही विश्व का और संपूर्ण मानवता का कल्याण संभव है। वह सूत्र है मानव के ज्ञान में जो कुछ अर्जित है, उस पर हम बिल्कुल आँख बंद करके चले ;यह बुद्धिमत्ता की बात नहीं होगी। उसमें से सत्य को हमें स्वीकार करना और असत्य को छोड़ना पड़ेगा। तत्पश्चात् उसका भी हमें परिस्थिति के अनुसार परिष्कार करना होगा। जहाँ तक शाश्वत सिद्धान्तों ,स्थायी सत्यों का सम्बन्ध है, हम सम्पूर्ण मानवज्ञान और उपलब्धियों का समन्वित रूप से विचार करें। इन तत्वों में जो हमारा है उसे समयानुकूल और जो बाहर का है, उसे देशानुकूल परिवर्तित कर हम आगे चलने का विचार करें।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी हमेशा समाज में अन्तिम पायदान पर खड़े गरीब, असहाय व्यक्ति की कुशलता तथा उनके विकास के लिए तत्पर रहते थे। शासन की नीतियॉ जब कतार के अंतिम व्यक्ति की समग्र जरूरतों को ध्यान में रखते हुए बनाई जाएँ और उसकी पहुँच को उस तक सुनिश्चित किया जाए, तब जाकर सही मायने में अंत्योदय की अवधारणा को व्यावहारिक जामा पहनाया जा सकता है। पंडित दीनदयाल जी ने आंध्र प्रदेश के राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ शिक्षा वर्ग को सम्बोधित करते हुए कहा था ''आप समाज की चिंता करोगे तो समाज आपकी चिंता करेगा। समाज अपने पास कुछ नहीं रखता है ।'' उन्होंने समाज की तुलना मॉ से करते हुए कहा था, ''जब कोई बेटा अपनी कमाई मॉ को लाकर देता है, तो मॉ स्वयं न खाकर बेटे को खिलाती है। इसी तरह समाज अपने पास कुछ भी नहीं रखते हुए हमको देता है।" दीनदयाल जी यह मानते थे कि जाति की दीवारें समाज को टुकड़ों में बांटकर निर्बल बनाती हैं। समाज की एकात्मता में बाधक बनती हैं । उन्होंने अपने सहयोगियों को यह आदेश दिया था कि नाम के साथ जाति का उल्लेख न किया जाए। उनका यह परामर्श व्यवहार में स्वीकार नहीं हो सका अन्यथा आज की अनेक सामाजिक विसंगतियॉ उत्पन्न न होतीं , और न पनपने पातीं जो आज भी समाज में उपद्रव का रूप लेकर फैल रही हैं और देश को निर्बल बना रही हैं । पंडित दीनदयाल जी ने 1965 के अप्रैल मास में मुंबई में एकात्म मानववाद विषय पर चार व्याख्यान दिए थे । चौथे दिवस के समापन प्रसंग के अंत में जो उन्होंने कहा कि विश्व का ज्ञान ऐसे नये भारत का सृजन करेगा जो कि अपने पूर्वजों के भारत से भी अधिक गौरवशाली होगा, और यहाँ जन्मा हुआ हर मानव स्वयं के व्यक्तित्व को विकासशील बनाते समय केवल मानव जाति ही नहीं अपितु संपूर्ण सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार प्राप्त कर नर से नारायण बनने में समर्थ होगा। यही हमारी संस्कृति का शास्वत चिरन्तन दैवी स्वरूप है। पंडित दीनदयान उपाध्याय ने 'भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा' नामक अपनी पुस्तक में कहा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे दृष्टिकोण में अन्तर आया है। अब हम प्रत्येक प्रश्न को आर्थिक दृष्टिकोण से देखते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि हमारी परम्परा और संस्कृति हमें यह बताती है कि मनुष्य केवल भौतिक आवश्यकताओं और इच्छाओं का पिण्ड नहीं है, वह एक आध्यात्मिक तत्व है, देश-काल की विभिन्न परिस्थितियों के कारण भी हमारे विकास का मार्ग पश्चिम से भिन्न होना चाहिए। हम मार्शल और मार्क्स से बुरी तरह बंध गये हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र के जिन नियमों की विवेचना की है हम उमको शाश्वत मानकर चल रहे हैं।

दीनदयाल उपाध्याय नेहरू के विकास के मॉडल से सहमत नहीं थे । समाजवाद, साम्यवाद और पूँजीवाद की विचारधारा को खारिज करते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीयता के जिस विकासवादी दृष्टिकोण को अपने सिद्धांतों में प्रतिपादित किया ,प्रधानमंत्री के नये भारत के लिए तय लक्ष्य उसी विकासवादी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने की दिशा में एक प्रयास की तरह नजर आते हैं। अन्त्योदय की इस कसौटी पर अगर वर्तमान केन्द्र सरकार के तीन वर्षों की पड़ताल करें तो कई ऐसी घोषणाएँ, नीतियॉ और योजनाएँ हैं, जो नये भारत के लक्ष्यों से मेल खाती हैं। दीनदयाल जी मानते हैं कि अर्थ की अति प्रधानता और अर्थ का अभाव दोनों ही अच्छे नहीं है। आर्थिक विकास को एकमेव लक्ष्य मानकर चलने का नुकसान यह होता है कि हम अन्तिम व्यक्ति को अर्थतंत्र से जोड़कर नहीं रख पाते हैं। इसका दुष्प्रभाव भारत में भी पिछले दशकों में देखने को मिला है। जबकि भारतीय अर्थ-चिन्तन में अर्थ को धर्म का मूल बताते हुए कहा गया कि ''सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्यमूलमर्थः, ''आज अन्त्योदय की कसौटी पर अगर देश के अर्थतन्त्र का मूल्यांकन करें तो स्वतंत्रता के सात दशक बीतने के वावजूद समाज के अन्तिम छोर पर खड़ा एक विशाल तबका मुख्यधारा से लाभान्वित नहीं हो सका। बैंकिंग क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण के बाद भी देश में एक बड़ा तबका ऐसा था जिसका बैंक खाता तक नहीं खुल सका था। अर्थात् न तो बैंकों तक उस गरीब की पहुँच हो सकी थी, और न बैंक ही उस गरीब तक पहुँच रहे थे। वर्ष 2014 में भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने **जनधन योजना** के माध्यम से गरीब से गरीब व्यक्ति को मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था में आम गरीब लोगों की भागीदारी सुनिश्चित हो रही है। इसके तहत बीमा सुरक्षा का लाभ लोगों को सहजता एवं सरलता से प्राप्त हो रहा है। अन्तिम व्यक्ति से अर्थतंत्र को जोड़ने का यह कार्य अन्त्योदय की अवधारणा की कसौटी पर खरा उतरने वाला है। पंडित दीनदयाल जी कहते हैं कि जिस प्रकार भवन-निर्माण में सर्वप्रथम छत को नहीं बनाया जा सकता , ठीक उसी प्रकार से अगर समाज को विकसित दिशा में ले जाना है तो समाज के पिछड़े ,निचले लोगों का विकास करना अति आवश्यक है।

पंडित दीनदयाल जी ने आर्थिक क्षेत्र में एक नई परिकल्पना को जन्म दिया जिसे उन्होंने *अर्थायाम* कहा। अर्थ के अभाव एवं प्रभाव दोनों से समाज के जीवन को मुक्त रखकर प्रत्येक व्यक्ति को समाज के साथ सामंजस्य रखते हुए आगे बढ़ने का पूर्ण अवसर प्रदान करना *अर्थायाम* का मूल तत्व है। इसके लिए अर्थ के उत्पादन, स्वामित्व, वितरण तथा भोग की समुचित एवं संतुलित व्यवस्था अर्थायाम के प्रमुख अंग हैं। पंडित दीनदयाल जी का मानना था कि अर्थ के उत्पादन, वितरण और भोग में संतुलन रखने के लिए अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ एवं संस्थाएँ खड़ी करनी पड़ती हैं । आर्थिक लोकतंत्र का अर्थ है कि अर्थ का अभाव किसी व्यक्ति के हित में बाधक न बने। आर्थिक क्षेत्र में नैतिक मूल्यों का विचार करना आवश्यक है। यदि नैतिक मूल्यों का विचार नहीं किया गया तो दीनदयाल जी के अनुसार वह अर्थशास्त्र न केवल अधूरा है, अपितु नैतिक दृष्टि से विकलांग एवं पंगु है। पंडित दीनदयाल जी का यह मानना था कि उत्पादन, वितरण और उपभोग ये तीनों दायित्व व्यक्ति के ऊपर छोड़ देने चाहिए। उत्पादन करने वाला ही उसका वितरण करें तथा संयमित उपभोग द्वारा पूंजी निर्माण करें। एकात्म मानववाद के चिन्तन के अनुसार यह व्यवस्था तब गड़बड़ होती है जब व्यक्ति-रूपी अंश समाज के साथ समग्रता का बॉध खो देता है, जिसका कि वह स्वयं एकभाग होता है, और

तत्वज्ञान सही सामाजिक एवं आर्थिक दिशा को भूल जाता है। अतः व्यक्ति टुकड़ों-टुकड़ों में विचार करने लगता है। आज आवश्यकता है कि एकात्म मानववाद की परिकल्पना एवं दृष्टि को स्पष्ट कर सामाजिक सामंजस्य को जन्म देने वाली अर्थव्यवस्था का निर्माण करे। आज वर्तमान प्रधानमंत्री जी जिस नवभारत की बात कर रहे हैं, उसके केन्द्र में व्यक्ति है । यहाँ व्यक्ति का आशय आम मनुष्य के उत्थान से है। सामाजिक और आर्थिक रूप से जब व्यक्ति का उत्थान होगा, तो व्यक्ति-व्यक्ति मिलकर समाज का उत्थान करेंगे और फिर राष्ट्र समाज के माध्यम से उत्थान की ओर अग्रसर होगा। नए भारत के निर्माण का यह आन्दोलन पं0 दीनदयाल उपाध्याय के ही वैचारिक दर्शन अन्त्योदय की अवधारणा को आज धरातल पर उतारता नज़र आ रहा है।

डॉ0 बृजेश कुमार पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर,शिक्षाशास्त्र विभाग,
संत विनोबा पी0जी0कालेज, देवरिया,उ0प्र0

संदर्भ :

1. पिलानी शेखावटी- जनसंघ सम्मेलन में पं0दीनदयाल उपाध्याय जी उद्घाटन भाषण, पांचजन्य दिसम्बर 1955
2. शरद अनन्त कुलकर्णी, पं0दीनदयाल उपाध्याय, विचार-दर्शन, अर्थनीति, खण्ड-4 सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. विश्वनाथ नारायण देवघर, पं0दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन, व्यक्ति दर्शन खण्ड-7, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. चन्द्रशेखर परमानन्द भिषीकर, पं0दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन, राष्ट्र की अवधारणा, खण्ड-5, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. दीनदयाल उपाध्याय, पॉलिटिकल डायरी, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. विनायक वासुदेव नेन, पं0दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन, एकात्म मानववाद खण्ड-2, सुरुचि प्रकाशन ,नई दिल्ली।
7. दीनदयाल उपाध्याय, भारतीय अर्थ-नीति : विकास की एक दिशा ,राष्ट्रधर्म पुस्तक, लखनऊ।
8. शर्मा महेश : दीनदयाल उपाध्याय खण्ड-2,3,4, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. द्विवेदी शिवानंद, एकात्म मानववाद की कसौटी पर नवभारत आन्दोलनः योजना प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली।

नारीवाद की अवधारणा एवं स्वरूप

डॉ. तृप्ति त्रिपाठी

नारीवाद एक ऐसा वाद है जो सदियों से चली आ रही नारियों की दबी कुचली, शोषित प्रवृत्तियों को उखाड़ फेंकने की बात करता है एवं नारियों को स्वतंत्रता, समानता देने की बात करता है, नारियों के हक के लिए लड़ता है, पितृसत्तात्मक ढाँचे का बहिष्कार करता है, स्त्रियों के निजी विचारों, अपने जिंदगी के फैसले स्वयं लेने की वकालत करता है एवं किसी और की दखलअंदाजी को नकारता है। सत्रहवीं शती में नारीवाद जब शुरू हुआ तब वह कुछ विशेष सन्दर्भों को लेकर शुरू किया गया था परन्तु आज का नारीवाद उन्हीं सन्दर्भों पर आधारित नहीं है, तब के नारीवाद से यह काफी भिन्न है। आज के समय में नारीवाद **"समाज में काम के स्थान परिवार में होने वाले स्त्रियों के दमन व शोषण के प्रति चेतना तथा स्त्री व पुरुषों द्वारा इन परिस्थितियों को बदलने की दिशा में जागरूक सक्रियता"**[1] अर्थात् समाज में लिंगवाद, पुरुषवाद को चुनौती देते हुए उसके विरुद्ध आवाज उठाना एवं समतामूलक समाज की स्थापना नारीवादियों की माँग रही है।

आधुनिक काल में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में जिस तरह के परिवर्तन हुये, उसने वास्तविक सामाजिक संरचना को तितर-बितर कर रख दिया जिससे मूल्य व्यवस्थायें पूरी तरह से विखंडित हो गयी थीं , ऐसे में ज़रूरत थी इस बुर्जुआ वर्ग, सामन्तवादी वर्ग तथा पुरुषवर्चस्व धारणाओं एवं स्थापनाओं को तोड़ने की, समाज से लड़ने की एवं अपनी स्वतंत्रता, अस्मिता के लिये कदम बढ़ाने की। समाज में वैचारिकी के हुये प्रादुर्भाव के पश्चात् अनेक अस्मिताओं ने आंदोलन छेड़ दिया। नारियों ने अपने अधिकारों के लिये स्त्री मुक्ति आंदोलन चलाये। स्त्रीवादी आंदोलन जब शुरू हुआ तब उसका मूल ही मानव के प्राकृतिक अधिकारों की माँग रहा जो स्त्री पुरुष समता पर केन्द्रित था एवं सदियों से चली आ रही थोथी, धार्मिक परम्पराओं का खंडन करने वाला था।

नारीवाद की शुरुआत पाश्चात्य की देन है। सर्वप्रथम यूरोपियन देशों में स्त्री अधिकारों की आवाज़ को उठाया गया। स्त्रीवाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में

फ्रांस में इस प्रकार देखने को मिलता है कि, **"लोग मुझे स्त्रीवादी तब कहते हैं जब मैं किसी वेश्या या उसके दरबान से हटकर स्त्री अधिकारों की बात करती हूँ।''[2] (रेकेवा वेस्ट) ।**

19वीं शताब्दी में ही स्त्री अधिकारों की बात करने वाले दो पुरुष विचारक विलियम टाम्पसन एवं जेम्स स्टुअर्ट मिल ने अपने-अपने तरीकों से स्त्री मुक्ति के पहलुओं को स्पष्ट किया। सन् 1825 में विलियम टाम्पसन ने 'अपील ऑफ़ वुमेन' के नाम से पुस्तक का प्रकाशन कराया। टाम्पसन ने अपनी इस पुस्तक में कहा कि तत्कालीन स्त्री को विवाह के पूर्व और पश्चात् कैद करके रखा जाता है और उस कैद खाने को 'परिवार' का नाम दे दिया जाता है, ऊपर से कर्तव्यों का बोझ इतना अधिक लाद दिया जाता है कि वह अपने आप कुछ भी नहीं कर पाती है। जॉन स्टुअर्ट मिल की पुस्तक 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमेन' सन् 1869 में आयी जिसमें उसने स्थापित किया कि स्त्री का दमन गलत है और मानवीय विकास में बाधा भी है। मिल के अनुसार, **"स्त्री पुरुष के बीच मौजूदा सामाजिक सम्बन्धों को जो सिद्धांत नियंत्रित कर रहा है- यानी एक का दूसरे के कानूनी रूप से अधीन होना-स्वयं में ही गलत है और अब मानव विकास व सुधार की प्रक्रिया में मुख्य बाधा भी है।"[3]** मिल इस

बात को स्वीकार नहीं करते थे कि स्त्री और पुरुष के बीच का असमान सम्बन्ध प्राकृतिक है। वह कहता था कि वर्चस्व रखने वाला व्यक्ति कभी यह स्वीकार नहीं करेगा कि दूसरा उसके बराबर है।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक नारीवाद और उससे जुड़े आन्दोलन का तात्पर्य कुछ सीमित उद्देश्यों की प्राप्ति तक ही था परन्तु इसके बाद अवसर की समानता के साथ-साथ अपनी विशिष्ट जैविक और भावनात्मक अस्मिता के प्रबोधन के लिये भी स्त्रियाँ आगे बढ़ने लगी। सन् 1907 में 'वर्किंग वुमेन्स' म्युचुअल असिस्टेंट की स्थापना हुई। उसी वर्ष इंटरनेशनल कॉनफ्रेंस और सोशलिस्ट वुमेन के मंच से 'क्लारा जेटकिन' ने सर्वजन के मताधिकार की माँग उठायी। बीसवीं शती की फ्रांसीसी लेखिका 'सीमोन द बोउवार' ने सन् 1947 में फ्रांसीसी और सन् 1953 में अंग्रेजी में प्रकाशित रचना 'द सेकेण्ड सेक्स' में व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक, आर्थिक विश्लेषण और नारी उत्पीड़न के कई सूक्ष्म पहलुओं को उजागर किया। बेटी फ्राइडेन की पुस्तक 'द फेमिनिन मिस्टिक' का असर इतना जोरदार हुआ कि सन् 1970 के आस-पास अमेरिका जैसे राष्ट्र में महिलायें बैनर पोस्टर लेकर सड़कों पर उतर आयीं और नारी मुक्ति के नारे लगाने लगी। सन् 1947 में संयुक्त राष्ट्र ने औरतों की स्थिति पर एक कमीशन

बैठाया जिसने दो वर्ष पश्चात् मानवाधिकारों की घोषणा की। हमारे भारत देश में स्त्री आंदोलनों की शुरूआत 19वीं शती के आखिरी दशक में हुई जब पंडिता रमाबाई, सावित्रीबाई, एनी जगन्नाथन एवं रुक्माबाई आदि ने परम्परागत ढाँचें से निकलकर उच्च शिक्षा ग्रहण की और भारत जैसे देश में स्त्रियों के आन्दोलन को आगे बढ़ाया। भारत में पहली बार महिलाओं ने अपने स्वतन्त्र संगठन बनाये। सन् 1886 में स्वर्ण कुमारी देवी ने लेडीज एसोसिएशन की स्थापना की। सन् 1892 में पं. रमाबाई ने पूना में शिक्षा और बेरोजगार महिलाओं के लिये 'शारदा सदन' की स्थापना की थी। सन् 1917 में सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल स्त्रियों की रक्षा और मताधिकार को लेकर मांटेग्यू चेम्सफोर्ड से मिला। महिलाओं के मताधिकारों की माँग के लिये 'साउथ बोरो' कमेटी की स्थापना की गई। 21वीं शती तक आते-आते महिला आंदोलन में उतार-चढ़ाव भी आये। बाज़ारवादी व्यवस्था ने स्त्री पुरुष सम्बन्धों के समीकरण को काफी अधिक प्रभावित किया।

जिस-जिस समाज ने इस्लाम धर्म को अपनाया है उसमें प्रचलित पितृसत्तात्मक रीति-रिवाज इस्लाम का हिस्सा बन गये इससे मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति कई मायनों में आज अन्य धर्मावलम्बियों की स्थिति से भी बदतर है। हालांकि कुरान में महिलाओं को अधिकार दिये गये हैं फिर भी मुस्लिम समाज लिंग समानता को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। मुस्लिम समाज में औरतों की स्थिति के सम्बन्ध में जोया हसन बेलाग लिखती हैं, **"मुस्लिम समाज में औरतों की स्थिति को दो नजरिए से देखना चाहिए। पहला यह की मुस्लिम औरत की हिंदुस्तान में क्या स्थिति है? इसके जवाब में यह कहना बिल्कुल सही होगा कि मुस्लिम औरतों की स्थिति मुस्लिम समाज में अच्छी नहीं है, ऐसा इसलिए है कि हिंदुस्तान के मुस्लिम समाज में कोई खास बदलाव नहीं हुआ है, कोई समाज सुधार जैसा काम नहीं हुआ है और मुस्लिम पर्सनल लॉ में किसी तरह की तब्दीली नहीं होना औरत की स्थिति को और भी खराब करता है।...दूसरा सवाल है कि हिंदुस्तान के समाज में मुस्लिम औरत की स्थिति और दुनिया में जो नजरिया है, वह बंधा-बंधाया है। मुस्लिम औरतों की स्त्री पर बात हमेशा इस्लाम के नजरिए से की जाती है। यह नजरिया ही गलत है। कुरान में औरत के बारे में क्या लिखा है, इस नजरिए से मुस्लिम औरत की स्थिति पर बात करना गलत दृष्टिकोण है। दूसरे धर्म के औरतों की स्थिति पर बात करते समय धर्म केंद्र में नहीं होता है।"**[5] इस्लामी नारीवादी दृष्टिकोण वास्तव में समाज में पुरुषों के समकक्ष अपनी बराबरी के हक पर आधारित है बावजूद इसके धार्मिक संगठन इसे

मानने को तैयार नही हैं। पाकिस्तान जैसे देश में जहाँ 'Women action forum' शरीआ आधारित पारिवारिक कानूनों का विरोध कर तलाक, उत्तराधिकार सम्पत्ति की माँग करता है वहीं तमाम राजनीतिक दल इस्लामीकरण का नारा दे कर इस पर रोक लगाने का भरसक प्रयत्न करते हैं।

नारीवादी विचारकों, चिन्तकों ने स्त्री शोषण के लिये पितृसत्तात्मक सामाजिक संस्था को जिम्मेदार ठहराया। पितृसत्ता या पुरुषसत्ता अर्थात् स्त्री पर पुरुष की ऐसी सत्ता जो उस पर पूरी जिंदगी हावी रहती है और इस सत्तावाद का आधारभूत ढाँचा परिवार व्यवस्था है। जिसमें पुरुष स्त्री पर दबदबा या वर्चस्व आर्थिक, सांस्कृतिक, संभोग क्रिया के आधार पर बनाता है। विवाह संस्था ने तो वास्तव में मजदूर बनाकर स्त्रियों के श्रम पर नियंत्रण ही कर रखा है। मार्क्सवादी विचारकों का मानना था कि स्त्री पर पुरुष का वर्चस्व पूँजीवादी व्यवस्था की देन है या शोषण की जड़े व्यवस्था के आर्थिक आधार में हैं। स्त्रियों को सदा से ही अनुत्पादक श्रम की ओर ढकेलने का प्रयास किया जाता रहा है। घर के भीतर और बाहर दोनों तरफ श्रम रूपी मजदूरी स्त्री को देनी पड़ती है। मार्क्सवादी विचारक एंगेल्स की पुस्तक 'परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' नारीवादी विमर्श के महत्त्वपूर्ण योगदान के रूप में देख सकते हैं। एंगेल्स का मानना था, **"स्त्रियों के अधीनता की शुरुआत व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ शुरू हुई, तभी विश्व की औरतों की हार हुई।"**[6] वास्तव में समाज में सम्पत्ति का महत्व लगातार बढ़ने से निजी स्वामित्व की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। समाज में निजी सम्पत्ति के रूप में स्त्रियों की भी गिनती हुई। मार्क्सवादी विचारक सर्वत्र व्याप्त लिंग आधारित असमानता को पूँजीवाद की देन मानते है।

नारीवाद मूलतः समस्त प्रकार की असमानता एवं दमन का बहिष्कार कर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के रूप में समतामूलक न्यायिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था युक्त समाज की स्थापना करना चाहता है। भारत जैसे देश में जाति व्यवस्था, धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिकता की समस्या अनिवार्य रूप से पितृसत्ता से जुड़ी हुई है इसलिये जातीय गैरबराबरी और धार्मिक कट्टरता से लड़ना नारीवादियों का मुद्दा रहा है। स्त्री की पहचान का संकट स्त्री विमर्श का महत्त्वपूर्ण आयाम है। यद्यपि आज की स्त्री ने अपनी अस्मिता एवं व्यक्तित्व को पहचान देने की कोशिश की है परन्तु अब भी व्यक्तित्व को भूमिकाओं में तलाशने का सिलसिला थमा नहीं है। इस दिशा में अब भी कार्य करने की आवश्यकता है।

डॉ. तृप्ति त्रिपाठी
शोधार्थी ,हिन्दी विभाग, कला संकाय
(डी. ई. आई.) ,दयालबाग, आगरा- 282005

संदर्भ ग्रन्थ :

1. भसीन कमला, सईद निगहत, नारीवाद क्या है, सम्पादन अंशु मालवीय, ग्रामोन्नति संस्थान, महोबा
2. मिश्र, श्रीप्रकाश उत्तर आधुनिक अवधारणाएँ, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2018
3. मिल, जॉन स्टुअर्ट, स्त्रियों की पराधीनता, अनुवाद -प्रगति सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016
4. सिंह, वी. एन. नारीवाद, सिंह,जनमेजय , रावत पब्लिकेशन, जयपुर, संस्करण 2013

संस्कृत भाषा और गढ़वाली का साहचर्य: बहुभाषिकता के संदर्भ में

डॉ. अरविन्दनारायण मिश्र

जब भी कभी किसी विषय-वस्तु के शिक्षण-अधिगम यानी सीखने-सिखाने के माध्यम पर विमर्श किया जाता है, तो किसी न किसी भाषा पर ही केन्द्रित होकर विचार-प्रक्रिया आगे बढती है | सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के रूप में शिक्षा के लिए भाषा का आश्रय लेना आवश्यक होता है | यह माध्यम मातृभाषा के रूप में हो सकता है, क्षेत्रीय भाषा के रूप मे अथवा किसी अन्य भाषा के रूप में | प्रायः सभी शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों एवं भाषा-शिक्षाशास्त्रियों ने इस बात को एकमत से स्वीकार किया है कि पाठ्य-पुस्तक में लिखी गई विषय-वस्तु को अधिगम कर्त्ता तक सफलता पूर्वक अंतरित करने में मातृभाषा सर्वाधिक सशक्त माध्यम होती है | उत्तराखंड प्रदेश में जहाँ एक ओर मातृभाषा गढ़वाली एक सशक्त माध्यम बनकर शिक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है वहीँ दूसरी ओर उसकी सहयोगी बनकर संस्कृत अथवा दोनों एक-दूसरेकी सहायक बनकर एक-दूसरेके ज्ञान में आधार बन सकती हैं और अन्य किसी विषय-वस्तु के

प्रभावपूर्ण, तीव्र और समग्र अधिगम के लिए एक-दूसरेकी पूरक बनकर कार्य कर सकती हैं | यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि उत्तराखंड राज्य विशेष रूप से पूरे गढ़वाल क्षेत्र में गढ़वाली और संस्कृत का साहचर्य शिक्षार्थियों को गढ़वाली के साथ-साथ संस्कृत का ज्ञान भी सहज और स्वाभाविक रूप से करा देता है | या यूं कहें कि संस्कृत के साथ ही विद्यार्थियों को गढ़वाली का संस्कृतनिष्ठ ज्ञान सहज रूप से हो जाता है |

किसी भी विषय की अंतर्वस्तु के शिक्षण-अधिगम के लिए भाषा को माध्यम बनाना एक अनिवार्य सोपान होता है ,जो सेतु के रूप में प्रभावपूर्ण तरीके से काम करता है अन्य विषयों के साथ ही, फिर चाहे वह किसी भाषा का ही अधिगम क्यूँ न हो | बिना किसी भाषायी माध्यम के कोई शिक्षा प्रक्रिया मूर्त रूप ले ही नहीं सकती है |

संस्कृत भाषा - संस्कृत भारोपीय परिवार की एक भाषा है, जिसे भारती, सुरभारती, देवभाषा अथवा देववाणी के नाम से भी जाना जाता है | यह भारत ही नहीं अपितु विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है, जिसका अस्तित्व पृथ्वी पर मानव जाति के अस्तित्व के साथ ही जुड़ा है | इसकी लिपि देवनागरी है | संस्कृत वाङ्मय का स्वरूप अत्यंत विशाल है , जिसका प्रथम दर्शन ऋग्वेद के प्रथम मंत्र **"अग्निमीळे पुरोहितम्"** में मिलता है | संस्कृत के दो स्वरूप देखने को प्राप्त होते हैं- वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत | सम्पूर्ण वैदिककालीन शिक्षा का माध्यम वैदिक संस्कृत ही होती थी | इसी प्रकार महर्षि वाल्मीकि के **"मा निषाद ! प्रतिष्ठां ----------**
--------काम मोहितम् || से आरम्भ हुई लौकिक संस्कृत की धारा आज भी अपने विशालतम साहित्यिक कलेवर के साथ शिक्षण का माध्यम भी बनकर अविरल रूप से प्रवाहित हो रही है |**गढ़वाली -** गढ़वाली हमारे देश के एक अत्यंत मनोरम प्रदेश उत्तराखंड के (विशेष रूप से) गढ़वाल क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा है, जिसका विस्तार गढ़वाल मंडल के सात जिलों- उत्तरकाशी, रुद्रप्रयाग, देहरादून, टिहरी, चमोली, पौड़ी और हरिद्वार तक है | इसके अतिरिक्त उत्तराखंड के कुमायूँ मंडल सहित देश और दुनिया के विभिन्न देशों में फैले उत्तराखंड-मूल के निवासियों द्वारा अपने परिवार के बीच मातृ भाषा के रूप मे गढ़वाली का व्यावहारिक प्रयोग आज भी बहुतायत में देखने को मिलता है | प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक ग्रियर्सन ने गढ़वाली की सहयोगी अनेक बोलियों, जैसे- श्रीनगरी, नागपुरिया, बधाणी, सलाणी, टीहरीयाली, राठी, दसौल्या मांझ आदि का भी वर्णन किया है | हालाँकि विख्यात गढ़वाली भाषाविद् डॉ. गोविन्द चातक ने श्रीनगर और उसके आसपास बोली जाने वाली भाषा को ही आदर्श गढ़वाली बताया है | साहचर्य एक प्रकार का अविनाभाव-सम्बन्ध यानी एक के साथ दूसरे के होने का सम्बन्ध है, जिसमें पहला बिना दूसरे के नहीं हो सकता और दूसरा बिना पहले के होना असम्भव होता है | जैसे धुएँ के होने पर अग्नि अवश्य होती है | हालाँकि अग्नि के साथ धुएँ का होना आवश्यक नहीं होता है | वैसे ही गढ़वाली में संस्कृत के शब्द होते ही हैं , किन्तु यह कथन कि संस्कृत के होने पर गढ़वाली अवश्य होती है समीचीन नहीं होगा क्योंकि संस्कृत मूल है | संस्कृत अयोगोलक की तरह शुद्ध है | **सशक्त माध्यम-** माध्यम का अर्थ होता है- बीच का, मध्य का, बीच वाला, कार्य-सिद्धि का साधन या उपाय | उक्त विचार-विषय के सन्दर्भ में सशक्त माध्यम का अर्थ होगा- किसी कार्य की सिद्धि का ऐसा साधन या उपाय जो उसके लिए शक्तिशाली हो | इस प्रकार भाषा शिक्षण अथवा किसी अन्य विषय के शिक्षण के माध्यम के रूप में संस्कृत और

गढ़वाली दोनों एक-साथ रहकर एक-दूसरे की पूरक बनकर सशक्त हो ही जाती हैं | उत्तराखंड देश का ही नहीं अपितु विश्व का ऐसा प्रदेश है जहाँ संस्कृत को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है | यही नहीं, राज्य के दोनों मंडलों-गढ़वाल और कुमायूँ के दो गाँवों- चमोली स्थित किमोथा और बागेश्वर स्थित भंतोला को संस्कृत ग्राम के रूप में पहचान प्राप्त है | साथ ही राज्य की सहचर नगरियों- ऋषिकेश और हरिद्वार को संस्कृत नगरी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है | संस्कृत को जन-जन तक पहुचाने तथा एक सफल शिक्षण माध्यम बनाने के लिए राज्य के कई प्रतिष्ठान, जैसे उत्तराखंड संस्कृत अकादमी, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय तथा लगभग 50 की संख्या में कार्य कर रहे संस्कृत विद्यालय और महाविद्यालय संस्कृत को ज भाषा बनाने के लिए निरंतर कार्य कर रहे हैं | एक माध्यम के रूप में संस्कृत और गढ़वाली एक-दूसरेके पूरक के रूप में देखे जा सकते हैं | संस्कृत का साहचर्य न केवल गढ़वाली के साथ देखने को मिलता है अपितु उत्तराखंड की एक अन्य महत्वपूर्ण भाषा कुमायूनी तथा कई प्रचलित बोलियों के साथ भी दृष्टिगोचर होता है | लोंगो द्वारा गढ़वाली का प्रयोग मातृभाषा की तरह किया जाता है |

आने वाली शिक्षा-व्यवस्था के रूप में **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020** के बिंदु संख्या-4.11 में बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति के अंतर्गत मातृभाषा को शिक्षण- अधिगम का महत्वपूर्ण व सशक्त साधन स्वीकार करते हुए कहा गया है कि - "यह सर्वविदित है कि छोटे बच्चे अपने घर की भाषा / मातृभाषा में सार्थक अवधारणाओं को अधिक तेजी से सीखते हैं और समझ लेते हैं | घर की भाषा आमतौर पर मातृभाषा या स्थानीय समुदायों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है | हालाँकि कई बार बहुभाषी परिवारों में परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा बोली जाने वाली एक घरेलू भाषा हो सकती है, जो कभी-कभी मातृभाषा या स्थानीय भाषा से भिन्न हो सकती है" | जहाँ तक संभव हो कम से कम ग्रेड 5 तक, लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे भी हो, शिक्षा का माध्यम, घर की भाषा / मातृभाषा / स्थानीय भाषा / क्षेत्रीय भाषा होगी | इसके बाद स्थानीय भाषा को, जहाँ भी संभव हो, भाषा के रूप में पढ़ाया जाता रहेगा | सार्वजानिक और निजी दोनों तरह के स्कूल इसकी अनुपालना करेंगे | विज्ञान सहित सभी विषयों में उच्चतर गुणवत्ता वाली पाठ्य-पुस्तकों को घरेलू भाषाओं / मातृभाषा में उपलब्ध कराया जाएगा | बच्चे द्वारा बोली जाने वाली भाषा और शिक्षण के माध्यम के बीच यदि कोई अंतराल मौजूद हो, तो उसे समाप्त किया जा सके, इसके लिए भी प्रयास किए जायेंगे | शिक्षको को उन छात्रों के साथ जिनके घर की भाषा / मातृभाषा शिक्षा के माध्यम से भिन्न है, द्विभाषी शिक्षण-

अधिगम सामग्री सहित द्विभाषी एप्रोच का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा |"[1]इतना ही नहीं, बिंदु संख्या-4.17 के अंतर्गत संस्कृत के महत्त्व को स्वीकार करते हुए यह कहा गया है कि-"संस्कृत एक महत्वपूर्ण आधुनिक भाषा होते हुए भी इसका शास्त्रीय साहित्य इतना विशाल है कि--- इसे संस्कृत ज्ञान प्रणालियों के रूप में जाना जाता है | इस प्रकार नई शिक्षा नीति, जिस पर भविष्य की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था टिकी है, उसमें मातृभाषा और संस्कृत दोनों को ही शिक्षण-माध्यम के रूप में समान महत्त्व दिया गया है | इसके महत्व और परस्पर सहयोगीमूलक उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए शिक्षक और छात्र द्वारा जब दोनों को एक साथ अपनाया जाएगा तब दोनों की शक्ति से शिक्षण-अधिगम शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों को आनंद के अनुभव के साथ प्रभावपूर्ण परिणाम देने वाला सिद्ध हो सकेगा | दूसरे शब्दों में कहें, तो एक के ज्ञान से दूसरे का ज्ञान सहज रूप में हो सकेगा | ऐसा व्यवहार में देखा जाता है |

यह बात सर्वविदित है कि संस्कृत सभी भारतीय भाषाओ की जननी है | अतः एक भारतीय भाषा के रूप में गढ़वाली भी संस्कृतगर्भा है, जिसमें संस्कृत के अनेक शब्द यथास्वरूप यानी अपने मूल स्वरूप में ही देखने को मिलते हैं | उदाहरण के लिए वैदिक मंत्रों में प्रयोग किया जाने वाला वर्ण-"ळ",तथा लौकिक संस्कृत में संख्या का बोध करने वाला "कति" जैसे अनेक वर्ण तथा शब्द प्राप्त होते हैं | उत्तराखंड प्रदेश देवभूमि के नाम से भी जाना जाता है | देवताओं की स्तुति के लिए ऋषियों द्वारा दृष्ट मंत्रो में प्रयुक्त वर्ण गढ़वाली में अद्यावधि विद्यमान हैं | यहाँ के लोंगों का गढ़वाली के साथ ही देवभाषा-भाषी यानी संस्कृत भाषा-भाषी होना इनकी अपनी विशेष पहचान है | संस्कृत को व्यवहार-भाषा के रूप में प्रयोग करना गर्व का विषय है | पूरे प्रदेश में संस्कृत को व्यवहार भाषा बनाए जाने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं | ऐसे में संस्कृत और गढ़वाली का एक सशक्त माध्यम के रूप में साथ-साथ चलना निश्चित रूप से अधिगम को सरल , समझभरा और सुबोध बनाने में सहायक हो सकता है | फाउंडेशनल स्तर के साथ ही प्राइमरी-स्तर और मिडिल-स्तर तक हिंदी माध्यम से पढाए जाने वाले विषयों के सरलतम तरीके से बोध कराने के लिए शिक्षकों द्वारा प्रायः गढ़वाली और कुमायूँनी के अतिरिक्त जौनसारी आदि स्थानीय बोलियों को भी माध्यम बनाकर प्रयोग करते हुए बहुतायत से देखा

जाता है । संस्कृत गढ़वाली की प्राणभूता भाषा है | इसी प्रकार गढ़वाली में प्रयुक्त किये जा रहे शब्द संस्कृत में अपने मूल स्वरूप में दिखाई देते हैं | दोनों एक-साथ माध्यम बनकर सीखने वाले बालक को सहज तरीके से बोध कराने में उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे |

कुछ उदहारण द्रष्टव्य हैं-

संस्कृत में	गढ़वाली में	हिंदी में
लवणं	लोण	नमक
सूर्प	सुप्पा	सूपा /सूप
संकीर्णम	सांगड़ो	संकीर्ण
स्वामिनी	स्वैण	मालकिन
न जानाति	न जाणी	नहीं जानती/जानते
यत्र	यख	यहाँ
तत्र	तख	वहाँ
कुत्र	कख	कहाँ
उच्चै	ऐंच	ऊँचा
कदा	कबरी	कब
प्रणिपात	पैलाग	पैर छूकर प्रणाम
केन	कैन	किसके द्वरा
कथं	कन	कैसे
यंत्र	जंतर	जन्त्र

प्रायः कम ही देखने को मिलता है कि एक साथ दो भाषाएँ शिक्षण-माध्यम के रूप में सहचर बनकर काम करती हों | किन्तु प्रायः यह देखने को मिलता है कि बालकों को किसी भी विषय का, फिर चाहे वह इतिहास, भूगोल जैसे सरल माने जाने वाले विषय हों अथवा विज्ञान और गणित जैसे अपेक्षाकृत कठिन विषय हों | इनका अधिगम कराने में संस्कृत के साथ गढ़वाली जैसी स्थानीय या मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा बड़ा ही प्रभावपूर्ण भूमिका निभाती हैं , फिर वह चाहे किसी मूल भाषा के साथ उसकी सहयोगी बनकर हो अथवा मूल भाषा को अपना सहयोगी बनाकर हो |

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अध्यापन-विज्ञान (Pedagogy) और शिक्षा मनोविज्ञान (Education Psychology) की मूल भावना के अनुसार विशेष रूप से प्रारंभिक स्तर पर मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा अथवा इनसे भिन्न कोई घरेलू भाषा शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को तीव्र और प्रभावपूर्ण बना देती है | यही बात उन सभी शिक्षण-संस्थाओं के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है जहाँ उपर्युक्त स्तर पर संस्कृत को शिक्षण का माध्यम बनाकर विषयों का अध्ययन-अध्यापन किया जाता है तथा उन शिक्षण-संस्थाओ के बारे में भी जहाँ पर क्षेत्रीय भाषाओं , मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषा को माध्यम बनाकर शिक्षण-अधिगम किया अथवा कराया जाता है | उत्तराखंड राज्य के उन क्षेत्रों या स्थानों पर जहाँ शिक्षण-संस्थाओं में क्षेत्रीय या स्थानीय भाषा को माध्यम के रूप में अपनाकर अध्ययन-अध्यापन का कार्य किया जाता है वहाँ संस्कृत का सहयोग शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण बनाता है और जहाँ पर संस्कृत को मुख्य माध्यम के रूप में अपनाकर शिक्षण-अधिगम का कार्य सम्पादित किया जाता है यानी संस्कृत शिक्षा-संस्थाओं में, वहाँ स्थानीय भाषा, क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा प्रसंगानुसार गढ़वाली भाषा को अध्ययन-अध्यापन का सहयोगी-माध्यम बनाकर अपेक्षाकृत प्रभावपूर्ण और तीव्र अधिगम-परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं | अतः शिक्षण-माध्यम के रूप में संस्कृत और गढ़वाली की परस्पर-पूरकता का गुण शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया के प्रभावपूर्ण परिणाम की संभावनाओं को निश्चित ही एक मजबूत दृष्टि प्रदान करता है |

डॉ. अरविन्दनारायण मिश्र
शिक्षाशास्त्र विभाग
उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सन्दर्भ-सूची -

1- 'आचार्य' शर्मा, श्रीराम, ऋग्वेद 1 /1 /1 शांति कुञ्ज, हरिद्वार |

2- 'रसाल' शुक्ल राम शंकर, भाषा-शब्द-कोष,1951, रामनारायण लाल प्रयाग |

3- मिश्र, श्रीशोभित पंडित, संपादक, तर्कभाषा, चौखम्भा-संस्कृत-सीरिज, बनारस-1

4- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार (हिंदी वर्जन)|

5- hi.m.wikipedia.org/wiki/ गढ़वालीभाषा

संत साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली और संत दरिया साहब

विवेक शर्मा

'शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म'

हिंदी भक्ति-साहित्य में दरिया साहब नामक दो संत हैं। पहले - दरियादास **(मारवाड़),** दूसरे - **दरिया साहब (बिहार)**। दरिया साहब ने ही दरिया पंथ का प्रवर्तन किया था। इन्हें **'बिहार का कबीर'** भी कहा जाता है। इन्होंने अपने काव्य में संत साहित्य सदृश **'पारिभाषिक शब्दावली'** का अग्र-प्रस्तुत रूप में प्रयोग किया है-**शब्दावली**

अनहद या अनाहत नाद - बिना बजाए अपने आप बजने वाला नाद, शब्द। इससे अभिप्राय संगीत से है, जिसका अनुभव ध्यान की गहन अवस्था में होता है।

ओम् - हिंदू धर्म में एक पवित्र ध्वनि या चिह्न जो निर्गुण ब्रह्म का प्रतीक है। उपनिषदों में ओम् को आदि शक्ति कहा गया है जिससे संपूर्ण सृष्टि की रचना हुई है। यह हिंदुओं के जीवन का अति महत्त्वपूर्ण मंत्र है और चेतना की उच्च अवस्था में पहुँचने के लिए इसका उच्चारण किया जाता है। हिंदू मंदिरों और घरों में इसे ॐ के रूप में स्थापित किया जाता है।

अभंग का शाब्दिक अर्थ है - बिना भंग हुए यानी अटूट, निरंतर या अखंड। मराठी भाषा में ये छोटे-छोटे भक्ति-गीत सबसे पहले ज्ञानेश्वर द्वारा पदों के रूप में रचे गए थे। इसके बाद महाराष्ट्र के कई संतों ने भी इसी शैली का प्रयोग किया।

कर्म - क्रिया और प्रतिक्रिया; कारण और कार्य का सिद्धांत; पिछले जन्मों के विचारों, वचनों और कर्मों का फल या परिणाम। कर्म तीन प्रकार के माने गए हैं: **प्रारब्ध कर्म** - वे कर्म जिनका भुगतान हम इसी जन्म में करते हैं, इसे भाग्य या नसीब भी कहते हैं। द्वितीय, **क्रियमाण कर्म** - वे कर्म जो इस जन्म में किए जा रहे हैं; **संचित कर्म**-पिछले जन्मों में किए गए वे कर्म हैं जिनका अभी भुगतान नहीं हुआ। पिछले दोनों प्रकार के कर्म यानी क्रियमाण और संचित कर्म हमें तब तक इस सृष्टि में बाँधे रखते हैं जब तक हमें किसी गुरु की सहायता से मुक्ति प्राप्त नहीं हो जाती।

आठ योग शक्तियाँ - ये आठ प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ हैं जो योगाभ्यास से प्राप्त होती हैं। ये आठ इस प्रकार हैं: अपने शरीर को बहुत छोटा या बड़ा कर लेना, बहुत भारी हो जाना, सभी इच्छाओं की पूर्ति कर लेना और किसी भी वस्तु को उत्पन्न कर लेना या नष्ट कर देना, दूसरों को वश में कर लेना।

गायत्री मंत्र - हिंदू धर्म में सबसे प्रसिद्ध प्रार्थना मंत्र जिसमें सूर्य को सवितृ देव कहकर उसकी उपासना की गई है। ऋग्वेद मंत्र (3:62:10)का अर्थ है: हम उस सवितृ देव के तेज़ प्रकाश की उपासना करें जो हमारे सम्मान के योग्य है; जिसने सारी सृष्टि की रचना की है। वह हमारी बुद्धि को सत्य की ओर ले चले।

गरुड़ - बाज जैसा एक विशाल पौराणिक पक्षी, जो भगवान विष्णु की सवारी माना जाता है। महान शक्ति का प्रतीक गरुड ,भगवान विष्णु के अवतार विट्ठल का सेवक माना जाता है।

कृष्ण - हिंदू देवताओं में सबसे अधिक पूजनीय श्रीकृष्ण हैं। इन्हें भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है। भगवान विष्णु को हिंदू त्रिदेवों में सृष्टि का पालनकर्ता कहा गया है। भगवद्गीता और बहुत-से धर्म-ग्रंथों का मुख्य विषय श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण के उपासक उनकी पूजा सर्वोच्च सत्ता के रूप में करते हैं।

केशव - भगवान कृष्ण का नाम। महाराष्ट्र के संतों ने परमात्मा के लिए इस नाम का प्रयोग किया है। केशव शब्द के कई अर्थ हैं - वह जिससे प्रकाश की किरणें निकलती हैं, जिसके सुंदर चमकीले लंबे केश हैं या जिसने केशी नामक राक्षस का वध किया।

काल - इसका शाब्दिक अर्थ है समय, मृत्यु या ब्रह्मांडीय मन। काल सृष्टि के तीनों लोकों, स्थूल, सूक्ष्म और कारण का स्वामी है। वह परमात्मा का सच्चा सेवक है। वह परमात्मा के आदेश से सृष्टि में कर्म-सिद्धांत के अनुसार न्याय करता है। **कीर्तन -** संगीत के साथ भक्ति गीत गाना कीर्तन कहलाता है। आध्यात्मिक रूप से आंतरिक संगीत का सुनना भी कीर्तन कहलाता है।

कामधेनु- इच्छा-पूर्ति करने वाली गाय । हिंदू दर्शन के अनुसार पुराणवर्जित एक गाय, जो समुंद्र-मंथन से प्रकट हुई थी। इसे सभी गौओं की माता समझा जाता है। यह जिसके पास होती है, उसकी सभी इच्छाओं को पूरा करती है।

कल्पतरु - हिंदुओं के अनुसार देवराज इंद्र के उपवन में मनचाहा फल देनेवाला एक वृक्ष। ऐसा माना जाता है कि यह सभी इच्छाओं की पूर्ति करता है।

गुरु - ऐसा संत जिसकी पहुँच ऊँचे रूहानी मंडल तक है। गुरु को कुछ चुनी हुई आत्माओं को दीक्षा देकर परमात्मा के पास वापस ले जाने का अधिकार होता है।

चिंतामणि - इच्छा पूरी करने वाली एक काल्पनिक मणि। इसके विषय में मान्यता है कि यह जिसके पास होती है, उसकी सभी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं और इस प्रकार उसके सभी कष्ट, दुःख और चिंताएँ दूर हो जाती हैं।

चंद्रभागा नदी - यह भीमा नदी की एक सहायक नदी है जो पंढरपुर में बहती है, जहाँ यह चंद्र का आकार ले लेती है। श्रद्धालु इसके तट पर स्नान के लिए आते हैं।

तीन लोक - स्थूल, सूक्ष्म और कारण लोक। संतों का कहना है कि ये मन और माया के मंडल हैं जो निर्मल आत्मिक मंडल से नीचे के मंडल हैं। भौतिक संसार स्थूल लोक कहलाता है। शारीरिक और मानसिक शक्ति देनेवाला लोक सूक्ष्म लोक है और कारण लोक उससे भी सूक्ष्म है। देखें, भवसागर

दस इंद्रियाँ - इनमें पाँच ज्ञानेंद्रियाँ शामिल हैं। पाँच ज्ञानेंद्रियाँ हैं - आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा अर्थात् देखने, सूँघने, सुनने, स्वाद लेने और स्पर्श की शक्ति। पाँच कर्मेंद्रियाँ हैं - हाथ, पैर, मुख, जननेंद्रिय और गुदाद्वार अर्थात् ग्रहण करने, चलने-फिरने, बोलने, उत्पत्ति करने और निकास की शक्ति।

दर्शन - किसी को प्रेम, श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से निहारना दर्शन कहलाता है। अपने इष्टदेव या गुरु को इतनी एकाग्रता से निहारना कि जीव बाकी सब कुछ भूल जाए और उसे अपने अलग अस्तित्व का आभास ही न रहे, बाहरी दर्शन कहलाता है। परंतु संतजन जिस दर्शन की बात करते हैं और जो दर्शन आत्मा को चेतना के ऊँचे मंडलों में ले जाता है, वह आंतरिक दर्शन है। आंतरिक दर्शन से तात्पर्य उच्च आंतरिक मंडल के स्वामी या अपने गुरु के नूरानी स्वरूप के दर्शन करना है।

नाम - नाम परमात्मा की सक्रिय शक्ति है जो सृष्टि की रचना करती है, इसे जीवन देती है और क़ायम रखती है। यह वह जीवन धारा है जिसके द्वारा आत्मा वापस परमात्मा के पास जा सकती है। हमारी चेतना को मन और इंद्रियों के स्थूल स्तर से ऊपर उठाने के लिए 'नाम' दो तरह से कार्य करता है। पहला वह जो मनुष्य को सतगुरु द्वारा दीक्षा के समय अंतर में जाप करने के लिए दिया जाता है। इसे **वर्णनात्मक नाम** कहते हैं। दूसरा, नाम परमात्मा की दिव्य शक्ति है, नाम ही परमात्मा है। इसे **धुनात्मक नाम** कहते हैं। नाम के पवित्र शब्दों के जाप से मन शांत हो जाता है और धुनात्मक नाम से जुड़ने के क़ाबिल हो जाता है। नाम को आत्मा और परमात्मा के बीच की कड़ी या पुल भी कहा जाता है।

नाद - नाद का अर्थ है ध्वनि या धुन। संत उस दिव्य आंतरिक धुन के लिए नाद शब्द का प्रयोग करते हैं जिसे वे **अनाहत नाद** कहते हैं।

नवधा भक्ति - ऋषि वेदव्यास द्वारा रचित हिंदू धर्म के महाकाव्य **अध्यात्म रामायण** में नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन किया गया है। यह इस प्रकार हैं: (1) सतगुरु की संगति (2) सत्संग

सुना (3) निःस्वार्थ सेवा-ध्यान-साधना के रूप में परमात्मा की सेवा और सभी जीवों की सेवा, (4) नाम का सिमरन या जाप (5) आंतरिक धुन सुनना (6) सदाचार (7) गुरु को परमात्मा का रूप समझना और प्रत्येक जीव में परमात्मा को देखना (8) समर्पण से संतुष्टि आना (9) ईश्वर प्रेम से वैराग्य उत्पन्न होना।

पाँच तत्त्व- हिंदू दर्शन में पाँच तत्त्वों यानी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को सभी जीवों की उत्पत्ति का आधार माना जाता है। किस जीव में कितने तत्त्व सक्रिय हैं, उसी के आधार पर उसकी श्रेणी निर्धारित होती है। मनुष्य में पाँचों तत्त्व सक्रिय हैं। आकाश का तत्त्व मनुष्य को **विवेक** देता है ताकि हम अपने मूल स्रोत परमात्मा की ओर सचेत हो सकें।

पारस-एक काल्पनिक पत्थर ।ऐसी मान्यता है कि इस पत्थर में लोहे को सोने में बदल देने की शक्ति है|

पुराण - पुराण का शाब्दिक अर्थ है पुराना, प्राचीन। पुराणों में हिंदुओं की प्राचीन धार्मिक कहानियाँ हैं जिनमें देवताओं, शूरवीरों और राजा-महाराजाओं के जीवन और उनके महान कार्यों का वर्णन किया गया है।

भक्ति मार्ग - मुक्ति के इस मार्ग पर भक्त अपने आप को प्रियतम परमात्मा को समर्पित कर देता है; उसकी दया-मेहर के सहारे, उसके उपदेश का पालन करते हुए वह पूरी तरह से अपने प्रियतम की शरण में रहता है। भक्ति मार्ग का अनुसरण करते हुए जब साधक गुरु के उपदेश पर चलता है तो उसे अंतर्ज्ञान प्राप्त होता है और अपने प्रियतम से मिलाप होता है।

भगवत, भागवत - 'भग' से बने इस शब्द का अर्थ है - समृद्धि, गौरव, महिमा, महानता और परम सत्ता। उस गौरवशाली, कल्याणकारी परम सत्ता को भगवत कहा जाता है। भक्ति मार्ग के अनुयायी जिस सर्वोच्च शक्ति की पूजा विष्णु या उसके किसी अवतार के रूप में करते हैं, वे प्रायः उसे **भगवत** कहते हैं। इससे संबंधित शब्द भागवत का अर्थ है भगवान का भक्त। भागवत भक्त की जीवन शैली और विशेष रूप से नवधा भक्ति के मार्ग की ओर संकेत करता है। परंतु भक्ति से सबंधित धर्म ग्रंथ जैसे भगवद्गीता और भागवत पुराण में 'भगवत' शब्द को उनके शीर्षक के रूप में प्रयोग किया गया है।

भक्ति - परमात्मा, अपने इष्ट देवता या किसी संत-महात्मा को प्रसन्न करने के लिए उनके प्रति निष्ठा रखना, उनकी पूजा या आराधना करना 'भक्ति' कहलाता है। प्रेम, विश्वास, श्रद्धा, समर्पण और अपने प्रियतम में लीन हाने की इच्छा भक्ति का आधार है। गुरु के प्रति श्रद्धा भाव रखना **गुरु भक्ति** कहलाता है जिसमें भक्त गुरु के आदेशानुसार उनके बताए मार्ग पर चलता है।

भक्त - भक्ति मार्ग पर चलने वाला भक्त कहलाता है।

ब्राह्मण - हिंदू समाज में पुरोहित वर्ग का ज्ञानी व्यक्ति ब्राह्मण कहलाता है।

भँवर गुफा - यह चौथे आतरिक मंडल का नाम है। यह रचना का सबसे ऊँचा मंडल है जो उस अविनाशी परमात्मा से मिलने का द्वार है।

भगवद्गीता - इसका शाब्दिक अर्थ है 'भगवान का गीत'; भगवद्गीता में महाभारत युद्ध के मैदान में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया उपदेश संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रंथ हिंदू धर्म के प्रसिद्ध ग्रंथों में से एक है। इसमें भगवान कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं कि वह बिना फल की इच्छा किए अपने कर्त्तव्य का पालन करे। वह अर्जुन को ज्ञानयोग, भक्तियोग, निष्काम कर्मयोग और ध्यानयोग के विषय में भी समझाते हैं।

योगी - योग का अभ्यास करने वाला तथा योगसिद्ध पुरुष योगी कहलाता है।

राखु माई - इसका शाब्दिक अर्थ है रुक्मिणी माँ, जो लक्ष्मी का अवतार और भगवान विट्ठल की अर्धांगिनी हैं। राखु माई को अक्सर विट्ठल के बाईं ओर दिखाया गया है और विट्ठल की तरह ही इनके हाथ भी कमर पर रखे दिखाए गए हैं।

रामायण - रामायण प्रसिद्ध ऋषि **वाल्मीकि** द्वारा रचित सबसे प्राचीन महाकाव्य है। यह लगभग 3000 ई॰पू॰ संस्कृत भाषा में रचा गया था जिसमें **सात अध्याय और 24000 श्लोक** हैं। ऐसा माना जाता है कि इनमें पहला और अंतिम अध्याय बाद में जोड़ा गया। रामायण में राम और सीता की जीवन-गाथा, रावण द्वारा सीता-हरण, राम की उनको छुड़ाने की कोशिश, राक्षसों के साथ युद्ध एवं रावण-वध , उनकी अयोध्या वापसी और अंत में राम और सीता के देहांत और उनके स्वर्ग जाने का वर्णन है। भारत की विभिन्न भाषाओं में इस महाकाव्य के कई संस्करण मिलते हैं। इनमें हिंदी या अवधी में रचित तुलसीदासकृत **रामचरितमानस** को विशेष स्थान प्राप्त है।

राम - का अर्थ है कण-कण में रमा हुआ परमात्मा। अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र का नाम भी राम है जो **भगवान विष्णु के अवतार** माने जाते हैं। राम और रावण के युद्ध का वर्णन रामायण में किया गया है।

राही - राधा का एक नाम। राही को **देवी लक्ष्मी का अवतार** माना जाता है। इस प्रकार यह श्रीकृष्ण और उनके दूसरे रूप **विट्ठल** की अर्धांगिनी हैं। कृष्ण या विट्ठल के प्रति उनका प्रेम और भक्ति अनुपम है। वे अलग रहते हुए भी एक-दूसरे के मन में बसते हैं।

रुक्मिणी - श्रीकृष्ण की महारानी जो **भक्तिपूर्ण सेवा** के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके विषय में वृत्तांत है कि एक बार श्रीकृष्ण की किसी रानी ने शर्त लगाई कि उसकी सारी धन-दौलत श्रीकृष्ण के वजन से अधिक है। तोलने पर जब वह इसमें सफल नहीं हुई तो उसने रुक्मिणी से सहायता मांगी। रुक्मिणी ने तुलसी के पवित्र पौधे का पत्ता तराज़ू पर रखा तो तराजू का पलड़ा झुक गया। इस प्रकार उसने अहंकार के बजाए विनम्र भक्ति का महत्त्व सिद्ध कर दिया।

सहस्रदल कमल - यह पहला आंतरिक मंडल है जहाँ हज़ार पंखुड़ियों वाला कमल है। इसे सूक्ष्म शरीर का केंद्र माना जाता है। भारतीय संतों ने इसे सूक्ष्म शरीर का ऊर्जा-केंद्र कहा है। यह नीचे के छह चक्रों के साथ-साथ शरीर को भी ऊर्जा प्रदान करता है।

सत्संग - इसका अर्थ है सत् का संग यानी सत्य के साथ जुड़ना। आम तौर पर ऊँची आध्यात्मिक अवस्था वाले संतों की संगति, जहाँ परमात्मा, नाम, ध्यान-साधना और गुरु के विषय में प्रवचन किया जाता है, को सत्संग कहा जाता है। सत्संग का गूढ़ अर्थ है आंतरिक सत्संग अर्थात् आत्मा का अंतर् में सच्चे नाम से जुड़ना।

दर्शन - छह दर्शन या शास्त्र -

(क) सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग और वेदान्त।

(ख) जोगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण।

धर्म - अहिंसा, सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतत् सामासिकं धर्म चतुर्वर्ण्यं एवमब्रवीद्मनुः।। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, स्वच्छताचार और इन्द्रियों का संयम। इन पाँच बातों का पालन मानव धर्म है। - **मनुस्मृति**

सनद = मूल प्रमाणपत्र - इसके द्वारा योग्यता प्रमाणित होती है। यह पूर्णता का प्रतीक है। इसी के आधार पर आगे कोई अधिकार प्राप्त होता है। अतः 'परमात्मा का दर्शन' ही अमरलोक में जाने का प्रमाण है, बिना सत्पुरुष का दर्शन 'प्राप्त' किये अमरलोक में नहीं जाया जा सकता। अतः 'सनद' = सत् का दर्शन'।

सिद्धि - अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व ये आठ सिद्धियाँ हैं।

सत्नाम को कई नामों से, जैसे - सत्पुरुष, सत् साहब, बन्दीछोर, बेबहा, अमर, अचिंत, उजागर, बेकीमती, अच्युतानन्द से पुकारा जाता है ।

सप्तपाताल - अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल ये सात सप्तपाताल लोक हैं।

चार प्रकार की मुक्तियाँ हैं -

1. सालोक्य - ईश्वर के लोक में निवास करना।
2. सामीप्य - किसी भी रूप में सदैव ईश्वर के समीप रहना।
3. सारूप्य - ईश्वर के समान रूप या पदवी प्राप्त करना।
4. सायुज्य - ईश्वर के समान विभूति प्राप्त होना

ये चार सगुणोपासक की मुक्तियाँ हैं।

सोहागा - इसके द्वारा सोने में शुद्धता व चमक बढ़ जाती है।

सत्संगति - सज्जनों की संगति ही सत्संगति है।

सती - पतिव्रत का पालन करने वाली स्त्री सती कही जाती है।

सत्गुरु शब्द - सत्गुरु के शब्द 'उपदेश' मंत्र ही सार शब्द है।

सोरह कला - अमृता, मानदा, पूषा तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, रेव, अंगदा और पूर्णामृता।

शृंगार- शृंगार सोलह प्रकार का होता है - उबटन लगाना, स्नान कराना, वस्त्र धारण करना, बाल सँवारना, अंज लगाना, सिंदूर भरना, भाल पर तिलक बनाना, ठोड़ी पर तिलक बनाना, मेंहदी रचना, सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करना, अलंकार धारण करना, पुष्पहार पहनना, पान खाना, ओष्ठ रँगना और मिस्सी लगाना।

उपर्युक्त संत साहित्यिक पारिभाषिक शब्दावली का दिग्दर्शन संत दरिया साहब के ग्रंथों (अग्रज्ञान, अमरसार, भक्तिहेतु, ब्रह्मचैतन्य, ब्रह्मविवेक, दरियानामा, दरियासागर, गणेशगोष्ठी, ज्ञानदीपक, ज्ञानमूल, ज्ञानरत्न, ज्ञानस्वरोदय, कालचरित्र, मूर्तिउखाड़, निर्भयज्ञान, प्रेममूल, शब्द या बीजक, सहसरानी (सहस्त्रानी), विवेकसागर, यज्ञसमाधि में प्राप्त होता है।

संत दरिया साहब भी कबीरादि अन्य संत कवियों के सदृश परम सत्ता को अकाल तथा निर्गुण-निराकार मानते हैं और **'अवतारवाद'** का खण्डन करते हैं -

''एक सौ अनंत भयो, सो फुटि डार बिस्तार।
अंतहु फेरी एक है, ताहि खोजु निजु सार।। 3 ।।
- दरियासागर, (दरियाग्रंथावली-, द्वितीय ग्रंथ(, साखी, पृष्ठ-3

संत दरिया के अनुसार 'परम शक्ति' एक है और वह एक से अनेक और अनेक से पुनः एक हो जाती है।

'पारिभाषिक शब्द' निर्माण से प्रयोग तक की यात्रा पूर्ण करने के पश्चात् ही सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करते हैं। अतः दरिया साहब के समयकाल में सगुण भक्ति परंपरा के प्राबल्य हेतु सगुण दैवीय रूपों की संज्ञा का प्रयोग भी प्राप्त होता है। संत दरिया साहब ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गोपाल कृष्ण, रामादि **अवतारों** को 'ब्रह्म' रूपी ज्योति का रूप मानते हैं -

''जो तिहि ब्रह्मा बिस्नु प्रतिपाला।
जोति रूप धरि रहे गोपाला।। 9 ।।

पुर्ख ना होहि आपु अवतारा।
जोति गढ़े सभ करू उपकारा। 20 ।।

जोति रूप जगत सम धरई।
जहां तहां दुस्टन्हि सभ दलई।। 2 ।।

ज्योतिहि ब्रह्मा बिस्नु हहीं, संकर जोगी ध्यान।
सतपुर्ख छप लोक हहीं, ताको सकल जहान।। 4।।

रामे जोति अउरि नहिं कोई।
क्रिस्न रूप धरै पुनि सोई।। 22 ।।

ब्रह्म बिस्नु जोति अवतारा।
पुर्ख नाम वोए रंग करारा।। 23 ।।

-दरियासागर दरि)या ग्रंथावली, द्वितीय ग्रंथ(, साखी, पृष्ठ-3

संत दरिया साहब के अनुसार **'सत्य पुरुष'** के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं - **'ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या ।'** उसकी महिमा सर्वत्र प्रकाशित है। उसके सिर पर करोड़ों सूर्य निछावर किये जा सकते हैं। वहाँ करोड़ों कामिनियाँ नृत्य करती हैं तथा उनकी शय्या करोड़ों हीरों से बनायी जाती है -

''ताहि साहब के चरन मनावौं।
भेद निरखि निजु निरगुन गावौं।। 77 ।।
-दरियासागर दरिया ग्रंथावली), भाग 2, चौपाई 77) पृष्ठ-8

तुलसीदास तथा **सूरदास** के काव्य में भी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग - बाहुल्य प्राप्त होता है।

संत दरिया साहब **पारिभाषिक** शब्द प्रयोग कर कहते हैं कि 'सत्य पुरुष', सत्य युग में 'सुकृत' के रूप में अवतीर्ण होता है। वह त्रेता में 'करुनामा' तथा द्वापर में 'मुनीन्द्र' नाम से अवतार लेता है -

'तब पुरर्व सुक्रित के कीन्हा।
आपन अंस रची जो लीन्हा।। 493 ।।

सुक्रित जाए लेहु अवतारा।
जमूदीप के मधि बिस्तारा।। 494 ।।

सत्त पूरर्व से बचन जो लीन्हा।
आए पयाना जग में कीन्हा।। 495 ।।

जमूदीप जो जम कै देसा।
तहवां सत्त जो जम कहा संदेसा।। 496 ।।
प्रथमहि सत जुग में चलि आए।
सुक्रित नाम जो इहां कहाए।। 494 ।।
-ब्रह्म विवेक दरिया ग्रंथावली), भाग 2) पृष्ठ-497

यहाँ संत दरिया साहब द्वारा **'सुकृत'** नामकरण 'पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की **प्राकृतिक विकास-प्रक्रिया** के अंतर्गत आता है। जिसमें नई संकल्पनाओं को जन्म देने वाला व्यक्ति ही उनका नामकरण करता है।

इसी प्रकार 'औधड़' एवं 'सरभंग' सम शब्दावली का प्रयोग संत दरिया की सामाजिक चेतना एवं भाषिक कौशल्य की ओर संकेत करता है। यह दोनों परंपराएँ संत दरिया के समकालीन प्राप्त होती हैं जिनमें सामंजस्य का पक्षधर काव्यकार अभेद बतलाकर एकता परिलक्षित करता है -

''निराकार उनको कोई मानै, कोई साकार उर ठानै।
वही सकरि सब घट में, जपै जिमि जिसको भाये हो।।"
-ब्रह्म विवेक ग्रंथावली दरिया), भाग 2) पृष्ठ-499

'पारिभाषिक शब्दावली' में वैचारिक एकरूपता पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की संतुलनवादी विचारधारा के पूर्णतः अनुरूप सिद्ध होती है।

अस्तु, संत दरिया साहब (1664-1780 ई॰) का काव्य सामाजिक विषमताओं के प्रति जोरदार विद्रोह के साथ-साथ **संत साहित्य की मूर्त पारिभाषिक शब्दावली** की उर्वर-भूमि भी है, जिसमें 'पारिभाषिक शब्दावली' के समृद्ध प्रयोग-बाहुल्य को बखूबी देखा जा सकता है। **संत साहित्य** में प्रयुक्त विभिन्न पारिभाषिक शब्दों के मूल प्रयोक्ता एवं दूसरी भाषा में उपलब्ध उसके पर्यायों को ग्रहण करने की स्थिति वर्तमान समय में ज्ञानबोध के सार पर पूर्णतः आधारित अवश्य हैं, किंतु अधिकांशतः अलौकिक उपादानों एवं लौकिक जगत से संबद्ध समृद्ध पारिभाषिक शब्दावली को स्पष्ट रूप देने में संत दरिया साहब (बिहार वाले) का काव्य अतुलनीय संपदा सिद्ध हुआ है .....।

विवेक शर्मा
शोधार्थी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नारीवाद का गांधीवादी विमर्श

डॉ सुमन कुमार
एवं
डॉ सुशांत कुमार झा

नारीवाद एक अंतरराष्ट्रीय विमर्श है जिसे विभिन्न विचारधाराओं का समर्थन प्राप्त है। गांधीवादी विचारधारा अन्तराष्ट्रीय समुदाय के सामने एक वैकल्पिक सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। परंतु, नारीवाद के सन्दर्भ में गांधीवादी विचारधारा और पाश्चात्य विचारधारा की नीति एवं नियति एकसमान है। दोनों विचारधाराओं का उद्भव एवं विकास 19वीं शताब्दी में हुआ तथा दोनों ही विचारधाराएँ महिलाओं की पूर्ण मुक्ति और सशक्तीकरण की बात करती हैं। दोनों ही विचारधाराएँ सामर्थ्य एवं प्रतिभा की दृष्टि से महिलाओं को पुरुषों से किसी भी प्रकार से कम नहीं आँकती हैं,साथ ही दोनों विचारधाराएँ पितृसत्ता को महिला-उत्पीड़न व शोषण का कारण मानती हैं। दोनों का लक्ष्य महिलाओं को शिक्षित और समर्थ बनाकर उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। यही कारण है कि गांधीजी की चिंतन- प्रणाली के अंतर्गत नारीवादी विमर्श का एक व्यापक परिप्रेक्ष्य भी दिखाई पड़ता है। भारतीय राजनीति में गांधीजी के सक्रिय प्रवेश से भारतीय राजनीति एवं समाज में बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई। गांधीजी के भारत में आगमन एवं नारियों की स्थिति में उत्थान की प्रक्रिया दोनों समानान्तर चलती दिखाई देती हैं।

उनके भारत आगमन पर नारी-मुक्ति का आधार तैयार हो चुका था । गांधीजी ने महिला सरोकारों को उठाते हुए प्रचलित हिन्दू रीति -रिवाजों को चुनौती दी, जिसने राष्ट्रीय जनजागरण में महिलाओं के समावेशन को प्रतिबंधित कर रखा था। सामाजिक व्यवस्था का नेतृत्व हमेशा ही पितृसत्तात्मक परंपरा का निर्वहन करने वाले पुरुषों ने किया ,जिससे महिलाओं की स्थिति धीरे-धीरे निम्नतर होती चली गई। गांधीजी के आदर्श एवं व्यवहार में समानता रही , जिसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता-संग्राम में भी महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ने लगी। अशिक्षा वह अभिशाप है जो नारियों की ऐसी दयनीय स्थिति का प्रमुख कारण रही है। विभिन्न सामाजिक

कुरीतियाँ, जैसे- बालविवाह, पुनर्विवाह पर रोक, संपत्ति में हक न मिलना, आदि भी इसमें सहयोग करती रहीं ।

गांधीजी एवं नारीवादी विमर्श

महात्मा गांधी, जिन्हें भारत का राष्ट्रपिता भी कहा जाता है, उनकी प्रमुख भूमिका सिर्फ राष्ट्रीय आंदोलन में नहीं है, बल्कि आधुनिक नारीवाद के विमर्श को भी आगे बढ़ाने में है। गांधीजी के नारीवादी विमर्श के दो आधार-स्तम्भ हैं -- सभी सन्दर्भों और प्रत्येक स्तर पर लैंगिक समानता और लैंगिक कार्य के विशिष्टीकरण में विश्वास। गांधीजी का मानना था कि महिला एवं पुरुष दोनों की क्षमता बराबर है। दोनों के भीतर एक जैसी आत्मा का निवास है, आध्यात्मिक स्तर पर दोनों एक हैं । इनके बीच अगर इस तरह का अंतर नहीं है तो फिर यह अंतर कहाँ से आता है? यह अंतर आता है हमारी परंपराओं से, रीति-रिवाजों से और अशिक्षा से।यदि नारी को भी सम्यक् शिक्षा मिले और पुरुषों के बराबर कार्य करने का अवसर मिले तो वह इसे प्रमाणित करने में सफल होगी कि वह पुरुषों से कम नहीं है। गांधीजी नारी -अधिकारों के प्रबल समर्थक थे तथा स्त्री -पुरुष के समान अधिकारों की बात निरंतर करते थे। उन्होंने शिक्षा के सन्दर्भ में भी दोनों के बीच समान अधिकारों का समर्थन किया है। उनका विश्वास था कि केवल शिक्षा के द्वारा ही महिलाएँ अपने नैसर्गिक अधिकारों को बनाए रख सकती हैं एवं उसका संवर्धन एवं विस्तार भी कर सकती हैं ।उन्होंने पारिवारिक अथवा पैतृक संपत्ति पर महिलाओं के अधिकार का प्रबल पक्ष-पोषण किया। वे पारिवारिक संपत्ति से महिलाओं को वंचित रखने को पुरुष-प्रभुत्व और स्त्री-अधीनता का कारण मानते थे, और चाहते थे कि महिलाओं को किसी प्रकार की कानूनी विकलांगता न झेलनी पड़े। उन्होंने लिखा कि हमें पुत्र एवं पुत्री के साथ पूर्ण समानता के आधार पर व्यवहार करना चाहिए।

भारतीय सामाजिक परंपरा एवं नारी

भारतीय समाज में नारी का चित्रण गृहकार्यों में संलग्न रहने वाली एवं मधुर स्वभाव वाली माता तथा घर की संरक्षिका के रूप में किया जाता रहा है। गांधीजी का मानना था कि प्रकृति-प्रदत्त लक्षण के अनुसार पुरुष शारीरिक रूप से मजबूत होते हैं, इसलिए वे कठिन परिश्रम का कार्य कर सकते हैं,जबकि महिलाएँ इसके विपरीत प्यार, प्रेम एवं सहानुभूति की प्रतिमूर्ति होती हैं, इसलिए गृह-कार्य में वे ज्यादा कुशल व सफल होती हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि महिलाओं को सिर्फ घर के कार्यों में बांध दिया जाए। गांधीजी का नारीवाद भारत में महिलाओं एवं बालिकाओं द्वारा अपने दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार की समस्याओं से रूबरू होने तथा उनसे उबरने के प्रयास को दिखाता है। जब नारी युवावस्था में एक लड़की होती है और

उसे पढ़ने-लिखने से वंचित रखा जाता है तो यह सिर्फ शिक्षा ही नहीं, बल्कि शिक्षा एवं सूचना दोनों का ही अभाव उत्पन्न करता है। दहेज-व्यवस्था को भी गांधी ने महिलाओं की स्थिति को हीन करने वाली परंपरा बताया है। इस परंपरा की वजह से लड़कियों को आत्म- सम्मान से समझौता करना पड़ता है। परिवारवाले यदि समुचित दहेज नहीं जुटा पाते हैं तो वह किसी भी तरह शादी करके अपना पीछा छुड़ा लेते हैं। अंततः महिलाओं को अपनी समस्या से खुद ही रूबरू होना पड़ता है। अतः दहेज़ -व्यवस्था का उन्मूलन जरूरी है । इसकी जड़ें जाति-व्यवस्था में भी हैं । यदि हमें इस बुराई से मुक्ति पाना है तो युवतियों और युवाओं अथवा उनके माता- पिता को इस जातीय बंधन को तोडना होगा। बाल-विवाह भी एक बहुत बड़ी समस्या है जो गांधीजी के समकालीन समाज में दिखाई पड़ती है। यह व्यवस्था आज भी समाप्त नहीं हुई है । हाँ ,इसकी दर कम जरूर हुई है । बाल-विवाह को गांधीजी ने अनैतिक तथा अमानवीय कार्य के रूप में परिभाषित किया है। यह एक बुराई है, पाप है जिसे समाज के अनेक लोगों द्वारा अपनाया जाता है । व्यवस्था में परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि लड़कियों को सम्यक् शिक्षा दी जाए जिससे वे आगे बढ़ें और समाज में अपने परिवार को भी आगे बढ़ाएँ । गाँधीजी ने बाल-विवाह के साथ साथ वृद्ध - विवाह का भी विरोध किया । उन्होंने विधवा-पुनर्विवाह के साथ-साथ बल-विधवाओं के भी (यदि वो ऐसा करना चाहे तो)पुनर्विवाह का समर्थन किया । देवदासी- प्रथा, गांधीजी के अनुसार समाज में कोढ़ जैसी गंभीर बीमारी की तरह है।इसके अंतर्गत एक महिला का संपूर्ण जीवन ईश्वर के नाम पर समर्पित कर दिया जाता है। भारत में व्याप्त विभिन्न कुरीतियाँ जो नारी उत्थान की राह में बाधक हैं, यह उनमें से एक है। शिक्षा पर बल देते हुए भी गांधीजी ने कहा था कि एक स्त्री के शिक्षित होने का अर्थ पूरे परिवार का शिक्षित होना है, जबकि एक पुरुष के शिक्षित होने का अर्थ सिर्फ एक व्यक्ति का शिक्षित होना होता है।गाँधीजी ने 1937 में अपनी 'मौलिक राष्ट्रीय शिक्षा योजना'(नई तालीम) के अंतर्गत सात से चौदह वर्ष के बालक और बालिकाओं के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा दिए जाने की बात की है। यदि विवाह के पश्चात् भी स्त्री शिक्षित नहीं है, तो यह, पुरुष का दायित्व बनता है जो उसका पति होता है,और जिसका कर्तव्य होता है कि वह उसे शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध कराएँ । शिक्षित नारी परिवार को, बच्चों को, पति को समुचित ज्ञान से परिपूर्ण होकर सहायता पहुंचाती है एवं आगे बढ़ने में मददगार साबित होती है।

महिलाओं के प्रति गांधीजी के सकारात्मक दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वे महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले अधिक सुदृढ़ और सहृदय मानते थे। वे नारी को अबला कहने के भी सख्त खिलाफ थे। इस संदर्भ में, गांधी ने यह कहा कि उन्हें अबला पुकारना महिलाओं की आंतरिक शक्ति को दुत्कारना है। यदि हम इतिहास पर नजर डालें तो हमें उनकी वीरता की कई मिसालें मिलेंगी। यदि महिलाएँ देश की गरिमा बढ़ाने का संकल्प कर लें, तो कुछ ही महीनों

में वे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति के बल पर देश का रूप बदल सकती हैं।महिलाओं की इस आंतरिक शक्ति को गांधीजी सत्याग्रह जैसे अहिंसक हथियार के लिए सर्वथा उपयुक्त मानते थे। उनका यह भी दृढ़ विश्वास था कि सत्याग्रह ने महिलाओं को घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर समाज एवं देश की सेवा करने का मौका दिया है। यह बात उनके इस कथन से स्पष्ट होती है कि मैंने महिला-सेवा को रचनात्मक कार्यक्रम में शामिल किया है, क्योंकि सत्याग्रह ने स्वत: ही महिलाओं को जिस तरह अँधेरे से बाहर निकाल दिया है, वैसा इतने कम समय में और किसी भी उपाय से नहीं हो सकता था। सत्याग्रह का समानता-रूपी हथियार भारतीय परंपरा में महिलाएँ बहूधा प्रयोग करती रहती हैं। उल्लेखनीय है कि आधुनिक नारीवाद महिलाओं के संघर्ष की वह दास्ताँ है या वह दौर है जिसमें महिलाएँ अपने ऊपर थोपी गई गृहिणी की छवि तथा मातृत्व के नाम पर लादी गई कृत्रिम मधुरता एवं कोमलता की छवि से बाहर निकल कर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं पारिवारिक सभी क्षेत्रों में बराबर की हिस्सेदारी की माँग कर रही हैं। यह नारीवाद उनके अपने शरीर, अपने मन तथा आत्म-सुख की नई परिभाषा गढ़ता है। जिस तरह से पुरुषों को सामाजिक पहचान मिलती है, राजनीतिक शक्ति उपलब्ध है, आर्थिक स्वतंत्रता है तथा भौतिक उपभोग की सामग्रियाँ उपलब्ध हैं , उन सारी उपलब्ध सुविधाओं को महिलाएँ भी हासिल करना चाहती हैं। गांधीजी ने स्वयं कहा है कि मैं महिलाओं के अधिकारों के बारे में ऐसा मानता हूँ कि उनका उत्थान तभी संभव है जब वह अपने आपको उन जंजीरों से आजाद करने का प्रयत्न करें जिन्हें उन्होंने आभूषण मान कर स्वयं के ऊपर लाद रखा है। इसमें महिलाएँ वास्तव में तभी सफल होंगी जब वे खुद इसके लिए प्रयास करेंगी। गांधीजी ने पर्दा-प्रथा का भी विरोध किया था और इसे उन्होंने महिलाओं के विकास में एक बड़ी बाधा के रूप में देखा। गांधीजी के सर्वोदय की संकल्पना को भी यदि हम नारीवाद से जोड़ने का उपक्रम करें तो समस्त समाज के उदय का अर्थ पुरुष के साथ-साथ स्त्री का भी उदय है। समाज के अंतिम व्यक्ति तक विकास का लाभ पहुँचे तथा वह भी विकास की उन सुविधाओं का लाभ उठा सकें जो वह हाशिए पर रहते हुए उठा पाने में अ क्षम होता है। इस प्रकार गांधीजी की चिंतन-प्रणाली नारीवाद को व्यापक महत्व प्रदान करती है। इसमें, यानी सर्वोदय की संकल्पना में नारी का विकास भी सम्मिलित है। सर्वोदय का लक्ष्य तभी संपूर्ण एवं साकार होगा जब इसमें या इसके माध्यम से महिलाओं की स्थिति बेहतर होगी या पुरुषों के बराबर होगी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि -- गांधीजी के नारीवादी दृष्टिकोण के मुख्यतः तीन विमर्श-बिंदु- दैहिक स्वराज, उत्तराधिकार तथा सामाजिक सहभागिता हैं। महिलाओं को सशक्त बनाने की कोशिश के सन्दर्भ में उनका कहना था कि महिलाओं का अपने शरीर पर विवाह के बाद भी अपना ही पूर्ण अधिकार होता है। बिना उनके चाहे कोई उन्हें छू भी नहीं सकता,चाहे वह उनका पति ही क्यों न हो।महिलाओं का उनकी सम्पत्ति पर पूरा हक है। उनकी सम्पत्ति किसी

दूसरे को बिना उनकी सहमति के हस्तांतरित नहीं की सकती। संपत्तिहीनता ही उनके शोषण व उत्पीड़न का कारण है और पुरुष-वर्चस्ववाद का भी। हर स्तर पर महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित करना आवश्यक है ,चाहे वह सामाजिक स्तर हो या राजनीतिक स्तर । इस सन्दर्भ में महिलाओं को उन्होंने कभी भी पुरुष से अलग रख कर नहीं देखा। उनका कहना था कि लैंगिक समानता का मसला एक सामाजिक मसला है जिसका निदान सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव के बगैर असंभव है।

पाश्चात्य नारीवादी दृष्टिकोण की तरह यह स्त्री-पुरुष के बीच वैमनस्य, टकराव, घृणा व दुराव की स्थिति उत्पन्न नहीं करता है,बल्कि गांधीजी का नारीवाद तो दोनों को एक-दूसरे का संपूरक एवं अनुपूरक मानता है।वस्तुतः,गाँधीवादी नारीवाद आधुनिक पाश्चात्य नारीवाद से न्यूनाधिक साम्य रखते हुए भी एक पृथक् एवं विशिष्ट प्रकार का नारीवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो पाश्चात्य दृष्टिकोण की तुलना में अधिक संवेदनशील, मानवोपकारी,समाजोन्मुख व सर्वहितकारी है। गाँधीवादी नारीवाद आधुनिक पाश्चात्य नारीवादी विचारधारा को बल प्रदान करने के साथ-साथ नारीवाद का एक वैकल्पिक प्रारूप भी प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि गांधीजी का नारीवादी दृष्टिकोण राजनीति के अध्येताओं के लिए आज भी चिंतन, मनन एवं विवेचन का एक सशक्त विचार बना हुआ है। नारीवाद की सफलता गांधीवादी विचारों के अनुगमन में अन्तर्निहित है, क्योंकि गांधीजी का नारीवाद नारी -संवेदनशीलता से युक्त है और वैश्विक समाज के लिए एक सार्वभौमिक एवं सैद्धांतिक अपील है ।

डॉ सुमन कुमार
एसो. प्रोफेसर,राजनीति विज्ञान विभाग, राजधानी कॉलेज,दिल्ली
डॉ सुशांत कुमार झा
असि. प्रोफेसर,राजनीति विज्ञान विभाग , राजधानी कॉलेज, दिल्ली

संदर्भ : Note and References

1. see,Lyn Norvell(1997)Gandhi and The Indian Women's Movement*The British Library Journ al,* Vol. 23, No. 1 (SPRING 1997), pp. 12-27 , Published By: British Library , Access from *htt ps://www.jstor.org/stable/42554439*

2. Barbara Southard (1981), "Feminism of Mahatma Gandhi", *Gandhi Marg*, (New Delhi), G andhi Peace Foundation: vol. 3 (71): October 1981, p.403.

3. For detail see,*Speeches and Writings of Mahatma Gandhi*,(1909,1922). Madras: G.A. Nat esan & co., pp. 426-28.

4*. Young India*, (Bombay), 17 October 1929. Access from https://www.gandhiashramsevagr am.org/my-dream-india/chapter-54-regeneration-of-indian-women.php

5.Young India, 21 june1929, p.207.

6. Young India, 5 August 1926 p, 276.

7. See, M.S.Patel (1953), *The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi*, Ahmedabad: N avjivan Publishing House: p.109.

8. "Stri-Vimarsh aur Gandhi ka Sach" Hindustan (hindi ed.), (New Delhi) 7 October 2009, A ccess from https://www.livehindustan.com/news//article1-story-75387.html#:~: text

9. Sujit Debnath(2015), Feminism in the vision of Mahatma Gandhi, *International Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Studies (IJIMS*), 2015, Vol 2, No.4, 121-123. 121 Access from, http*://www.ijims.com ISSN: 2348 – 0343*

सुशासन, सूचना और नागरिक अधिकार : लोकतांत्रिक समाज की सैद्धांतिकी

निकिता जायसवाल

डॉ. विवेक जायसवाल

आज सूचना का अधिकार उत्तम शासन की एक बुनियादी आवश्यकता बन चुकी है। लोकतंत्र में देश की जनता अपने द्वारा चुने हुए व्यक्ति को शासन करने का अवसर प्रदान करती है और अपेक्षा करती है कि सरकार पूरी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ अपने दायित्वों का पालन करेगी I ऐसी परिस्थितियों में सूचना के अधिकार को भागीदारीपूर्ण प्रजातंत्र को सुदृढ़ करने और लोककेंद्रित अधिशासन की शुरुआत करने की एक कुंजी के रूप में देखा जा सकता है। भारत में लोकतंत्र अवश्य है लेकिन ज्यादातर जनता में जानकारी का अभाव है। उन्हें सरकारी कार्यालयों/पदाधिकारियों के कामकाज की विशेष जानकारी नहीं होती और न ही विधायिका के बारे में पर्याप्त सूचना होती है। जो लोग जानकार हैं उनकी संख्या बहुत कम है, इसलिए भारत का लोकतंत्र मजबूत लोकतंत्र नहीं बन पाया है। इस क्रम में भारतीय लोकतंत्र को मजबूत करने और शासन में पारदर्शिता लाने के उद्देश्य से भारतीय संसद ने सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 पारित किया।

संविधान का अनुच्छेद 19(1)(क) वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल अधिकार को प्रत्याभूत करता है। इस अधिकार का उपभोग करने के लिए पूर्व आपेक्षा ज्ञान और सूचना है। सूचना का अधिकार एक संवैधानिक अधिकार है जो वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का एक पहलू है, जिसमें सूचना प्राप्त करने का अधिकार शामिल है। सूचना के अधिकार की आवश्यकता को न केवल भारत वरन् व्यापक रूप से विश्व के सभी देशों में महसूस किया गया है। वास्तविक लोकतंत्र का कार्य करने के लिये अनिवार्य है कि लोगों को वर्तमान मामलों तथा व्यापक राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक मुद्दों के बारे में सूचित किया जाए।

सूचना के अधिकार की आवश्यकता पर बल देने का लक्ष्य प्रशासन और सार्वजनिक जीवन में पारदर्शिता लाना है। पारदर्शिता की कमी व्यापक भ्रष्टाचार के मुख्य कारणों में से एक है, सूचना का अभाव लोगों को पूर्ण रूप से अपनी अन्तः शक्ति का विकास करने और अपने मानवीय अधिकारों का

अनुभव करने के अवसर से वंचित करता है। जस्टिस मैथ्यू ने अपने एक फैसले में कहा था- "सरकार या उसके किसी अधिकारी द्वारा सार्वजनिक ढंग से किए गए किसी भी सार्वजनिक कार्य के बारे में जानने का अधिकार देश के हर व्यक्ति को है। ऐसे कार्य की बारीक से बारीक चीजों को जानने का हक है"।

वस्तुतः निर्णय प्रक्रिया में पारदर्शिता लोगों से जुड़ाव में सहायक होती है। प्रशासन में पारदर्शिता से तात्पर्य है सरकार के कार्यकलापों के बारे में आम जनता को जानकारी की सुस्पष्टता एवं उपलब्धता। सामान्यतः पारदर्शिता को जनता तक सूचना की पहुंच तक समझा जाता है परन्तु यह सूचना की पहुंच तक सीमित नहीं है बल्कि यह उससे कहीं आगे है। यह लोकतंत्र का आधारसूत्र है जिसकी मान्यता है कि लोगों का विवेक और ज्ञान शासन के तंत्र को कुशल बनाए रख सकता है।

पारदर्शिता सुशासन के आवश्यक तत्वों मे से एक है। सूचना का अधिकार नागरिकों को यह अवसर देता है कि वे सरकारी रिकार्डों को जान सकें। सरकारी कार्यशैली के बारे में जानने से नागरिकों के सुशासन के प्रति बोध व भागीदारी में भी वृद्धि होती है। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सूचना का अधिकार सुशासन की अनिवार्य जरूरत है। जितनी अधिक मात्रा में नागरिकों को सरकारी सूचना सुलभ होगी उतनी ही अधिक सामुदायिक जरूरतों के प्रति सरकारी पद्धति की प्रतिक्रियाशीलता अधिक होगी। सूचना के बिना लोग अपने अधिकारों का प्रभावी ढंग से प्रयोग नहीं कर सकते। इस अधिनियम के पारित हो जाने से शासन में नागरिकों की प्रत्यक्ष और सीधी सहभागिता बढ़ी है। अब आम नागरिक एक आवेदन के माध्यम से सरकारी कार्यालयों की कार्यप्रणाली के बारे में कुछ भी जान सकता है। सूचना का अधिकार के आने से प्रशासनिक कार्यकुशलता के स्तर में सुधार हुआ है जो प्रशासन को और अधिक चुस्त और सक्रिय बनाने में सहयोग करेगा। निर्वाचन प्रतिनिधियों पर अंकुश लगाने और मतदाता के प्रति जवाबदेह बनाने के लिए सूचना के अधिकार का अत्यंत महत्व है।

सूचना के अधिकार के महत्व को केवल भारत जैसे कुछ राष्ट्रों ने ही स्वीकार नहीं किया है बल्कि संयुक्त राष्ट्र संघ भी मानता है कि सूचना के अधिकार के बिना विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का कोई खास औचित्य नहीं है।

इक्कीसवीं सदी के उत्तरार्ध की शुरुआत में अधिकांश देशों ने इस अधिकार को अपनाने में काफी सक्रियता दिखाई। अपने नागरिकों को सूचना का अधिकार प्रदान करने वाले देशों में स्वीडन का नाम

सबसे पहला लिया जाता है जिसने 1766 में अपने नागरिकों को सूचना के अधिकार के तहत सरकारी कागजात को देखने की इजाजत देने की वकालत सबसे पहले की थी। 1951 में फिनलैंड ने सूचना की स्वतंत्रता को कानून का रूप प्रदान किया। डेनमार्क व नार्वे ने 1970 में इसे अपनाया। अमेरिका ने 1966 में कानून पारित कर 1974 में संशोधन किया। यह कानून नागरिकों के सूचना प्राप्ति के अधिकार को सुनिश्चित कर इस बात का प्रावधान करता है कि अगर सरकार सूचना से इंकार करती है तो उसे इसका औचित्य सिद्ध करना होगा। 70 के दशक में इस पर कानून बनाने वाले देशों में आस्ट्रिया, फ्रांस, नीदरलैंड हैं, वहीं 80 के दशक के प्रारंभ में आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैंड ने इस अधिकार को स्वीकृत कर कानून पारित किया।

वैश्विक परिदृश्य में सूचना के अधिकार पर चर्चा करने के पश्चात् भारतीय परिदृश्य की बात करें तो अंग्रेजी शासन के समय से जारी सरकारी गोपनीयता कानून की आड़ में भारतवासियों को सरकारी जानकारी रखने से वंचित रखा गया। सरकारी गोपनीयता अधिनियम 1923 में सरकार द्वारा घोषित गुप्त सूचना के आदान-प्रदान या सार्वजनिक करने पर दोनों पक्षों के विरूद्ध दंड का प्रावधान है। स्वतंत्रता से पूर्व सूचना के अधिकार के विषय में अनेक गोपनीय कानून थे जो शासन के किसी विषय से संबधित किसी भी सूचना के दस्तावेज को प्रकाशित करने की मनाही करते हैं। स्वतंतत्रा प्राप्ति के बाद 1981 का वर्ष काफी महत्वपूर्ण रहा जब सर्वोच्च न्यायालय ने एस.पी. शुक्ला बनाम भारत सरकार में व्यवस्था की थी कि खुली सरकार की अवधारणा जानने के अधिकार से उत्पन्न होती है जो संविधान के अनुच्छेद 19 (1) में निहित है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर ऐतिहासिक निर्णय देते हुए आम व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा की है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण निर्णय 'भारत सरकार बनाम एसोसिएशन ऑफ़ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स' का है जिसमें नागरिकों द्वारा अपने जनप्रतिनिधियों के शैक्षणिक योग्यताओं, संपत्तियों और आपराधिक पृष्ठभूमि के बारे में सूचना प्राप्त करना है। सन् 2003 से विभिन्न राज्य सरकारों में अपने-अपने राज्यों में सूचना का अधिकार अधिनियम पारित किए। इस अधिनियम का प्रारूप बनाने व लागू करने के संबंध में राजस्थान, तमिलनाडु, गोवा, कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं दिल्ली जैसे राज्यों ने पहलकदमी की। यू.पी.ए. सरकार ने 23 दिसम्बर 2004 को संसद में 'सूचना का अधिकार विधेयक 2004' पारित कर दिया। 15 जून 2005 को राष्ट्रपति ने अपनी मंजूरी दे दी। अधिनियम की कुछ धाराएं 15 जून 2005 को लागू हो गईं और कुछ धाराएं 120 दिन बाद 12 अक्टूबर 2005 को लागू हुईं।

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के प्रावधान सरकारी कामकाज में पारदर्शिता के साथ भ्रष्टाचार को रोकने तथा सरकार और उसकी संस्थाओं को नागरिकों के प्रति उत्तरदायी बनाने में मदद करेंगे। सुशासन को सुनिश्चित करने में सूचना का अधिकार की भूमिका महत्वपूर्ण है।

भारत में सूचना के अधिकार कानून की मांग की शुरुआत करने का श्रेय राजस्थान के 'मजदूर किसान शक्ति संगठन' नामक एक नागरिक संगठन को जाता है। इस संगठन के जरिये सामाजिक कार्यकर्ता अरुणा रॉय, निखिल डे, अरविंद केजरीवाल, पंकज राय जैसे कार्यकर्ताओं ने अपने स्तर पर आम आदमियों को उनके अधिकार व विशेषाधिकार के बारे में जागरूक व शिक्षित करने में अहम भूमिका निभाई। सूचना के अधिकार के लिए 'मजदूर किसान शक्ति संगठन' का आन्दोलन ग्रामीण जनता को एक जगह इकट्ठा कर सरकारी कार्यक्रमों से संबधित फाइलों के सार्वजनिक करने में सहायक हुआ। इस संगठन ने जनसुनवाई का आयोजन कर सरकारी अधिकारियों को विभिन्न कार्यक्रमों के खर्चे के प्रति जवाबदेह होने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार यह जनसुनवाई कार्यक्रम पारदर्शिता व जवाबदेही को स्थानीय स्तर पर सुनिश्चित करने में कारगर रहा। इसका प्रमाण हमें राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। पारदर्शिता व जवाबदेही 'नरेगा' की पहचान है। सूचना का अधिकार जन साधारण के हाथों में एक ऐसा हथियार है जिसके प्रयोग से समाज में बढ़ रहे भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण एवं अनियमितताओं पर अकुंश लगाया जा सकता है।

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 में दिए गए प्रावधानों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करने ,उन्हें विनियमित करने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा केन्द्रीय सूचना आयोग का गठन किया गया है। केन्द्रीय सूचना आयोग, केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों/संस्थानों की सूचना से संबंधित शिकायतों के लिए सर्वोच्च निकाय है। जब किसी नागरिक को अधिनियम के तहत सूचना की प्राप्ति नहीं होती है तो इसके लिए विभिन्न स्तरों पर अपील का भी प्रावधान है।

भारत में सूचना का अधिकार हमें सूचना के व्यापक अर्थों तक ले जाता है। सूचना के अधिकार के तहत सूचना के विभिन्न रूपों- सूचना ,अभिलेख, दस्तावेज, ज्ञापन, ई-मेल, सलाह, प्रेस विज्ञप्ति, परिपत्र, आदेश , लॉगबुक, रिपोर्ट, पत्र, नमूने मॉडल, इलेक्ट्रॉनिक रूप में रखी आंकड़ों संबंधी सामग्री आदि को शामिल किया गया है। यह भी जानना आवश्यक है कि सूचना का अधिकार के तौर पर क्यों लिया जाए और इसकी क्या आवश्यकता है? यदि सूचना जनहित में हो और इसे छिपाया जाए तो इसे

किसी भी लोकतंत्र के लिए अच्छा नहीं कहा जा सकता। सूचना आम जनता के बीच पहुंचनी चाहिए। अक्सर शासक सूचना का प्रदान करने या जानकारी देने से बचने के लिए उपाय ढूंढते हैं I दूसरे अर्थों में यह भी कह सकते हैं कि सूचना के खुलासे का डर सरकारी निर्णयों में सुधार ला सकता है । देश के विकास कार्यक्रमों और नीतियों की जानकारी आम लोगों को देने का अर्थ है- आम लोगों को सशक्त करना जिससे वे भी विकास में योगदान दे पाएँ । सूचना के अधिकार के समर्थक और कानून विशेषज्ञ मानते हैं कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में सूचना का अधिकार अति महत्वपूर्ण है और इसे मूलतः मानव अधिकार के रूप में देखा जाना चाहिए। इन अर्थों में सूचना का अधिकार अधिनियम खुलापन, पारदर्शिता और जवाबदेही का नया युग लाने वाला शक्तिशाली यंत्र है। सूचना प्रदान करने का अर्थ है कि संस्थाओं द्वारा किये जा रहे कार्यों को हर तरह से सार्वजनिक करना ।

इसके लिए दो तरह की व्यवस्थाएं बनाई गई हैं । पहला यह कि सरकारी संस्थाओं को अपनी पहल पर सूचनाओं की उन मुख्य श्रेणियों को प्रकाशित और प्रसारित करना होता है जिनमें लोगों की सामान्य दिलचस्पी है, जैसे-संस्था का सांगठनिक ढांचा, उसके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं, महत्वपूर्ण प्रपत्र, नियमावली इत्यादि।

दूसरा, सरकारी संस्थाओं को ऐसी पद्धतियां बनानी होती हैं जो किसी के द्वारा आवेदन पर किसी खास सूचना तक उनकी पहुंच को सहज बनाए. इस पद्धति में आवेदन तथा अपील जैसी प्रक्रियाएं शामिल हैं। आमतौर पर सरकारी संस्थाओं में सूचना आवेदनों को प्राप्त करने और उन पर कार्रवाई कर सूचनाएं प्रदान करने की जिम्मेदारी संस्था के ही किसी अधिकारी को सौंपी जाती है।

सूचना का अधिकार अधिनियम हर नागरिक को अधिकार देता है कि वह सभी सरकारी विभाग, पब्लिक सेक्टर यूनिट, किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता से चल रही गैर सरकारी संस्थाओं व शिक्षण संस्थाओंआदि विभागों से कोई भी सूचना प्राप्त कर सकता है। अधिनियम में प्रावधान है कि हर सरकारी विभाग में एक या एक से अधिक लोक सूचना अधिकारी बनाए जाएँ। यह अधिकारी सूचना के अधिकार के तहत आवेदन स्वीकार करते हैं तथा मांगी गई सूचनाएं एकत्र करके उसे आवेदनकर्ता को उपलब्ध कराते हैं। (धारा-5(1)) लोक सूचना अधिकारी की जिम्मेदारी है कि वह 30 दिन के अन्दर (कुछ मामलों में 45 दिन तक) सूचना उपलब्ध कराएं। (धारा-7(1)) यदि अधिकारी आवेदन लेने से मना करता है, तय समय सीमा में सूचना नहीं उपलब्ध कराता है तो 250/- रूपये प्रतिदिन के हिसाब से 25000/-

रुपए तक का जुर्माना उसके वेतन से काटा जा सकता है साथ ही उसे सूचना भी देनी होगी। यह अधिनियम गोपनीयता के अंधकार से पारदर्शिता के युग में ले जाता है। इसके माध्यम से शासन की नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में जन सहभागीदारी सुनिश्चित की जाती है। सूचना तक पहुंच का अधिकार समाज के गरीब और कमजोर वर्गों को सार्वजनिक नीतियों और कार्यों के बारे में जानकारी मांगने और प्राप्त करने हेतु सशक्त बनाता है।

सूचना के निरंतर प्रवाह से अनियमितताओं तथा भ्रष्टाचार में कमी आई है। सूचना के अधिकार के विभिन्न दस्तावेजों की जांच एवं उनकी प्रति प्राप्त करने के कानूनी अधिकार से भ्रष्टाचार करने वालों के लिए यह खतरा पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ जाता है। यह भय स्वतः नियंत्रण का कार्य करता है। इस अधिनियम के आ जाने से गतिशील एवं सक्षम पंचायती राज की स्थापना संभव हो सकेगी। साथ ही जनता को बेहतर प्रशासनिक सेवाएं मिलती हैं। स्थानीय प्रशासन में सुशासन के दृष्टिगत सूचना का अधिकार महत्वपूर्ण उपादान है। सूचना का अधिकार न केवल नागरिकों को शासन तक पहुँच को सुनिश्चित करना है, अपितु शासकीय नीतियों के क्रियान्वयन में पारदर्शिता भी लाता है। सूचनाओं तक आम जन की पहुँच ने स्थानीय प्रशासन की संस्थाओं को लोकमुखोपेक्षी एवं जवाबदेह बनाता है। 'सूचना का अधिकार' अधिनियम 2005 ने मानव अधिकार को एक नया आयाम प्रदान किया है। यह सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक न्याय की प्राप्ति का अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है। यह अधिकार सरकार के उत्तरदायित्व, जवाबदेही पारदर्शिता का एक प्रमुख उदाहरण है। इस अधिनियम के तहत जनसाधारण यह भी जान सकता है कि शासन व प्रशासन जनता के प्रति दायित्वों का किस हद तक निर्वहन कर रहा है। अधिनियम में सरकारी अभिलेखों के कंप्यूटरीकरण पर भी बल दिया गया है इसके दो लाभ है पहला आंकड़े आदि रखने व ढूढ़ने में समय कम लगता है दूसरा स्थान की बचत हो जाती है।

लोकतंत्र की कमियों को दूर कर प्रशासन को उत्तरदायी और पारदर्शी बनाने में अधिनियम एक सशक्त उपाय है। प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार और पद के दुरुपयोग की प्रवृत्ति को रोकने में इस प्रभावी साधन भी माना जाता है। कतिपय क्षेत्रों को छोड़कर अन्य विषयों के संबंध में प्रशासकीय गोपनीयता का प्रयास, प्रशासकीय आचरण को न केवल संदिग्ध बनाता है अपितु नागरिकों को जानकारी के अधिकार से वंचित करता है जो लोकतांत्रिक मूल्यों और भावना के विपरीत है, शासकीय योजनाओं का लाभ आमजन तक पहुँचे, इसके लिए योजनाओं के संबंध में सूचनाओं तक आम नागरिक की पहुँच अति आवश्यक है।

सुशासन के लिए कार्यपालिका की कार्यवाही में पारदर्शिता एवं जबावदेही शामिल होना चाहिए और यह पारदर्शिता सूचना का अधिकार अधिनियम के पारित होने के पश्चात सुनिश्चित हुई है। कर्नाटक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति बिल्लापा के कथनानुसार ''सूचना का अधिकार एक ऐसा हथियार है जो

जनमानस के भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन में सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। न्यायिक प्रशासन भी इस अधिनियम के भय के कारण सचेत और सजग हो गया है तथा बिना वजह किसी भी केस को लटकाने से बचता है। सूचना का अधिकार अधिनियम प्रशासकीय शुचिता एवं क्रियान्वयन के क्षेत्र में पारदर्शिता की दिशा में एक सकारात्मक एवं क्रांतिकारी परिवर्तन है।

भारत में पारित सूचना का अधिकार विश्व के अन्य देशों के अधिनियमों की तुलना में एकदम अलग है भारत में यह एक वैधानिक अधिकार है। भारत में यह अधिनियम विधानपालिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, वित्त पोषित निकायों पर भी लागू होता है। सूचना के अधिकार की आवश्यकता पर बल देने का लक्ष्य प्रशासन और सार्वजनिक जीवन में पारदर्शिता लाना है। पारदर्शिता की कमी सभी प्रकार के भ्रष्टाचार के मुख्य कारणों में से एक है, सूचना का अभाव लोगों को पूर्ण रूप से अपनी अन्तः शक्ति का विकास करने और अपने मानवीय अधिकारों के पूर्ण क्षेत्र को अनुभव करने के अवसर से वंचित करता है। वस्तुतः निर्णय प्रक्रिया में पारदर्शिता लोगों से जुड़ाव में सहायक होती है। प्रशासन में पारदर्शिता से तात्पर्य है सरकार के कार्यकलापों के बारे में आम जनता को जानकारी की सुस्पष्टता एवं उपलब्धता।

सूचना के अधिकार के माध्यम से ही एक ऐसा आधार तैयार किया जा सकता है कि जिस पर सुशासन, पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और शासन में भागीदारी की सशक्त नींव खड़ी की जा सकती है। जनता शासन से अपने हकों का हिसाब मांगने लगी I कुछ लोगों ने इसे 'दूसरी आजादी' नाम भी दिया है। इस अधिनियम का उद्देश्य ही है शासन में पारदर्शिता लाना और नौकरशाहों को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाना और जनता की शासन में भागीदारी सुनिश्चित करना। यदि सरकार की नीतियों में पारदर्शिता हो तो जनता का शासन में विश्वास बढ़ता है। यदि सरकार की नीतियों में पारदर्शिता न हो तो शासन की नीतियों को प्रभावी रूप से लागू नहीं किया जा सकता। जागरूक नागरिक और शासन में पारदर्शिता से हम एक गतिशील, प्रगतिशील एवं रचनात्मक लोकतंत्र की स्थापना कर सकते हैं। यह अधिनियम सरकार और जनता में एक सार्थक संवाद का साधन सिद्ध हो रहा है। इससे सामाजिक और क्षेत्रीय विषमताओं में भी कमी आएगी और आम आदमी को सच्चे अर्थों में सामाजिक न्याय मिलने लगेगा |

निकिता जायसवाल

अतिथि प्राध्यापक ,शासकीय इंदिरा गाँधी महिला महाविद्यालय,सतना (म.प्र.)

डॉ. विवेक जायसवाल

सहायक प्राध्यापक ,डॉ.हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय ,सागर (म.प्र.)

स्रोत एवं संदर्भ:

- https:// hi.m. wikipidia./wiki/ सूचना का अधिकार अधिनियम 2005
- https:// www rachanakar.org/2015/06/blog-post-58html2m=1
- सूचना का अधिकार विधि, राजपाल कटारिया ओरियंट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
- हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, अरूण पान्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- प्रशासन एवं लोकनीति, मनोज सिन्हा, ओरियंट ब्लेकस्वान, नई दिल्ली
- सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 और पारदर्शी शासन तंत्र, डॉ. राजकुमार सिवाच, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद 2010
- सूचना का अधिकार कुछ सामाजिक व कानूनी पहलू, डॉ. शालू निगम, वी द पीपुल पब्लिशर्स, नईदिल्ली 2006
- गुड गवर्नेन्स इन इण्डिया, सी.पी. बर्थवाल, दीप एंड दीप पब्लिकेशन्स प्रा. लि. नई दिल्ली 2003
- गुड-गवर्नेन्सः डेमोक्रेटिक सोसायटी एंड ग्लोबलाइजेशन, संपादन, सुरेन्द्रमुंशी, बिजूपाल अब्राहिम, 2006
- क्राइसिस ऑफ गवर्नेन्स, भवानी सेन गुप्ता, कोनार्क पब्लिकेशन्स, नईदिल्ली 1996
- जैन एण्ड खुराना (2006) सोर्सबुक ऑन राइट टू इन्फारमेशन, कनिष्का पब्लिशेर्स, दिल्ली
- आचार्य एन. के. (2007) राइट टू इन्फारमेशन एक्ट, एशिया लॉ हाउस, हैदराबाद
- राव, ए.सी.पी. (2008) द राइट टू इन्फारमेशन एक्ट, 2005 मिलेनियम पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
- दीवान, व्ही. के. (2010) राइट टू इन्फारमेशन एक्ट 2005, आक्सफोर्ड प्रेस, नई दिल्ली
- श्रीवास्तव स्मिता (2010) भारत में सूचना का अधिकार: कार्यान्वयन और प्रभाव, एफ्रो एशियन जर्नल ऑफ शोसल साइंस खण्ड 1 नं 1 क्वार्टर चतुर्थ
- राजगढिया, विष्णु व केजरीवालअरविन्द, सूचना का अधिकार: व्यावहारिक मार्गदर्षिका
- सैनी, आर. डी. व मंगलानी डॉ. रूपा, सूचना का अधिकार, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2002
- आर. सी. त्रिपाठी, सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 द्विभाषी संस्करण, एकता लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 2007
- के. बी. राय व प्रकाश कुमार, सूचना का अधिकार, प्रभात पेपर बैक्स, नईदिल्ली 2008

स्वदेशी और आत्मनिर्भर भारत : शैक्षिक संदर्भ

संजय शर्मा एवं अश्वनी

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 15अगस्त 2020 को लाल किलेकी प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित करते हुए आत्मनिर्भर भारत अभियान पर जोर दिया और कहा कि आत्मनिर्भर भारत शब्द नहीं, 130करोड़ देशवासियों के लिए मंत्र है। प्रधानमंत्री ने कहा कि आत्मनिर्भर भारत का आशय केवल आयात कम करना ही नहीं, हमारी क्षमता, रचनात्मकता और स्किल्स को भी बढ़ाना हैं। हमें *मेक इन इंडिया* के साथ-साथ *मेक फॉर वर्ल्ड* की व्यापक संकल्पना के साथ आगे बढ़ना होगा। कोरोना महामारी के समय में स्वदेशी और आत्मनिर्भर भारत की आवश्यकता महसूस की गई है। कोविड के दौर में आर्थिक समस्याओं को दूर करने में स्व-रोजगार व आत्मनिर्भरता की सोच-समझ एक विचारधारा के रूप में उभरी है। प्रधानमंत्री ने आत्मनिर्भर भारत का नारा देते हुए कहा कि हमने आपदा को अवसर में बदल दिया। आत्मनिर्भर भारत के लिए प्रधानमंत्री ने पांच स्तम्भों अर्थव्यवस्था, आधारभूत ढांचा, प्रणाली, जीवंत लोकतंत्र और मांग को आवश्यक माना है। आत्मनिर्भर भारत पर कोरोना दौर में व्यापक मंथन शुरू हुआ है। *वोकल फॉर लोकल* के नारे ने भी लोगों को सोचने पर मजबूर किया है। आत्मनिर्भर भारत की सोच का उद्देश्य केवल कोरोना महामारी से लड़ने का नहीं है, बल्कि भविष्य के भारत का पुनर्निर्माण करना है। आत्मनिर्भर भारत की सोच समझ में स्वदेशी का नारा भी समाया हुआ है लेकिन साथ ही वैश्विक सोच समझ को भी ध्यान में रखना है । फिक्की की अध्यक्ष संगीता रेड्डी ने कहा है कि मजबूत और आत्मनिर्भर भारत दुनिया के लिए बहुत बड़ा योगदान कर सकता है। हम ऐसी दुनिया में रहते हैं, जहां सभी एक-दूसरे पर निर्भर हैं और ऐसे में दुनिया भर की बेहतरी में भारत का योगदान बढ़ना चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब हम अंदर से मजबूत हों। नई शिक्षा नीति के बारे में प्रधानमंत्री ने कहा कि भारत को आधुनिक और आत्मनिर्भर बनाने में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी । यह नूतन शिक्षा नीति हमारे देश की जड़ों से विद्यार्थियों को जोड़ेगी और साथ ही उन्हें एक वैश्विक नागरिक के रूप में विकसित करने के अवसर देगी ।

स्वदेशी और आत्मनिर्भरता की संकल्पना : भारतीय चिंतन दृष्टि

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में स्वदेशी की सोच ने ही स्वराज का रास्ता दिखाया। स्वदेशी केवल आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा यह आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन का सूचक बन गया। स्वदेशी से तात्पर्य स्वदेशी वस्तुओं, स्वदेशी सरकार तथा स्वदेशी व्यवस्था की स्थापना से था। स्वामी विवेकानन्द ने विदेशों में भारतीय संस्कृति की महानता को, धर्म के सार्वदेशिक स्वरूप को स्पष्ट और तार्किक रूप में रखा । जिससे भारतीयों में अपने देश व संस्कृति को लेकर एक आत्मनिर्भरता की भावना विकसित और समृद्ध हुई । स्वामी विवेकानन्द ने देशवासियों को शक्ति और निर्भयता का स्पष्ट संदेश दिया। वे भारत की सांस्कृतिक महानता के मूल प्रचारक थे। विवेकानन्द ने स्वयं पर विश्वास करने की प्रेरणा दी, जिससे कुछ करने की क्षमता विकसित होती है। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय राष्ट्रवाद को एक नए स्वरूप में प्रस्तुत किया, उसे अपनी ही धरती पर, अपने ही पैरों पर खड़े होने की प्रेरणा दी, धर्म में विश्वास और कर्म में लगन का मंत्र फूंका। स्वामी विवेकानंद ने आगाह किया कि यदि भारतीयों ने अपनी आध्यात्मिकता का परित्याग कर दिया तो उनका विनाश हो जाएगा। इस तरह आध्यात्मिकता पर आधारित स्वदेशी व आत्मनिर्भर बनने के प्रारूप को विकसित किया । राष्ट्रीय शक्ति के निर्माण के लिए उन्होंने शिक्षा- प्रसार पर बड़ा बल दिया। उनका मत था कि सच्ची शिक्षा द्वारा ही एक राष्ट्र अपनी वास्तविक शक्ति का विकास कर सकता है। विवेकानंद ने लोगों को कर्म के लिए जागृत किया। विवेकानंद ने उस समय की शिक्षा प्रणाली को गैर-भावात्मक बताया था क्योंकि उससे विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति के बारे में कुछ भी सीखने को नहीं मिलता था। विवेकानंद ने कहा है कि व्यक्ति में ज्ञान स्वतः निहित अर्थात अंतर्निहित है। ज्ञान बाहर से नहीं आता, वह तो व्यक्ति के भीतर ही है। उनके मत में आत्म विकास ही ज्ञान का महत्वपूर्ण सोपान है।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने राष्ट्र और समाज को वेदों के आधार पर बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने भारतीयों को 'वेदों की ओर लौटो' का आह्वान किया जिससे जनमानस में भारतीय संस्कृति में आत्मविश्वास पैदा हुआ। स्वामी दयानंद ने भारतीयों के हृदय में स्वधर्म और स्वदेश के प्रति स्वाभिमान उत्पन्न करने का महान काम किया। वैदिक राष्ट्रवाद का परचम फहराने में स्वामी दयानंद अग्रणी थे, उन्होंने पश्चिम की चकाचौंध से प्रभावित देशवासियों में अपनी वैदिक संस्कृति की महानता को जगाया। स्वामी दयानंद स्वयं स्वदेशी के बहुत बड़े समर्थक थे। उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना प्रत्येक व्यक्ति का एक धार्मिक कर्त्तव्य बताया। इतिहासकार ताराचंद(1965) के अनुसार *स्वामी दयानंद ने जो आंदोलन शुरू किया,उससे आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न हुई और भारतीयों में*

आत्म सम्मान की भावना को बल मिला। स्वामी दयानंद ने ऐसी शिक्षा पद्धति पर बल दिया जो कि पूर्ण रूप से राष्ट्रीय हो और जो ऐसे नागरिक उत्पन्न करे, जिनमें समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना भरी हो।

बाल गंगाधर तिलक भारतीय जनमानस को शिक्षा, विचारों और जीवन पद्धति से स्वदेशी बनाकर विदेशी विचारों से मुक्त कराना चाहते थे। तिलक की स्वराज्य की अवधारणा भी बहुत कुछ स्वदेशी की संकल्पना पर ही आधारित थी। जिसका उद्देश्य आत्मनिर्भरता था। उस दौर में स्वदेशी ही देश-प्रेम का प्रतीक हो गया था। तिलक का मानना था कि स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा ही औपनिवेशिकता से मुक्ति के उपाय हैं। तिलक ने स्वदेशी आंदोलन के आध्यात्मिक,शैक्षिक,आर्थिक व राजनीतिक पहलुओं पर भी ध्यान दिया और तत्कालीन शिक्षा पद्धति पर प्रहार किया I तिलक ने राष्ट्रीय शिक्षा की पुरजोर वकालत की थी। अरविंद घोष के मत में राष्ट्रीय शिक्षा वह है जो हमें अतीत की महानता का पाठ पढ़ाती है और वर्तमान का पूर्ण सदुपयोग करने की शिक्षा देती है ताकि महान राष्ट्र का निर्माण किया जा सके। विपिन चंद्र पाल का कहना था कि राष्ट्रीय शिक्षा इस प्रकार नियंत्रित व संचालित की जाए कि राष्ट्रीय भाग्य की प्राप्ति इसका उद्देश्य बने। गोपालकृष्ण गोखले स्वदेशी के बहुत बड़े समर्थक थे उन्होंने इसे एक अमूल्य भावना के रूप में स्वीकार किया और कहा कि स्वदेशी के विचार के प्रभाव से प्रत्येक व्यक्ति देश सेवा में लग जाता है। गोखले ने हथकरघा उद्योग का पुनरुत्थान करने और उसे आधुनिक रूप देने के महत्व पर बहुत जोर दिया, ताकि किसानों को अतिरिक्त आय हो सके। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अहमदाबाद कांग्रेस (1902) के अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत को आर्थिक दुर्दशा से ऊपर उठाने के लिए स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को आवश्यक ठहराया। उन्होंने कहा स्वदेशीकारण हमें अकाल तथा प्लेग से मुक्ति दिलाएगा अतः स्वदेशी की शपथ लो और मान लो कि हमने भारत की औद्योगिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रता की गहरी नींव डाल दी है। हम अपने विचार, कर्म और आचरण में स्वदेशी का उपयोग करें। इस तरह बनर्जी स्वदेशी के प्रणेता थे।

महात्मा गांधी का स्वदेशी की भावना से अर्थ है हमारी वह भावना, जो हमें स्थानीय वस्तुओं का ही उपयोग करना सिखाती है। गांधी जी ने समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को मिटाने के लिए संरक्षकता का सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसमें व्यक्ति स्वयं को सम्पत्ति का स्वामी न समझ कर ट्रस्टी समझे। गांधीजी ग्रामोद्योग और लघुउद्योगों को ज्यादा महत्व देते थे। कुटीर उद्योगों से गांधीजी का अभिप्राय ग्रामोद्योग से था। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए गांधीजी ने विभिन्न स्वदेशी उद्योगों के विकास पर बल दिया। स्वावलम्बन गांधी नीति का मूलमंत्र था। इसलिए गांवों में उद्योग

धंधों के प्रचलन पर बल दिया । जिससे भारतीय ग्राम आत्मनिर्भर हो सकें। गांवों की इस आत्मनिर्भरता में ही उन्होंने स्वराज्य का स्वरूप देखा था। आत्मनिर्भरता के लिए गांधीजी ने प्रत्येक परिवार को चरखा चलने का कार्यक्रम बताया था। बुनियादी शिक्षा (1937) का दर्शन भी बहुत कुछ स्वदेशी व आत्मनिर्भरता से जुड़ा था।विनोबा भावे के अनुसार सर्वोदय में आत्मनिर्भरता का भाव निहित है। इससे यह प्रेरणा मिलती है कि हमें अपनी कमाई का खाना चाहिए, दूसरे की कमाई का नहीं खाना चाहिए। हमें अपना भार दूसरों पर नहीं डालना चाहिए। भोजन,वस्त्र और घर के संदर्भ में भी हमें स्वावलम्बी होना चाहिए। सत्य में विश्वास सर्वोदय की प्राण शक्ति है । वस्तुत: सर्वोदय में भारतीय संस्कृति के महान मूल्य ही पोषित और संवर्धित हैं। इसी संदर्भ में महर्षि अरविंद घोष मानते थे कि तत्कालीन पाश्चात्य शिक्षा का उद्देश्य भारतीयों के स्वाभिमान और भारतीय राष्ट्रीय संस्कृति को समाप्त करना है । इसलिए पाश्चात्य शिक्षा पद्धति का बहिष्कार करके ही राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार किया जा सकता है। महर्षि अरविंद ने देशवासियों में स्वाभिमान भरा,उनकी अंतरात्मा को जगाया और उनके सामने भारत की आत्मा का चित्र स्पष्ट किया। अरविंद ने भारतीय राष्ट्रवाद को धार्मिक और आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। रबीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था कि भारतीय समाज का पुनर्निर्माण केवल नए विचारों की ओर दौड़ने से नहीं होगा वरन् इसके लिए प्राचीन समाज के ज्ञान को आधार बनाना होगा, भारत की प्राचीन संस्कृति में आस्था रखनी होगी।

स्वदेशी और आत्मनिर्भरता की संकल्पना : भारतीय शैक्षिक दृष्टि

स्वदेशी और आत्मनिर्भरता की संकल्पना को समझने के लिए भारत के शिक्षा-विमर्श को समझना आवश्यक है । स्वतंत्रता से पूर्व ही शिक्षा चिंतकों ने स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षा को एक मजबूत विकल्प के रूप में रेखांकित करना प्रारम्भ कर दिया था। गाँधीजी स्वयं इस बात से सहमत थे कि राजनैतिक आज़ादी को शिक्षा के माध्यम से ही जन-जन तक पहुँचाया जा सकता है। इसी मूल भावना से संकल्पित हो स्वतंत्र भारत की लोकतान्त्रिक राज व्यवस्था ने अपने प्रथम शिक्षा आयोग से ही शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित कर दिया ।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) ने नवीन भारत के निर्माण में लोकतंत्र, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय भ्रातृत्व एवं भारतीय संस्कृति के महत्व पर बल दिया है। विश्वविद्यालयों को अब विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों का निर्माण करना है। इस आयोग की प्रमुख अनुशंसाओं में कृषि शिक्षा, वाणिज्य शिक्षा व इंजीनियरिंग शिक्षा के व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक बल दिया गया था ।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों में विद्यार्थियों में चरित्र निर्माण, अर्थव्यवस्था के निर्माण में भूमिका व राष्ट्र के सांस्कृतिक हितों का भी विकास हो, प्रमुख रूप से शामिल किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, बागवानी, पशुपालन तथा कुटीर उद्योगों की शिक्षा की व्यवस्था की जाए। बहुमुखी पाठ्यक्रमों के साथ बहुउद्देश्यीय स्कूलों की स्थापना होनी चाहिए। यह सब उपक्रम व्यक्ति और समाज को आत्मनिर्भर बनाने की मूल भावना से अनुप्राणित था।

शिक्षा की समग्र व्यवस्था पर चिंतन और आयोजना प्रस्तुत करते हुए कोठारी आयोग (1964) ने माना कि शिक्षा को देश की आवश्यकताओं से अलग रखकर विचार नहीं किया जा सकता है। शिक्षा का संबंध उत्पादकता, सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण, मूल्यों के द्वारा चरित्र-निर्माण, राष्ट्रीय चेतना को बढ़ाना आदि से होना चाहिए। शिक्षा की आर्थिक, सामाजिक, विज्ञान, प्रौद्योगिकी विकास, राष्ट्रीय एकता और सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका है। मानवीय संसाधनों का सबसे महत्वपूर्ण तत्व शिक्षा है। कोठारी आयोग का वाक्य ' भारत के भाग्य का निर्माण उसके विद्यालयों की कक्षाओं में हो रहा है' पूरी शिक्षा व्यवस्था को विकास से जोड़ देता है। कोठारी आयोग ने शिक्षा द्वारा राष्ट्र निर्माण पर बल दिया है। कोठारी आयोग की अनुशंसाओं में कृषि शिक्षा, व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा, विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान, समान स्कूल पद्धति व कार्य अनुभव प्रमुख तौर पर है, जो कि आज़ादी के बाद भारत को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने को प्रतिबद्ध दिखती है।

1986 की शिक्षा नीति के अनुसार राष्ट्रीय संदर्भ में शिक्षा सभी के लिए अपरिहार्य है। अर्थव्यवस्था के सभी स्तरों पर शिक्षा से विकास होगा। राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की पूरी गारंटी, शोध एवं विकास के माध्यम से शिक्षा के द्वारा परिपूर्ण होती है। शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य के लिए एक विशेष विनियोग है। समतामूलक समाज के निर्माण के लिए शिक्षा और व्यवस्थित और सुनियोजित व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष तौर पर जोर दिया गया है। पाठ्यक्रम के सामान्य केंद्र में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, संवैधानिक कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व तथा राष्ट्रीय अस्मिता से संबंधित अनिवार्य तत्व सम्मिलित होंगे।

आचार्य राममूर्ति समीक्षा समिति (1990) ने राज्य की विभिन्न नीतियों जैसे- शिक्षा, कृषि, औद्योगिक, वन इत्यादि में विद्यमान अलगाव को रेखांकित किया और कहा कि देश के विकास के लिए नीतियों का समेकन आवश्यक है।गुणवत्ता या औचित्य पर विचार के बिना हमारी शिक्षा का विस्तार हुआ है। आधुनिक शिक्षा पाठ्यपुस्तकों एवं परीक्षाओं से बंध गई। विद्यार्थियों में कोई

उत्पादक कौशल उत्पन्न नहीं होता। शिक्षा प्रणाली वैयक्तिक विकास को बढ़ावा देने में असफल रही है। बढ़ती बेरोजगारी के बावजूद व्यावसायिक शिक्षा लोकप्रिय नहीं हुई। इस तरह से समिति ने कहा ,शिक्षा आत्मनिर्भर बनाने में असफल हो रही है। आचार्य राममूर्ति समिति की रिपोर्ट में तीन मुख्य बातें सामने आयी हैं - शिक्षा का सर्वीकरण, व्यावसायीकरण तथा विकेंद्रीकरण। समिति के विचार में शिक्षा के सभी स्तरों पर एक जैसे मूल्य होने चाहिए।

प्रो.यशपाल समिति (1993) ने शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन की समस्या का एक कारण पाठ्यक्रम के अनुपयुक्त बोझ को माना है। समिति ने सुझाव दिया कि सभी प्रकार की शिक्षा में कार्य-अनुभव को शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में शामिल किया जाए। कार्य अनुभव शिक्षा और कार्य के एकीकरण की एक प्रणाली है। ज्ञान निर्मिति के लिए सहज, सुगम्य और आनन्ददायी वातावरण शिक्षार्थी को अधिगम में आत्मनिर्भरता प्रदान करता है।

आर्थिक सुधारों की फलश्रुति से बदलते वैश्विक परिदृश्य ने आर्थिक पहलुओं को ही प्रभावित नहीं किया बल्कि अर्थव्यवस्था के सहारे ज्ञान के उपक्रम और लोकाचार को भी प्रभावित किया है । उदारीकरण, भूमंडलीकरण और निजीकरण की व्यवस्थामूलक त्रयी ने 'सामाजिक-राजनैतिक पुनर्निर्माण'के लिए विश्व के समक्ष नए अवसरों और विकल्पों को प्रस्तुत किया। इसी क्रम में 'राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (2005)' ने भारतीय आर्थिक उन्नति में नवाचार की भूमिका को एक प्रमुख तत्व के रूप में पहचान दी। आयोग ने शिक्षा से लेकर ई-प्रशासन तक ज्ञानतंत्र के पांच प्रमुख केंद्रों जैसे सुलभता, रचना, सिद्धांत, उपयोग तथा सेवाओं आदि को केन्द्रीय पहचान देते हुए आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया। बदलते विश्व में आत्मनिर्भर बनने के लिए यह प्रारूप स्वीकार किया जाने लगा।

21वीं सदी में भी विचार, प्रक्रिया और उत्पादन के संदर्भ में स्वदेशी पहचान और आत्मनिर्भर समाज के निर्माण के लिए शिक्षा की अपरिहार्यता एक मजबूत विकल्प के रूप में बनी रही। दुनिया के सभी देशों की तरह भारतीय गणराज्य ने भी गुणात्मक शिक्षा को जन –सामान्य के लिए सुलभ और अनिवार्य बनाने के लिए कई प्रयास किए।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के माध्यम से बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा मुहैया करायी गई। जिसके अंतर्गत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए योग्यताधारी शिक्षकों की भर्ती, विद्यालय में आधारभूत सुविधाओं का विकास, प्रभावी पाठ्यक्रम व शिक्षक प्रशिक्षण जरूरी

बताया गया है । आत्मनिर्भर समाज का निर्माण योग्य एवं गुणात्मक शिक्षा से ही हो सकता है, यह नीतिगत रूप से स्वीकार किया गया।

देश ने हाल ही में राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 को अंगीकार किया है । नीति की प्रस्तावना में यह उल्लेख किया गया है कि शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है। शिक्षा वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के संदर्भ में भारत की सतत प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 ने अपनी आत्मनिर्भर अधिगम और अधिगमकर्ता निर्माण की संकल्पना में यह प्रस्तावित किया कि बच्चों को जो कुछ सिखाया जा रहा है, उसे तो वे सीखें ही और साथ ही वे सतत सीखते रहने की कला भी सीखें।

नूतन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सिद्धांतों में हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास करना, बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता, लचीलापन और शैक्षिक धाराओं में कोई अलगाव न हो, एक बहु-विषयक और समग्र शिक्षा का विकास, रचनात्मक और तार्किक सोच व अवधारणात्मक समझ पर जोर, जीवन कौशल और बहुभाषिकता को प्रोत्साहन, सीखने के लिए सतत मूल्यांकन पर जोर, तकनीकी के यथासंभव उपयोग पर जोर, विविधता और स्थानीय परिवेश को सम्मान, भारतीय जड़ों और गौरव से बंधे रहना, प्रभावी नियामक ढांचा, शैक्षिक निर्णयों में पूर्ण समता व समावेशन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच सभी बच्चों का मौलिक अधिकार माना जाए और सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त निवेश किया जाए। प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परपंरा के आलोक में यह नीति तैयार की गई है। इस तरह राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 भारत की सांस्कृतिक गौरव की दृष्टि से स्वदेशी और बच्चों को बहुआयामी रूप से आत्मनिर्भर बनाने वाली है।

समसामयिक दौर में स्वदेशी और आत्मनिर्भर भारत : एक नीतिगत ज्ञानमीमांसा

वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण, तकनीकीकरणने भारतीय संस्कृति व मूल्यों को बहुत प्रभावित किया है। हमारे रहन-सहन, खान-पान व रीति-रिवाजों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।आधुनिक शिक्षा ने प्राचीन शिक्षा पद्धति को एक चुनौती प्रदान की है। यह स्थापित तथ्य है कि शिक्षा ही किसी भी समाज में अपनी सांस्कृतिक पहचान व गौरव को (पुनः)स्थापित कर सकती है। भारतीय संदर्भ में यदि शिक्षा के माध्यम से

स्वदेशी और आत्मनिर्भर समाज का निर्माण करना हो तो वह शिक्षा व्यवस्था के भारत-सन्दर्भी होने से ही संभव होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 के अनुसार विद्यार्थियों में भारतीय होने का गर्व न केवल विचार में बल्कि विचार,व्यवहार एवं कार्यों में भी होना चाहिए। हमें आत्मनिर्भर केवल मानसिक एवं आर्थिक तौर पर ही नहीं बल्कि अपने देश के मूल्यों और परंपराओं के तौर पर भी होना चाहिए।

तकनीकी आधारित विकास के प्रतिमान ने हमें अपने स्थानीय परिवेश एवं संस्कृति से लगातार विमुख किया है। आधुनिक विकास की संकल्पना ने देशज अथवा देहात के ज्ञान,मूल्य, परम्परा व संस्कृति को अस्वीकार किया है। वैश्वीकरण ने स्थानीयकरण को आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक तौर पर लोगों की सोच में छोटा कर दिया है, जिससे स्थानीय जनमानस में आत्मविश्वास की भारी कमी दिखाई देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने सभी पाठ्यक्रमों, शिक्षणशास्त्रों और रणनीतियों में स्थानीय सन्दर्भों की विविधता के लिए सम्मान की भावना को अनिवार्य बनाया है, ऐसा करके ही हम भारतीय मन , मानस और संस्कृति का वि-औपनिवेशीकरण कर सकते हैं। भारतीय ज्ञान के वि-औपनिवेशीकरण की यह नीतिगत परियोजना ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को सही अर्थों में स्वदेशी और आत्मनिर्भर बनाएगी।

वैश्विक निजीकरण ने श्रम और रोजगार में विविधता, कौशल और व्यावसायिकता को स्थापित किया है। आधुनिक रोजगार मूलतः कौशल और तकनीकपरक विषयों से जुड़ गया है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव शिक्षा विमर्श पर भी अनिवार्य रूप से दिखाई देता है। आधुनिक वैश्विक संदर्भ को समझकर ही हमें अपनी शिक्षा-व्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाना होगा ताकि ज्यादा से ज्यादा आधुनिक ज्ञानपरक व रोजगारपरक विषयों को पाठ्यक्रमों में शामिल किया जा सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 के अनुसार वर्ष 2025 तक विद्यालय और उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा का अनुभव प्रदान किया जाएगा। यह एक सकारात्मक पहल है, जिसके लिए प्रभावी और व्यावहारिक क्रियान्वयन योजना निर्माण की आवश्यकता है। व्यावसायिक शिक्षा का फोकस एरिया स्थानीय अवसरों व उद्योगों के आधार पर किया जाना चाहिए।

वर्तमान व्यावसायिक शिक्षा को भारतीय कृषि व कुटीर उद्योग धंधों की प्रकृति के अनुसार बनाने की आवश्यकता हैं। स्थानीय ज्ञान को तकनीक से जोड़कर ही हम आधुनिक अर्थों में गांधीजी की बुनियादी शिक्षा एवं ग्रामोद्योग की अवधारणा को नए अर्थ-संदर्भों में फलीभूत कर सकते हैं । देशज उद्योग-धंधों को वैश्विक अर्थ-व्यवस्था के साथ पुनर्संरचित एवं पुनःस्थापित करने के लिए भारतीय कलाओं तथा दस्तकारी के प्रशिक्षण को आधुनिक बनाने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य शिक्षा व तकनीकी शिक्षा का व्यावसायिक

रूप भी स्वदेशी एवं सामुदायिक प्रकृति का होना चाहिए। व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम से हम भारतीय संदर्भों में एक स्वदेशी और आत्मनिर्भर समाज का निर्माण कर सकते हैं।

आत्मनिर्भरता के संदर्भ में भारतीय भाषाओँ को पुन:समृद्ध करने की आवश्यकता है, जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 प्रारम्भिक स्तरीय शिक्षा का माध्यम अनिवार्य रूप से बच्चे के घर की भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा बनाकर किया है ।मातृभाषा में शिक्षण-अधिगम बच्चों में न केवल आत्मविश्वास पैदा करता है बल्कि अपने अनुभव संसार को अभिव्यक्त करने का अवसर भी उपलब्ध कराता है। प्रो. यशपाल(1993) ने इसे ज्ञान के सहज और सुगम्य बनाने के लिए अनिवार्य स्थिति माना है ।मातृभाषा के द्वारा शिक्षा भी स्वदेशी व आत्मनिर्भरता की संकल्पना से जुड़ी हुई है। बच्चे अपने वातावरण, घर व परिवार में शिक्षा के माध्यम से स्थानीय, सामुदायिक ज्ञान को मजबूत करते हुए वैश्विक ज्ञान के लिए स्वयं को तैयार कर सकेंगे। यह नीति इस पर भी जोर देती है कि सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकीकरण के लिए युवाओं को भाषाओं के विशाल भण्डार और साहित्य के विषय में जागरूक होना चाहिए। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुंच सभी माध्यमों से हर वर्ग के विद्यार्थियों तक होनी चाहिए। आत्मनिर्भर भारत के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा होना एक अनिवार्य शर्त है। शिक्षा के लिए संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता, योग्य प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति होनी चाहिए। समर्थ एवं दक्ष शिक्षक ही शिक्षा की धुरी हैं। अंतत: शिक्षानीति के क्रियान्वयन का प्रथम एवं महत्वपूर्ण सोपान कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक ही हैं।

सारांशत: शिक्षायी पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, शिक्षण तकनीक आदि को भारतीय संदर्भ में विकसित करना होगा। शिक्षा व्यवस्था को भारतीय आवश्यकताओं को समझकर अपने उद्देश्य बनाने होंगे ताकि शिक्षा का जुड़ाव समस्याओं व संस्कृति से बना रहे। जे.डेलर्स की अध्यक्षता में शिक्षा पर अंतर राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1996) ने शिक्षा के चार आधारभूत स्तम्भों- जानना सीखने, करना सीखने, बनना सीखने और एक साथ रहना सीखने पर बल दिया है, शिक्षा के यह चारों स्तम्भ आत्मनिर्भरता की बहुआयामी सोच से जुड़े हैं। इस तरह की वैचारिकी को शिक्षायी संदर्भ में क्रियान्वित करके ही स्वदेशी और आत्मनिर्भर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र निर्माण की ज्ञानमीमांसीय परियोजना की फलश्रुति संभव हो सकेगी।

संजय शर्मा
सहायक आचार्य ,शैक्षिक अध्ययनशाला
डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि., सागर (म.प्र.)
अश्वनी
सह-आचार्य, शिक्षा एवं प्रशिक्षण
विभाग
मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी,हैदराबाद

संदर्भ:

- शिक्षा मंत्रालय (1948-49). विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, नई दिल्लीः भारत सरकार।
- शिक्षा मंत्रालय (1952-53). माध्यमिक शिक्षा आयोग, नई दिल्लीः भारत सरकार।
- शिक्षा मंत्रालय (1964-66). राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, नई दिल्लीः भारत सरकार।
- शिक्षा मंत्रालय (1968). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, नई दिल्लीः भारत सरकार।
- शिक्षा मंत्रालय (1985). शिक्षा की चुनौती, नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य, नई दिल्लीः भारत सरकार।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (1986). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, नई दिल्लीः भारत सरकार।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (1990). राष्ट्रीय पुनरीक्षा शिक्षा नीति 1986, नई दिल्लीः भारत सरकार ।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (1992). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986: कार्यान्वयी योजना 1992, नई दिल्लीः भारत सरकार।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (1992). शिक्षा बिना बोझ के, प्रो. यशपाल समिति, नई दिल्लीः भारत सरकार
- शिक्षा मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020, नई दिल्लीः भारत सरकार।
- तारा चंद (1965), स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, खंड-I, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली
- भटनागर, सुरेश एवं पाण्डेय, शिव पूजन,(2016), भारत में शिक्षा-स्तर, समस्याएं और मुद्दे , आर., लाल बुक डिपो, मेरठ।
- अग्रवाल, बी.बी.(1997), आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- अवस्थी, अमरेश्वर, एवं अवस्थी, रामकुमार (1997), आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर।
- आचार्य, परमेश (2000), देशज शिक्षा औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प, ग्रंथ शिल्पी,
- गाँधी, मोहन दास करमचंद (1956), नई तालीम की ओर , नवजीवन प्रकाश मंदिर, अहमदाबाद।
- गाँधी, महात्मा (संग्राहक हरिप्रसाद व्यास), (1993), ग्रामस्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।
- चौबे, सरयुप्रसाद एवं चौबे, अखिलेश (1990), भारत की आधुनिक शिक्षा का इतिहास और समस्याएँ, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या।
- चौबे, सरयुप्रसाद, शिक्षा एवं दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाज शास्त्रीय आधार, लायल बुक डिपो, मेरठ।

- पाठक, पी. डी. एवं त्यागी, गुरसरनदास (2016), समसामयिक भारतीय शिक्षा चिन्ता एवं मुद्दे,अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
- रूहेला, सत्यपाल (1992), भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
- रविन्द्र, अग्निहोत्री (1994), आधुनिक भारतीय शिक्षा: समस्याएँ और समाधान, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
- गुप्ता, रेनू, शिक्षा के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय और आर्थिक आधार, टंडन, लुधियाना।
- रुचि, त्यागी (2015), आधुनिक भारत का राजनीतिक चिंतन :एक विमर्श, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

कालिदास द्वारा वर्णित प्रमुख शिक्षण विधियाँ एवं उनकी प्रासंगिकता

डॉ. अमित कुमार जायसवाल

संस्कृत के महाकवि कालिदास ने शिक्षण को समुन्नत करने के लिए शास्त्रार्थ विधि, प्रयोग विधि, कार्य करके सीखने की विधि, अभिनय विधि तथा प्रदर्शन विधि इत्यादि का उल्लेख किया है। कालिदास के ग्रन्थों में निहित प्रमुख शिक्षण विधियाँ हैं -- व्यक्तिगत शिक्षण, सामूहिक शिक्षण, अभिनय-प्रदर्शन विधि, व्याख्यान विधि, अभ्यास और स्वाध्याय विधि, प्रयोग एवं प्रदर्शन विधि, अनुकरण विधि, कहानी-शिक्षण विधि, गायन या कविता-विधि, श्रवण, मनन और निदिध्यासन-विधि, शास्त्रार्थ एवं वाद-विवाद-विधि ,प्रश्नोत्तर एवं संवाद विधि।

कालिदास के ग्रन्थों के अनुशीलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय व्यक्तिगत शिक्षण और समूह शिक्षण विधियाँ प्रचलित थी। छात्र की योग्यतानुसार ही शिक्षण-विधि का चयन किया जाता था। अत्यन्त प्रखर बुद्धि छात्र को व्यक्तिगत शिक्षण प्रदान किया जाता था।

रघुवंशम् में उल्लेख है कि-

निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रह द्वितीयः।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां संविष्टः कुशशयने निशां निनाय।।(1/95)

उपरोक्त श्लोक में कालिदास ने बताया है कि प्रातःकाल जब गुरु वशिष्ठ ने अपने शिष्यों को वेद पढ़ाना प्रारम्भ किया , तब उसकी ध्वनि कान में पड़ते ही राजा दिलीप भी उठ गये। यहाँ आश्रम में शिष्यों के समूह- शिक्षण का उल्लेख है।

अन्यत्र कालिदास राजा दिलीप के पुत्र रघु का अपने समान वय के मंत्री - पुत्रों के साथ शिक्षा ग्रहण करने का उल्लेख करते हैं-

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः।
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेव समुद्रमाविशत्।। (3/29)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि आश्रम में समूह-शिक्षण प्रचलित था।

गायत्री वर्मा ने अपनी पुस्तक कालिदास के ग्रंथ : तत्कालीन संस्कृति में कालिदास की शिक्षण-पद्धति के अन्तर्गत व्यक्तिगत शिक्षण का उल्लेख किया है। शिष्य को उसकी

योग्यता के अनुसार पढ़ाया जाता था। एक ही तरह की शिक्षा सबको नहीं दी जाती थी। ''नदीमुखेनैव समुद्रमाविशत्' से ही समस्त शिक्षण-पद्धति स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक काल में जिस वैज्ञानिक पद्धति का प्रचलन है- अंश से सम्पूर्ण की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, वह यही पद्धति थी। श्री राधाकुमुद मुखर्जी शिक्षण को आत्मनियंत्रण और अनुशासन को साधन मानते हैं। चित्त की एकाग्रता को उस समय प्रधानता दी जाती थी। अहंभाव को तिरस्कृत किया जाता था, क्योंकि इस भावना से अज्ञान, बंधन और अपवित्रता आती थी। कालिदास ने अभिनय-प्रदर्शन-विधि का भी उल्लेख किया है। नाटक, नृत्य इत्यादि का आंगिक, सात्विक और वाचिक- तीनों प्रकार के अभिनय का अभ्यास कराकर तदुपरान्त उनका प्रदर्शन कुशल नाट्यविदों के समक्ष किया जाता था--

अंगसत्त्ववचनाश्रयं मिथः स्त्रीषु नृत्यमुपधाय दर्शयन्। स प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः संजघर्ष सह मित्रसन्निधौ।। (-वही- 19/36) इस तरह कालिदास ने अभिनय एवं प्रदर्शन-विधि का दिग्दर्शन कराया है । कालिदास ने मुख्यतः व्याख्यान या उपदेश-विधि का उल्लेख शिक्षण-प्रणाली के रूप में किया है। गुरु वशिष्ठ, अगस्त्य ऋषि, वाल्मीकि आदि सभी गुरु अपने तपोवन में शिष्यों को उपदेश देकर ही शिक्षित करते थे-- *तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे सतां भवोच्छेदकरः पिता ते। (-वही- 14/74)*

उपरोक्त श्लोक में उल्लेख है कि राजा जनक ने भी बहुत से विद्वानों को ज्ञान का उपदेश देकर संसार के बन्धन से मुक्त कराया था । कुलपति वशिष्ठ भी अपने शिष्यों को वेद का पाठ उपदेश देकर ही कराते थे ।यह भी वर्णन मिलता है कि-

तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां संविष्टः कुशशयने निशां निनाय।

कालिदास ने गायन-विधि का भी शिक्षण में उल्लेख किया है। प्रायः गुरु अपने शिष्यों को वेदमंत्र इत्यादि सस्वर पाठ कराकर स्मरण कराता था । प्रायः छात्र उपदेशों को सुनकर तथा उनका पाठ करके स्मरण करते थे । महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश ने वेद-वेदांग तथा रामायण का अध्ययन सस्वर पाठ-विधि द्वारा ही किया था। रघुवंशम् में आया है :-

''सांगं च वेदमध्याप्य किचिंदुत्क्रान्तशैशवौ ।

स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्।। (-वही- 15/33)

अथ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमितस्तः।

मैथिलेयो कुशलवौ जगतुर्गुरुचोंदितौ ।। (15/63)

गेये को नु विनेता वां कस्य चेयं कृतिः कवेः।
इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिमशंसताम्।। (15/69)

कालिदास ने शिक्षण-अधिगम हेतु अभ्यास-विधि की भी अनेक स्थानों पर चर्चा की है--

विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि। (1/88)

निरन्तर अभ्यास से ही विद्या की प्राप्ति होती है। कालिदास ने ऐसा कहकर अभ्यास-विधि को रेखांकित किया है।

महाकवि के समय में अनुकरण-विधि भी प्रयुक्त की जाती थी। कालिदास ने अनुकरण द्वारा सीखे विषय के ज्ञान को चिरस्थायी बताया है ।

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि।। (-वही- 1/88)

उपरोक्त श्लोक में वर्णन है कि अनुगमन और अभ्यास के द्वारा विद्यार्थी लगन से पढ़कर ज्ञान प्राप्त कर लेता है। कालिदास सीखने के अन्तर्गत अनुसरण द्वारा सीखने पर बल देते हैं। उनके शब्दों में छात्र को अपने आदर्श का अनुसरण छाया की भाँति करना चाहिए।

कालिदास ने अन्यत्र भी अनुकरण के महत्व को इंगित किया है। राजा दिलीप की गौसेवा के माध्यम से कालिदास ने बताया है कि किस प्रकार इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कुलपति वशिष्ठ ने दिलीप को नन्दिनी गाय का अनुकरण करने को कहा था । वर्णन इस प्रकार है-

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः।। (-वही- 1/89)

कालिदास ने अनुकरण के महत्व को उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट करते हुए कहा कि- जब यह गाय चले तब इसके पीछे -पीछे चलना, खड़ी हो जाए तो तुम भी खड़े हो जाना, जब यह बैठे तब तुम भी बैठना और जब यह पानी पीने लगे तब तुम भी पानी पीना।

कालिदास आगे उल्लेख करते हैं कि राजा दिलीप ने भी गुरु वशिष्ठ की आज्ञा का अनुपालन किया तथा नन्दिनी गाय का पूरी तरह से इस प्रकार अनुसरण किया जैसे छाया अनुसरण करती है -

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्।। (-वही- 2/6)

श्रवण, मनन और निदिध्यासन (अभ्यास) शिक्षण-पद्धति की सीढ़ियां थी । इनसे होकर ही छात्र ज्ञान की प्राप्ति करता था। जिज्ञासा, श्रवणम्, ग्रहणम्, वरणम् विज्ञानतत्वाभिनिवेश आदि के द्वारा छात्र उच्चशिक्षा प्राप्त करने में सक्षम था।

कालिदास ने सीखने के कुछ सिद्धान्तों का भी प्रणयन किया है, जो आज के मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षा-शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित शिक्षण के सिद्धान्त से मेल खाते हैं ।

कालिदास ने रघुवंशम् के प्रथम सर्ग में सीखने के नियम- अभ्यास का नियम, तत्परता का नियम तथा अनुकरण द्वारा सीखने के नियम का प्रतिपादन किया है। यथा-

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि।। (1/88)

इस श्लोक में कालिदास ने उद्धृत किया है कि निरन्तर अभ्यास से ही विद्या की प्राप्ति होती है एवं निरन्तर लगनपूर्वक परिश्रम करने से इच्छित परिणाम की प्राप्ति होती है। इस अर्थ में कालिदास सीखने के जिस नियम का प्रतिपादन करते हैं। वह है-

(1) अभ्यास का नियम

(2) तत्परता का नियम

कालिदास ने उल्लेख किया है कि नाट्यशास्त्र की पूर्णता तो अभिनय करके दिखाने से ही होती है। इसमें वाद-विवाद से कोई निर्णय नहीं निकलता। यथा-

'देव प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रम्। किमत्रवाग्व्यवहारेण।' 1/पृ॰ 251

शास्त्रार्थ-विधि का उल्लेख आचार्य गणदास और हरदत्त के मध्य प्रतिस्पर्धा में मिलता है- 'तेन हि प्रस्तूयतां विवाद।' 1/पृ॰ 251

एम॰डी॰ पराड़कर ने शिक्षण-विधियों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि-'प्रयोगप्रधानम् नाट्यशास्त्रम्' में कालिदास ने एक और महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किया है कि ललित कलाओं जैसे- गायन, चित्रकला और नृत्यकला के सन्दर्भ में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा प्रयोगात्मक सीख पर जोर दिया जाना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि शिक्षण-विधि के रूप में प्रायोगिक शिक्षण को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

कालिदास द्वारा वर्णित शिक्षण-विधियाँ आज भी अत्यन्त प्रासंगिक हैं। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में भी इन विधियों का शिक्षण में बहुधा प्रयोग होता है। कुछ विशेष विषयों के लिए विशिष्ट शिक्षण-विधियाँ निर्धारित की जाती हैं, अन्यथा छात्र को केन्द्र में रखकर पाठ्यक्रम की शिक्षा देते समय जो विधि शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होती है उसी का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार आवश्यकता के अनुरूप सभी शिक्षण विधियाँ प्रासंगिक हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में- संवाद-विधि, समस्या-समाधान-विधि, नाटकीकरण, भूमिका-निर्वाह विधि, वाद-विवाद-विधि, एवं परिचर्चा-विधि को सामाजिक विज्ञान हेतु उपयुक्त कहा गया है। कला एवं विज्ञान हेतु प्रयोग एवं प्रदर्शन-विधि का वर्णन है।

कालिदास ने भी 'मालविकाग्निमित्रम्' में वर्णन किया है कि वर्णित विषयों को उनके प्रयोग एवं प्रदर्शन से ही जाँचा जा सकता है। आचार्या कौशिकी का उल्लेख है कि नाट्यविद्या एवं अभिनय की परख प्रयोग एवं प्रदर्शन के आधार पर ही सम्भव है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में व्यक्तिगत शिक्षण पर भी प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है कि ''स्कूली शिक्षा में अधिगम का एक बड़ा हिस्सा अब भी व्यक्ति-आधारित है। अध्यापकों को ज्ञान हस्तान्तरित करने वालों के रूप में देखा जाता है, यद्यपि ज्ञान को हम जानकारी मान बैठते हैं। अध्यापकों को उन अनुभवों का आयोजक समझा जाता है, जो बच्चों के सीखने में सहायक होते हैं।'

कालिदास ने भी 'रघुवंशम्' में उल्लेख किया है कि दिलीप, अज एवं इन्दुमती सहित अनेक विद्यार्थियों की शिक्षा राजप्रासादों में व्यक्तिगत शिक्षण के आधार पर सम्पन्न हुई थी । 'मालविकाग्निमित्रम्' में भी उल्लेख है कि आचार्य गणदास ने व्यक्तिगत तौर पर मालविका को तथा आचार्य हरदत्त ने अपनी शिष्या इरावती को नृत्य एवं अभिनय की शिक्षा प्रदान की है।

सामूहिक शिक्षण पर बल देते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में वर्णित है कि "मिश्रित समूहों में बच्चे एक दूसरे से समूह में कार्य करना और अन्य सामाजिक मूल्यों के बारे में काफी कुछ सीख सकते हैं। दूसरे लोगों की संगति में हमे बड़े कार्यों में भाग लेने का मौका मिलता है जहाँ हम अपनी क्षमता से परे जाकर भी काम कर सकते हैं और वह काम करने का भी प्रयास करते हैं जो हम पूरी तरह से नहीं जानते। समूह में काम सीखना, जिम्मेदारी लेना और जो काम दिया गया है उसे पूरा करना- ये सभी ज्ञान प्राप्त करने के ही नहीं बल्कि कला-कौशल इत्यादि सीखने के भी महत्वपूर्ण पहलू हैं।

कालिदास की आश्रम-पद्धति शिक्षा में भी इसी तरह समूह में शिक्षा प्रदान की जाती थी जिससे छात्र स्वाध्याय, स्वमंथन तथा स्वावलम्बन में सक्षम हो पाते थे । शिक्षण-विधियों का उल्लेख करते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में वर्णित है कि- "पूछताछ, अन्वेषण, प्रश्न पूछना, वाद-विवाद, व्यावहारिक प्रयोग व ऐसा चिन्तन जिससे सिद्धान्त बन सकें और विचार की रचना हो सके। ये सभी बच्चों की सक्रिय व्यस्तता को सुनिश्चित करते हैं। स्कूलों द्वारा ऐसे अवसर प्रदान किए जाने चाहिए ताकि, बच्चे प्रश्न पूछकर और चर्चा एवं चिंतन कर अवधारणाओं को आत्मसात करें या नये विचार रखें।

कालिदास ने **मालविकाग्निमित्रम्** में उल्लेख किया है कि शिक्षक को शास्त्रार्थ तथा वाद-विवाद में अवश्य भाग लेना चाहिए। रघुवंशम् में भी दिलीप और सिंहरूपधारी नन्दिनी गौ में प्रश्नोत्तर एवं शास्त्रार्थ होने का प्रसंग मिलता है।

कालिदास ने भी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में प्रश्नोत्तर, शास्त्रार्थ एवं वाद-विवाद तथा अभिनय व नाटक में व्यावहारिक प्रयोग को रेखांकित किया है। **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** में दुष्यन्त और शकुन्तला के मध्य संवाद के माध्यम से दर्शाता है कि शकुन्तला, अनुसूया और प्रियम्वदा क्रमशः दुष्यंत से प्रश्न कर रही हैं। चतुर्थ अंक में शकुन्तला को दुष्यंत द्वारा स्वीकार न किये जाने की स्थिति में कण्व ऋषि के शिष्य शारंगरव, शारद्वत, शकुन्तला तथा गौतमी एवं दुष्यन्त में प्रश्नोत्तर एवं वाद-विवाद होता है।

प्रश्न पूछने की उपयोगिता प्रमाणित करते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में वर्णन है - वे अभ्यास जो बहुत सरल होते हैं, या बहुत कठिन, जो बार-बार एक ही बात यांत्रिक रूप से दुहराते हैं, जो पाठ्यपुस्तक को याद करने पर आधारित होते हैं, जो बच्चे को आत्माभिव्यक्ति व प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं देते, शिक्षक के जाँच-कार्य पर ही निर्भर रहते हैं, वे बच्चे को आज्ञापालन करने वाली निष्क्रिय कठपुतली बना देते हैं। जी॰के॰

भट्ट ने शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि कालिदास के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान के प्रकाश को फैलाना है। जो शिक्षक ऐसा नहीं करता है वह शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति में बाधक है। **कुमारसंभवम्** में कालिदास ने उल्लेख किया है कि पार्वती से ब्रह्मचारी-वेशधारी शिव ने तथा तप के सम्बन्ध में पार्वती ने अपने पिता हिमालय से प्रश्नोत्तर एवं तर्क किया है।

उपरोक्त वर्णनों से स्पष्ट होता है कि कालिदास द्वारा वर्णित शिक्षण-विधियाँ वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में भी सभी शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थानों में सर्वमान्य विधि के रूप में स्वीकृत हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कालिदास ने प्रमुख शिक्षण-विधियों के अन्तर्गत शास्त्रार्थ-विधि, प्रयोग एवं प्रदर्शन-विधि, करके सीखने की विधि, अभिनय-विधि इत्यादि का वर्णन किया है, जो वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं |

डॉ.अमित कुमार जायसवाल

एसो.प्रो.,शिक्षा संकाय,

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ,कोटद्वार ,उत्तराखंड

सन्दर्भ :

1. वर्मा, गायत्री (1963), कालिदास के ग्रन्थः तत्कालीन संस्कृति, वाराणसी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
2. मुखर्जी, राधाकुमुद (1997), एन्शियंट इण्डियन एजूकेशन, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, प्रा॰लि॰,
3. वर्मा, गायत्री (1963), कालिदास के ग्रन्थः तत्कालीन संस्कृति, वाराणसी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
4. पराड़कर , एम.डी. (1980), मालविकाग्निमित्रम् ए क्रिटिकल स्टॅडी, बम्बई, राजीव प्रकाशन,
5. एन.सी.ई.आर.टी. (2005), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, एन.सी.ई.आर.टी. पब्लिशिंग, नई दिल्ली,
6. भट्ट, जी. के. (1985), अप्वाइन्टमेन्ट विद् कालिदास, अहमदाबाद, एल.डी. इंस्टीट्यूट ऑव इण्डोलॉजी,

भारतीय शिक्षा-अतीत से वर्तमान

डॉ. विनोद कुमार सिन्हा

शिक्षा एक व्यापक शब्द है, एक सतत प्रक्रिया है जिसके कारण मनुष्य की आत्मोन्नति होती है। स्वामी विवेकानन्द जी ने भी कहा था कि मनुष्य के भीतर जो पूर्णता विस्तृत है,उसकी अभिव्यक्ति ही शिक्षा का उद्देश्य है।प्राचीन -काल की शिक्षा-पद्धति में गुरुकुल -परंपरा थी । संदीपन ऋषि के आश्रम में राजकुमार कृष्ण भी पढ़ते थे और दरिद्र सुदामा भी। कोई भेद भाव नहीं- न वर्ग का न जाति का। एक तरह की विद्या,एक तरह की पद्धति और एक तरह की दक्षिणा।

गुरुकुल-परंपरा में तीन संस्कार थे:-

1. **उपनयन**-:'उपनयन' शब्द का अर्थ समीप ले जाना है अर्थात् गुरु के समीप ले जाना। बाद में उपनयन का अर्थ सीमित हो गया और वह यज्ञोपवीत् संस्कार बन गया। वास्तव में यज्ञ + उपवीत का अर्थ जनेऊ होता है-यज्ञोपवीत्बना है उपवीत से,इस तरह जनेऊ धारण के यज्ञ को यज्ञोपवीत कहा जाता है।
   'उपनयन' शब्द से यह भी आभास मिलता है कि प्राचीन काल में गुरु घरघर पढ़ाने नहीं - जाते थे,छात्र ही गुरु के यहाँ उनके समीप जाते थेलक्ष्मण हों-चाहे राजकुमार राम ,,कृष्ण हों , अर्जुन हों या दुर्योधन हों।
2. **वेदारंभ** वेद को प्राचीनतम ग्रंथ माना गया है-,वेद चार हैं ऋग्वेद -,यजुर्वेद,सामवेद और अथर्ववेद।
3. **समावर्तन**जब गुरु मानते थे कि हमारे छात्र योग्य और ज्ञानी हो गए है तब समावर्तन - या है। उस जमाने में शिक्षा का अर्थ संस्कार होता था जिसे आज दीक्षान्त समारोह कहा ग ज्ञानार्जन होता था । छात्र और अभिभावक समझते थे कि शिक्षाअर्जन एक तपस्या है जो - राजसी ठाठ तथा विलासितापूर्ण जीवन में कदापि संभव नहीं। छात्रों को ब्रह्मचारी बनना तक ही सीमित नहीं वासना से अपने को मुक्त करने-पड़ता था । ब्रह्मचारी का अर्थ काम था बल्कि जो परम तत्व या वेदों के मर्म को जानने के लिए प्रयत्नशील रहता था ,वही ब्रह्मचारी कहलाता था। गुरु और छात्र दोनों समझते थे कि शिक्षा का एक गूढ़तत्व हैतृष्णा - गी तब तक जानने की इच्छा नहीं हो ,अर्थात् प्यास । छात्र में जब तक जिज्ञासा नहीं होगी वह अध्ययन प्रारंभ नहीं कर पाएगा। गुरु भी छात्र के निकट रहकर देखते थे कि उसमें प्यास कितनी है। कुछ जानने और सीखने की लगन कितनी है ,
   समावर्तन संस्कार में गुरु अंतिम उपदेश देते थे-:
   है उसे कभी उसे ही ग्रहण करना ।मेरे भीतर जो भी निंदनीय -मुझमें जो अनिंदनीय है" ग्रहण नहीं करना । मेरे जो अच्छे कर्म हैं तुम उसी का अनुसरण करना,मेरे बुरे कार्यों का अनुसरण मत करना।"

   यानि अनवद्यानि कर्माणि

!!तानि सेवितव्यानि। नेतराणि
यानि अस्माकं सुचरितानि
- !! तानि त्वया सेवितव्यानि। न इतराणितैत्तिरीय उपनिषद् 1.11.2

वेदव्यास कहते थे कि आश्रम निर्माण ही असली-शिक्षा है। रामायणलक्ष्मण -काल में राम-इत्यादि चारों भाई गुरु विश्वमित्र के आश्रम में पढ़ते थे,धनुर्विद्या भी सीखते थे तथा गुरु की सेवा भी करते थे ।
महाभारत काल-में कौरवपांडव गुरु वेद व्यास के लिए जल लाते-,पूजातु फूल लाते भोजन हे-बनाते,गुरु की सेवा करते और अध्ययन भी करते थे।

अब उनके शिक्षणसमारोह का -काल के उपरांत समावर्तन संस्कार अर्थात् दीक्षांत-अध्ययन कर चुके तब गुरु वेदव्यास न-पांडव जब विद्या-अवलोकन करें। कौरवे कहा कि तुम लोगों का अध्ययन पूर्ण हो गया आग लगा दो। कौरवों को संपत्ति से अब आश्रम में-मोह हो गया। पाठ्यक्रम में कौरव भले ही उत्तीर्ण हो चुके थे परन्तु वे शिक्षा के मर्म को नहीं मोह हो गया वही उनके नाश का बीज बन ग-काल में उन्हे जो संपत्ति-समझ सके। शिक्षणया। सच्ची शिक्षा स्वार्थ,लोभ,मोह सबका त्याग कराती है। इसलिए कहा गया है"-सा विद्या या विमुक्तयेसांसारिक दोष , । विद्या वही है जो मुक्ति अर्थात् मोक्षप्राप्ति के लिए होती है" उसमें बाधा नहीं बनते ।

वेदकाल के बाद भी हमारे भारत में एक से एक विद्वान-,शिक्षाविद् और दार्शनिक रहे हैं जिन्हें विश्व गुरु बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। महर्षि अरविन्द ने अपने विभिन्न शोधोपरान्त कहा था कि केवल पुस्तक से नैतिकता नहीं आती वह तो गुरु की शिक्षा,वातावरण,आचरण और शिक्षानैतिकताशून्य शिक्षा महत्वहीन है। । पद्धति से आती है-उन्होंने कहा था कि शिक्षा को उद्देश्यपूर्ण,नैतिकतायुक्त विमुक्तकारी तथा सार्थक बनना होगा।

महात्मा गाँधी ने भी कहा था-:

शिक्षा से मेरा अभिप" ्राय है बालक और मनुष्य के शरीर,मस्तिष्क और आत्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास। "

डॉर थे। वे राधाकृष्णन भी शिक्षा को सक्रिय और जीवनदायिनी बनाने के पक्षध . कहते थे कि शिक्षा के लिए आवश्यक है कि वह केवल अधिगम और कौशल पर ही जोर न देकर उद्देश्यपूर्ण एवं जीवनदायिनी बने।

महर्षि अरविन्द ने शिक्षा की जो शोधपूर्ण व्याख्या की थीमहामना मदनमोहन , की स्थापना की उन्होंने जब काशी विश्वविद्यालय । मालवीय जी ने उसका समन्वय किया व्यक्ति और समाज के अभ्युदय के लिए बौद्धिक" भाषण में कहा था-थी तब उद्घाटन विकास से भी अधिक महत्वपूर्ण है चरित्र का निर्माण और उसका विकास। मात्र औद्योगिक प्रगति से कोई देश खुशहाल,समृद्ध और गौरवशाली राष्ट्र नहीं बन सकता । अतयुवाओं का : निर्माण इस प्रस्तावित विश्वविद्यालय का एक प्रमुख लक्ष्य होगा। उच्च शिक्षा द्वारा -चरित्र यहाँ केवल अभियंताचिकित्सक ,, विधिवेत्ता ,वैज्ञानिक और कुशल व्यापारी तथा शास्त्रज्ञ

विद्वान ही तैयार नहीं किए जाएँगे बल्कि ऐसे व्यक्तियों का निर्माण किया जाएगा जिनका चरित्र उज्ज्वल हो ,जो कर्त्तव्यपरायण और मूल्यनिष्ठा से ओतप्रोत हो। यह विश्वविद्यालय केवल अर्जित ज्ञान के स्तर प्रमाणित कर डिग्रियाँ देने वाली संस्था मात्र न होकर सुयोग्य और सच्चरित्र नागरिकों की पौधशाला होगी।

हमारे पूर्व राष्ट्रपति डॉकी परिभाषा इस प्रकार अब्दुल कलाम ने भी गुरु.जे.पी.ए. ,बतलाई थी

"अध्यापक को, जो कि बच्चों के सीखने और ज्ञान की दुनिया का झरोखा होता है,उन्हें बच्चों में रचनात्मकता का संस्कार डालने के लिए आदर्श बनना होगा।" (तेजस्वी मन-पृ. 30)

प्राचीन भारत से स्वाधीन भारत तक विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा ,शिक्षक और छात्र के विषय में जो कहा था उस कसौटी पर वर्तमान शिक्षा कहाँ तक खरी उतरती है-इसके विषय में चिंतन की आवश्यकता है। विश्व के विकसित देशों -अमेरिका,कनाडा,फ्रांस,जर्मनी आदि में सब के लिए एक ही सरकारी स्कूल है तथा शिक्षकों को समान कार्य हेतु समान वेतन मिलता है। भारत में भी अंग्रेजी शासन से पूर्व शिक्षा का निजीकरण नहीं था। अंग्रेजी शासन के दौरान ईसाई मिशनरियों ने सरकार के समक्ष निजीकरण का प्रस्ताव दिया था, परन्तु सरकार को ऐसा करने का साहस नहीं हुआ। स्वतंत्र भारत में कहीं-कहीं बड़े शहरों में सेंट जेवीयर्स या कॉनवेंट स्कूल हुआ करते थे। जब राजीव गाँधी जी प्रधान-मंत्री हुए तो नई शिक्षानीति का मसविदा जनवरी 2001 में तैयार किया गया । "भरतीय विज्ञान कॉग्रेस" की सभा में प्रधानमंत्री बाजपेयी जी ने भी शिक्षा के निजीकरण का समर्थन कर दिया।

अब तो शहर से लेकर ग्राम तक निजी विद्यालय कुकुरमुत्ते की तरह खुल गए हैं । शिक्षा का निजीकरण ही नहीं, व्यवसायीकरण हो गया है। निजी-विद्यालय खोलने से बड़ा उद्योग और व्यापार भारत में कोई नहीं है जिसके फलस्वरूप अवकाशप्राप्त प्रोफेसर,इंजीनियर ,अफसर से लेकर व्यापारी तक सब नए-नए विद्यालय खोल रहे हैं । शिक्षकों तथा छात्रों का भी शोषण होता है। छात्रों से हर साल नामांकन शुल्क लिया जाता है। कुछ प्रदेश सरकारों ने विरोध किया तब नामांकन शुल्क का नाम परिवर्तित होकर विकास शुल्क हो गया। शिक्षकों को कहीं-कहीं चतुर्थवर्गीय कर्मचारी से भी कम वेतन मिलता है।

प्राचीन भारत के शब्दकोष में 'भ्रष्टाचार' शब्द तो लुप्त था-अर्वाचीन भारत में भी पहले 'भ्रष्टाचार'शब्द गुप्त था ,परन्तु आज शिक्षा के साथ भी वही अपवित्र शब्द संलिप्त हो गया है। शिक्षा के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा? आपके मन में यह प्रश्न भी बराबर बिजली की तरह कौंधता होगा कि आज हमारे देश में 'निजी-विद्यालयों 'की आवश्यकता क्यों पड़ी।

सरकारी विद्यालयों में शिक्षा की पतनोन्मुख अवस्था ही निजी-विद्यालयों के निर्माण की जननी है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी होती है । आज शिक्षा की ऐसी स्थिति

हो गई है कि अगर देश के माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं को पुन: अचानक मैट्रिक की परीक्षा देने को कहा जाए तो शहरों में पचीस प्रतिशत और ग्रामों में पचास प्रतिशत अनुत्तीर्ण हो जाएंगे । कुछ प्रदेश सरकारों ने 'शिक्षा-पात्रता-परीक्षा' का कार्यक्रम बनाया तब अनुत्तीर्ण शिक्षकों के आंदोलन से सरकारों को मौन होना पड़ा।

ऐसा क्यों है इस पर गौर करना पड़ेगा। शिक्षा एक व्यावहारिक प्रक्रिया है। शिक्षा की कोई उम्र सीमा नहीं होती। शिक्षक और चिकित्सक को आजीवन सैद्धांतिक तथा प्रायोगिक शिक्षण तथा अनुसंधानों,प्रयोगों से रूबरू होना पड़ता है, तभी वह सुयोग्य शिक्षक या चिकित्सक बनता है। आज से छह-सात दशक पूर्व जब मैं भी विद्यालय का छात्र था–उस समय छात्र एक हाथ में बोरा और दूसरे में झोला लेकर स्कूल जाते थे। मैं देखता था कि सरकारी स्कूल के तत्कालीन शिक्षक पाठ्यपुस्तक के उस पृष्ठ को एक बार सरसरी नजर से देख लेते थे जिसे उस दिन पढ़ाना होता था। मुझसे 15 वर्ष छोटा भाई जीव-विज्ञान का प्रोफेसर था ,उसको भी मैं देखता था कि कॉलेज जाने से पूर्व प्रतिदिन पढ़ाए जाने वाले पृष्ठ का अवलोकन कर लेता था । अब इस प्रक्रिया का नितान्त अभाव है।

दूसरी बात है कि आज छात्रों में जिज्ञासा का अभाव है।ज्ञानार्जन के लिए न छात्र पढ़ते है और न शिक्षक पढ़ाते हैं । ज्ञान अर्जन अब लक्ष्य नहीं रह गया है। परीक्षा में अधिकाधिक अंक लाना ही पढ़ने और पढ़ाने का एकमात्र लक्ष्य बन गया है। पुस्तके तो पहले से मोटी बन गई हैं ,परन्तु नामांकन के तुरंत बाद शिक्षक विषय-सूची को चिन्हित कर देते हैं कि इन पाठों की संभावना परीक्षा में होगी। अध्यापकों के पास निजी पुस्तकालय का अभाव है। उनके पास वे ही पुस्तकें हैं जिन्हे धनाढ्य प्रकाशकों ने कोर्स में लगवाने के लिए नमूने में दी है। बाजार पास होने वाली पुस्तकों से भरे पड़े हैं -गेस पेपर,वन मन्थ सिरीज, वन वीक सिरीज इत्यादि । बस, केवल 'वन डे सिरीज' आना बाकी है।

एक वह भी जमाना था जब बिहार के नालंदा विश्वविद्यालय में विदेशों के हजारों छात्र विद्याध्ययन करने आते थे।आज भी नालंदा विश्वविद्यालय का अवशेष बिहार की दूसरी और देश की 33 वीं धरोहर है जिसे 'वर्ल्ड हेरिटेज साईट' का दर्जा दिया गया है। ज्ञातव्य है कि 2016में 'यूनेस्को नेशंस एजुकेशनल साइंटीफिक एंड कल्चरल ऑर्गेनाइजेशन' ने नालंदा विश्वविद्यालय के अवशेष को 'वर्ल्ड हेरिटेज साइट' में शामिल कर लिया है, जिससे बिहार की ही नहीं-पूरे देश की गरिमा बढ़ी है। प्रसन्नता की बात है कि बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार ने 'नालंदा विश्वविद्यालय' को पुन: गौरवान्वित करने का संकल्प लिया है तथा वे इसके कार्यान्वयन हेतु भी सचेष्ट हैं ।

विद्यालयों-विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की भी कमी है । 10 अगस्त 2018के 'जनसत्ता 'में प्रकाशित श्री देवेन्द्र जोशी के लेखानुसार 2015 से 2018 तक 2 लाख शिक्षकों की कमी थी। उन्होंने लिखा था कि 40 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों मे 2476 अध्यापक के पद

स्वीकृत हैं जिसमें 1300 पद रिक्त हैं । आई. आई.टी. में मार्च 2018 तक 2806 पद रिक्त थे । जे.एन.यू. में भी पचास प्रतिशत पद रिक्त हैं।

विद्यालयों-विश्वविद्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार के उन्मूलन तथा शिक्षा के स्तर में गुणवत्ता लाने के लिए सरकार और समाज को भी कुछ कड़े कदम उठाने होंगे। रोग जब हो जाता है तो तिक्त औषधि से ही उसका निवारण होता है, मिठाई से नहीं । राष्ट्रकवि दिनकर ने भी एक बार कहा था:-

रुग्ण होना चाहता कोई नहीं,
रोग लेकिन आ गया जब पास हो-
तिक्त औषधि के सिवा उपचार क्या?
शमित होगा वह नहीं मिष्ठान्न से।

जहाँ तक सरकारी विद्यालयों में शिक्षा का जो ह्रास हो रहा है, उसके दूर करने के लिए ग्राम से शहर तक मुखिया,सरपंच,विधायक ,सांसद,अफसर सबको संकल्प लेना होगा कि हमारे बच्चे सरकारी विद्यालय में पढेंगे तब ही शिक्षा के स्तर में सुधार होगा। अभी तो गाँव में जो शिक्षक-शिक्षिकाएं हैं उनके बच्चों का नाम सरकारी विद्यालय में लिखा है जहाँ वे पद स्थापित हैं परंतु वे पढ़ते है निजी विद्यालयों में। शिक्षकों को अपनी शिक्षण-प्रक्रिया पर भी विश्वास नहीं है ,अत: वे स्वयं अपने बच्चों को इन विद्यालयों में नहीं पढ़ाते हैं ।

बड़े दुःख की बात है कि भारत में जब समस्याएँ चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं तो न्यायपालिका को चाबुक चलाना पड़ता है। 20 फरवरी 2020 को पटना हाई कोर्ट के न्यायमूर्ति डॉ. अनिल कुमार की एकल पीठ ने कौशल किशोर ठाकुर की रिट याचिका को सुनते हुए यह टिप्पणी की है कि शिक्षा-व्यवस्था तब ही सुधरेगी जब अफसरों को इसके लिए बाध्य किया जाए कि उनके बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ें । कोर्ट ने कहा कि सबसे बड़ा संकट है कि शिक्षा की बदतर स्थिति की सुध किसी को नहीं है। ऐसा लगता है कि 'कानून का राज' सिर्फ नारा है,जिस पर कोई अमल नहीं करता। कोर्ट ने मुख्य सचिव से पूछा कि सरकार हलफनामा दायर करे ताकि राज्य का भविष्य जिन करोड़ों गरीब बच्चों के कंधों पर है, उनको गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिल सके।

इस दिशा में कुछ संतोषप्रद प्रयोग भी हुए हैं। छतीसगढ़ के बलराम पुर जिला के कलक्टर श्री अवनीश कुमार शरण ने अपनी बेटी वेदिका शरण का नामांकन सरकारी स्कूल में कराया है-उससे पूर्व उन्होंने आंगनवाड़ी में भी भेजा था।

फिर तमिलनाडु के एक कलक्टर ने अपनी बच्ची को जिला पंचायत के एक ऐसे विद्यालय में भेजा था जिसकी हालत खराब थी। अगले दिन ही शिक्षा विभाग के कई अधिकारी स्कूल पहुँचे और बिजली,पानी,शौचालय सभी की व्यवस्था ठीक हो गई। शिक्षक भी नियमित आने लगे । पढ़ाई के स्तर में भी सुधार हुआ।

इन दिनों निजी विद्यालयों तथा निजी इंजीनियरिंग तथा मेडिकल कॉलेजों का शुल्क इतना बढ़ गया है जिसके कारण इनमें उन्हीं अभिभावकों के बच्चे पढ़ सकते है जिनकी

मासिक आय लाख में हो या डॉ नम्बर की कमाई हो। सरकार को इस पर भी नियंत्रण करना पड़ेग्ग तथा आर्थिक स्तर पर पचीस प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था अनिवार्य करानी होगी। अभी-अभी विश्व में सबसे कम उम्र वाली फिनलैंड की प्रधानमंत्री सना मरीन ने 'भास्कर ऐप पर एक इंटरव्यू में कहा था कि मुझे अगर स्कूली पाठ्यक्रम बनाने का मौका मिले तो इसमें उन बातों को शामिल करूँगी जो युवाओं के लिए जरूरी हैं । पाठ्यक्रम में समान अधिकार और उसकी विस्तृत परिभाषा होनी चाहिए। वैश्विक मुद्दे हमारे समाज और संस्कृति में आए परिवर्तन और बदलते आर्थिक मुद्दों को शामिल करूँगी। हमारे आस-पास हो रहे तेज सानाजिक -आर्थिक बदलाव के साथ ही जीवन का मानवीय पक्ष पढ़ाने-समझाने की सबसे ज्यादा जरूरत है,क्योंकि ये ही आधुनिक समाज के मजबूत स्तंभ हैं ।(दैनिक भास्कर 8 मार्च 2020)

एक विद्वान पूर्व केन्द्रीय मंत्री ने कहा है :-

"मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि हम अमेरिका,जर्मनी,जापान की नकल करके अंतर राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला नहीं कर सकते ,हमें भारत बनकर ही वैश्विक चुनौतियों से निपटना होगा। हम विश्व-गुरु रहे हैं,हमने पूरे विश्व का मार्गदशन किया है। नालंदा, तक्षशिला,विक्रमशिला,वलभी जैसे केन्द्रों ने संपूर्ण विश्व को नई-दिशा दिखाई। यह सब इसलिए हुआ क्योंकि हमारी शिक्षा -नीति मूल्यों और संस्कारों पर आधारित थी। चाहे हमारे गुरुकुल रहे हों,चाहे विश्वविद्यालय, सर्वत्र मानवीय मूल्यों की शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका इसमें थी।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति और विकास का आकलन मात्र संसाधन जुटा लेने से नहीं होता, अपितु वहाँ के लोगों के द्वारा अपनाई जाने वाली पद्धतियों,संस्कारों मूल्यों,कार्यशैलियों से राष्ट्र का निर्माण होता है। हम अपने डिजिटल संसाधनों से शहर के चप्पे-चप्पे की निगरानी तो कर सकते हैं ,लेकिन सन्मार्ग पर चलते हुए हमें अपनी कार्य-संस्कृति,संस्कारों,मूल्यों और कार्यशैली को भी उसी के अनुरूप ढ़ालना होगा,तभी एक शक्तिशाली भारत,समृद्ध भारत,आयुष्मान भारत,आत्मनिर्भर भारत का सपना साकार होगा ।

डॉ. विनोद कुमार सिन्हा
ग्राम व पोस्ट -बेलाही नीलकंठ ,
वाया-अथरी ,जिला- सीतामढ़ी -8433111 (बिहार)

प्राथमिक स्तर पर भाषायी कौशलों के विकास की युक्तियाँ

डॉ. मोनिका पारीक

मनुष्य अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए जिस माध्यम का चयन और उपयोग करता है, उस माध्यम को संक्षिप्त रूप में भाषा कह सकते हैं । यदि विचार करें भाषा के अंग्रेजी रूपांतरण की तो भाषा को 'लैंग्वेज' कहते हैं। 'लैंग्वेज'शब्द लैटिन भाषा के 'लिंगवा' शब्द से बना है,जिसका अर्थ है जिह्वा। अर्थात् भाषा वह माध्यम है जिसमें जिह्वा का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है ।यहाँ प्रसिद्ध विद्वान् **स्वीट** का कथन वर्णन अत्यंत प्रासंगिक है। उनका विचार हैकि "भाषा बोली हुई ध्वनियों के द्वारा मानवीय विचारों की मौलिक अभिव्यक्ति है"। यदि'भाषा' शब्द परसंस्कृत की दृश्टि से विचार करें तो यह संस्कृत भाषाकी धातु 'भाष् अव्यक्तायाम् वाचि' सेबनाहै। भाषा को मानव समाज की आधारशिला माना गया है क्योंकि इसी के माध्यम से मनुष्य अपनी संस्कृति व समाज को बनाए रखने तथा विकास करने में समर्थ हो पाता है। महर्षि **पतंजलि** द्वारा कहा गया है'भाषा वह व्यापार है, जिसमें हम वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं' ।भाषा का विभाजन मौखिक व लिखित रूप में किया गया है।सुनने और बोलने के द्वारा अपनाई गई भाषा का स्वरूप मौखिक तथा पढ़ने व लिखने में भाषा का जो स्वरूप दिखाई देता है, वह लिखित भाषा कहलाती है।

भाषा व्यक्ति के विचारों, संवेदनाओं और भावों को संप्रेषित करने का एक सशक्त साधन है, किन्तु यह क्या केवल विचारों के विनिमय का साधन मात्र है? इस प्रश्न का उत्तर दे पाना निश्चित रूप से कठिन है;क्योंकि भाषा किसी भी समाज की संस्कृति, परम्परा, सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान परम्परा की संवाहिका भी है।

भाषा विकास की आवश्यकता

प्रथमदृष्टया भाषा विचार विनिमय का साधन अवश्य दिखाई पड़ती है किन्तु यह भाषा की संकीर्ण परिभाषा होगी, क्योंकि भाषा-विकास द्वारा बालक अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण गुणों को अपने व्यक्तित्व में समाहित करने का प्रयास करता है। यह भाषायी विकास बालक में अनायासनहीं होता, अपितु यह उसके प्रारंभिक वर्षों से आरंभ हो जाता है।भाषा के प्रयोग में परि-पक्वता केवल अनुकरण व अभ्यास द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। बालक अनुकरण और अभ्यास द्वारा हीभाषा के प्रयोग में होने वाली त्रुटियों का बहिष्कार करना सीखताहै|शैशवकाल में सर्वप्रथम अपने परिवार में बोली जा रही भाषा को अनुकरण के माध्यम से ही सीखता है। इसीलिए बालक के परिवार में रहने वाले सदस्यों को सदैव भाषा का शुद्ध रूप प्रयोग मेंलाना चाहिए जिससे बालक भाषा के शुद्ध रूप का अनुकरण करके,

भाषा का उचित प्रकार से प्रयोग कर सके | कालांतर में बालक भाषा को अपने मित्रों के साथ बातचीत करके सीखताहै,जो बालक के भाषायी विकास के साथ-साथ सामाजिक व भावनात्मक विकासमें भी सहायक सिद्ध होता है। प्राथमिक स्तर पर बालक द्वारा भाषायी शब्दों का अर्जन व अधिगम करना अत्यंत आवश्यक होता है। इसी स्तर परपरिवार व विद्यालय के द्वारा विभिन्न विधियों के प्रयोग के माध्यम से बालक में भाषायी कौशलों काविकास किया जाता है ।**डॉ. एस. के. देशपांडे** के अनुसार "भाषा शिक्षण का संबंध केवल ज्ञान या सूचनाएं सूचनाएँ प्रदान करना मात्र नहीं, बल्कि भाषा सीखने वालों को चारों भाषायी कौशलों में दक्ष बनाना है, जैसे- सुनना,बोलना,पढ़ना और लिखना"। किसी भी भाषा के सम्यक् ज्ञान हेतु इनचारों भाषायी कौशलों में कुशलता प्राप्त करना परम आवश्यक है। बालक सुनकर ही भाषा ग्रहण करता है । तत्पश्चात् वह बोलने का प्रयत्न करता है । सुनने तथा बोलने के पश्चात् लिखित सामग्री को पढ़ता हैऔर अंत में सभी कौशलों में निपुणता आए इसके लिए लिखित अभ्यास करता है, जो नितांत आवश्यक है।भाषा शिक्षण में कुशलता के लिए यही क्रम युक्तिसंगत है । सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना क्रम द्वारा बालक भाषा को सीखेगा तभी त्रुटियों को बहिष्कार व भाषायी समस्याओं से निदान प्राप्त कर पाएगा| अतः भाषा ही अधिगम में भाषायी कौशलों के शिक्षण में क्रम का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है।

बालक में श्रवण योग्यता का विकास करना- श्रवण कौशल से तात्पर्य है बालक द्वारा किसी बात या विचार को सुनना और सुनी हुई बात का उचित प्रकार से अर्थ ग्रहण करने की योग्यता से है| भाषा को सीखने का प्रथम चरण निश्चित रूप से सुनना ही है | यही वह कौशल है जो अन्य भाषायी कौशलों के विकास का आधार भी है । यह देखने में भी आता है कि श्रवण कौशल से बाधित बच्चा बोलने में भी असहज महसूस करता है|सुनने के कौशल को श्रवण कौशल भी कहते हैं 'श्रवण''श्रु' धातु से बना है जिसका अर्थ है- ध्यान पूर्वक सुनना,अध्ययन करना, अधिगम करना इत्यादि। अर्थात् बोलने वाला जिस उद्देश्य व अभिप्राय से अपनी बात को बोलता है यदि सुनने वाला उसी उद्देश्य या अभिप्राय के अनुसार ही अर्थ को ग्रहण करता है तो अर्थग्रहण करने की यही योग्यता सुनने का कौशल अर्थात् श्रवण कौशल कहलाती है।श्रवण कौशल के विकास करते समय शिक्षक को ध्यान में रखने वाले आवश्यक तत्व हैं-सुनकर अर्थ ग्रहण करना, धैर्यपूर्वक सुनना,मनोयोग से सुनना, शिष्टाचार का पालन करते हुए सुनना व अपनी मन: स्थिति को स्थिर बनाए रखते हुए सुनना इत्यादि।श्रवण कौशल के द्वारा ही बालक विभिन्न ध्वनियों, शब्दों इत्यादि को पहचानता है । परिवार के सदस्यों को बोलता हुआ देखकर या सुनकर बालक अनुकरण द्वारा ठीकउसी प्रकार बोलने का प्रयास करता है,सुनकर ही वह नए-नए शब्दों को अपने मस्तिष्क में जोड़ता हैव सुनने की क्रिया द्वारा ही उच्चारण, हाव-भाव, उचित स्वर, उतार-चढ़ाव इत्यादि के अनुसार बोलने की कोशिश करता है।श्रवण कौशल विकाससे ही बालक सुनी गई विषय सामग्री का अर्थ समझने में समर्थ बन सकताहै ।साथ ही श्रवण कौशलो के विकास से ही बालक सुनी गई सामग्री के महत्वपूर्ण अंशों को पहचान कर उसकाअर्थ अवबोधप्राप्त कर सकता है।सुनने

का कौशल अर्थात् श्रवण कौशल सभी भाषायी कौशलों का आधार है। इससे यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि यह कौशल बालक के भाषा विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।अत:बालक के भाषायी कुशलता के उचित विकास हेतु श्रवण कौशल का सही विकास होना परमावश्यक है ताकि अन्य कौशलों का विकास ठीक प्रकार से हो सके| इस कौशल के विकास हेतु अनेक युक्तियाँ अपनाई जा सकती हैं,जिसमें सर्वप्रथम 'सस्वर वाचन विधि' है ।इस युक्ति काप्रयोग करते समय अध्यापक द्वारा कक्षा में सर्वप्रथम आदर्श वाचन किया जाता है।जब शिक्षक कक्षा में आदर्श वाचन कर रहा होता है, तब छात्र शिक्षक द्वारा किये जा रहे वाचन को ध्यान पूर्वक सुनते हैं, जिससे उनमें सुनने की योग्यता का विकास होता है साथ ही छात्र सुनी जा रही विषय सामग्री का अनुकरण वाचन भी करते हैं, जिनसे उनमें बोलने कीयोग्यता भी विकसित हो जाती है ।शिक्षक छात्रों में सुनने की योग्यता विकसित करने के लिए उन्हें सुनी जा रही सामग्री के विषय में प्रश्न पूछ सकता है, जिससे वे सुनने के लिए उत्साहित होते हैं। इस प्रकार वह छात्रों में अप्रत्यक्ष रूप से श्रवण कौशल को विकसित करताहै। इसके अतिरिक्त 'प्रश्नोत्तर युक्ति'के प्रयोग द्वारा अध्यापक छात्रों से पढ़ाई गई सामग्री से प्रश्न पूछता है जिसके द्वारा यह जांच होती है कि पढ़ाई गई विषय सामग्री को छात्र ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं या नहीं। यदि छात्र ध्यान से सुनेगा तभी वह अध्यापक द्वारा पूछे गए प्रश्न का सही उत्तर दे पाएगा। छात्रों में सुनने की योग्यता के विकास हेतु एक अन्य और बहुतायत प्रयोग होने वाली युक्ति है जिसे 'श्रुतलेख विधि' कहते हैं ।यह विधि या युक्ति भाषा विकास के क्रम में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है, जिसमें अध्यापक पाठ में आए कठिन शब्दों को कक्षा में छात्रों के सम्मुख बोलता है ।छात्र उन शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनकर अपनी पुस्तिका में लिखते हैं। जो बालक ध्यानपूर्वक सुनेगा वही पूरी सामग्री को लिख पाएगा और जो छात्र ध्यानपूर्वक नहीं सुनेगा उसके लेख में शब्द छूट जाएंगे।

बालक में बोलने की योग्यता का विकास-श्रवण कौशल के उपरांत वाचन कौशल व मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का स्थान आता हैं जिसका अर्थ हैं बोलना । जब बालक मुख अवयवों के व्यवहार द्वारा ध्वनियों के माध्यम से उच्चारित भाषा का प्रयोग करते हुए अपने विचारों को प्रकट करता हैं तब इसे 'मौखिक अभिव्यक्ति कौशल' कहा जाता है।मौखिक भाषा अभिव्यक्ति अपने विचारों को प्रकट करने का सबसे सशक्त माध्यम है। मनुष्य अपने दैनिक क्रिया-कलापमें मौखिक भाषा के माध्यम से ही अपने विचारों को दूसरों के समक्ष स्वाभाविक रूप से व्यक्त कर सकता है। बालक अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण अपने मन में आने वाले प्रश्नों का उत्तर भी मौखिक अभिव्यक्ति द्वारा ही समझ पाता है, जिसके द्वारा उसकी मौखिक अभिव्यक्ति के स्वाभाविक विकास में सहायता मिलती हैऔर उसका आत्मविश्वास बढ़ता है। अपनी बात को स्वाभाविक रूप से स्पष्ट करने का सरलतम माध्यम मौखिक अभिव्यक्ति ही है। मौखिक भाषा का प्रयोग बालक को सुनने में और बोलने में कुशल बनाता है। विद्यालय में पाठ्यक्रम द्वारा पढ़ाए जाने वाले सभी विषयों की शिक्षा में मौखिक भाषा ही प्रमुख माध्यम होती है।मनुष्य द्वारा किए जाने वाले भाषण,वार्तालाप,बोलचाल, अपनी बात को स्पष्ट

करना,छात्र द्वारा कहानी के प्रत्येक पहलू को बताना इत्यादि सभी मौखिक अभिव्यक्ति के अंतर्गत आते हैं।मौखिक अभिव्यक्ति योग्यताका मुख्य उद्देश्य छात्रों को इस योग्य बनाना है कि वह अपने भावों, विचारों और अनुभव को सरलता और सहजता पूर्वक व्यक्त करने में सक्षम हो सकें ।छात्रों की मौखिक अभिव्यक्ति की योग्यता का विकास हो जाने से वह पूछे गए प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट रूप से दे सकेंगे ।साथ ही अपने विचार व्यक्त करने के योग्य बन पाएंगे । शिक्षक छात्रों में बोलने की कुशलता का विकास करके,छात्रों को उचित शब्दों का प्रयोग करने, बोलने का अभ्यास कराकर धाराप्रवाह और प्रभावोत्पादक वाणी के प्रयोग में समर्थ बनाता है। शिक्षक छात्रों में बोलने की योग्यता के विकास के लिए कुछ युक्तियों का प्रयोग कर सकता है, जिसमें सर्वप्रथम 'वार्तालाप विधि या युक्ति' का प्रयोग किया जाता है। वार्तालाप विधि के अंतर्गत सर्वप्रथम छात्र को वार्तालाप में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।वार्तालाप का विषय छात्रों की आयु व ज्ञान की सीमा के अंदर ही होना चाहिए। छोटे बच्चों में 'चित्र वर्णन विधि' के अंतर्गत शिक्षक चित्र दिखाकरछात्रों से प्रश्न पूछताहै। बच्चे चित्र का वर्णन करते हैं। छात्रों को किसी स्थान याकिसी पशु का सुंदर चित्र दिखाकर उससे संबंधित अंश को स्पष्ट करने को कहा जा सकता है। चित्र वर्णन एक रोचक विधि है।इसी क्रम में 'कविता पाठ विधि' द्वारा बच्चों को सुंदर लययुक्त गीतों को अध्यापक द्वारा सुनाया जाताहै।इस विधि में छात्रबहुत रुचि लेते हैं ।छात्र कविताएं कंठस्थ करके और पुस्तक द्वारा कविता पाठ करके अपने मौखिक अभिव्यक्ति में स्पष्टताला सकतेहैं।साथ ही छात्र इस विधि द्वारा अपनेहावभाव औरअंग संचालन में दक्षता व स्पष्टता ला सकता है।वाद-विवाद औरस्वतंत्रता पूर्वक बोलने के अवसर देने से छात्रों में मौखिक अभिव्यक्ति के अंतर्गत पायी जाने वाली त्रुटियों को दूर करने में सहायता मिलती है। इन विधियों द्वारा छात्र अपने विचारों को तर्कपूर्ण तरीके से सामने वाले के सम्मुख रखता है। छात्र इनमें अपने अनुभवों को भी सम्मिलित कर सकता है।मौखिक अभिव्यक्ति में निपुण छात्र की वाणी में स्पष्टता,शुद्धता ,बोधगम्यता, परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग करना,शिष्टता,मधुरता, इत्यादि गुणों का समावेश होता है।

बालकों में पढ़ने की योग्यता का विकास-

किसी बालक की पढ़ने की योग्यता को वाचन कौशल भी कहा जाता है।वाचन शब्द 'वाक्' धातु से बना है जिसका अर्थहैवाणी अर्थात् लिखित सामग्री को पढ़ने की योग्यता| लिखित सामग्री को पढ़ते हुए अर्थ ग्रहण करने की क्रिया को वाचन कहा जाता है। वाचन मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है-प्रथम सस्वर वाचन औरद्वितीय मौन वाचन।सस्वर पढ़ते हुए अर्थ ग्रहण करना'सस्वर वाचन' कहा जाता है। वाचन करने की यह प्रथम अवस्था है।वर्णों की पहचान सस्वर वाचन के द्वारा ही कराई जाती है। सस्वर वाचन भी दो प्रकार का होता हैः व्यक्तिगत वाचन व सामूहिक वाचन।एक व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले सस्वर वाचन को व्यक्तिगत वाचन कहा जाता है। व्यक्तिगत वाचन में अध्यापक अहं भूमिका रखता है। व्यक्तिगत वाचन करते हुए अध्यापक को ध्यानपूर्वक वाचन करना होता है, क्योंकि छात्रों

द्वारा अध्यापक का ही अनुकरण करके वाचन किया जाता है।सामूहिक वाचन छात्रों द्वारा किया जाता है, जिसमें छात्रों द्वारा अध्यापक द्वारा किए गए व्यक्तिगत वाचन को दोहराया जाता है जिससे बच्चों की झिझक दूर होती है। इस वाचन में अध्यापक को ध्यान रखना चाहिए कि सभी छात्र अपने मुख से आवाज निकाल रहे हैं या नहीं।सस्वर वाचन में छात्र अपनी शब्दावली में नए-नए शब्द जोड़ता है, जिससेउसका शब्द भंडार है।विषयवस्तु के वाचन करने से छात्रों में मुहावरों और लोकोक्तियोंके प्रयोग की आदत का विकास होता है। पढ़ने की योग्यता के विकास से बालक के ज्ञान में वृद्धि तो होती हीहै,साथ ही स्वाध्याय की आदत भी विकसित होती है। छात्रों में पढ़ने की योग्यता के विकास करने के लिए सस्वर वाचन अत्यंत प्रभावी युक्ति है। इसी क्रम में मौन वाचनयुक्ति का प्रयोग भी किया जा सकताहै।इसके प्रयोग से छात्रों में मौन रहकर पढ़ने की आदत का विकास तो होता ही है, साथ ही छात्रों में स्वाध्याय की आदत भी विकसित होतीहै। इसके प्रयोग से छात्रअवकाश के समय का सदुपयोग करना सीखते है।इस क्रम में'वर्ण उच्चारण विधि'का भी महत्वपूर्ण स्थान है, जिसमें अध्यापक कुछ वर्णों व शब्दों को लिखकर उसका उच्चारण करता हैऔर छात्र लिखित सामग्री के वर्णों को सही तरीके से उच्चारण करने का अभ्यास व प्रयास करते हैं ।

बालकों में लिखने की कुशलता का विकास- चारों भाषायी कौशलों में सभी कौशल अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । इनमें लेखन कौशल सबसे अंत में आता है। लेखन कौशल को सीखना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना प्रथम तीन कौशलों में प्रवीणता प्राप्त करना।जब हम अपने विचारों को लिखकर अभिव्यक्त करतेहैं तोवहलेखन कौशल की श्रेणी में आता है। इसके अंतर्गत लिपि का ज्ञान होना आवश्यक है, तभी व्यक्ति अपने भावों और विचारों को लेखन द्वारा प्रकट कर सकता है। लेखन कौशल द्वारा ही मनुष्य अपनी पठन सामग्री व साहित्य को स्थायित्व प्रदान कर सकता है। हमारे दैनिक जीवन में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ केवलमौखिक अभिव्यक्ति से काम नहीं चल सकता है।जैसे दूर रहने वाले मित्रों या अपने कार्य क्षेत्र में यदि एक दूसरे के साथ कोई कार्य पत्र माध्यम से करना है तो लिखित भाषा की आवश्यकता होती है। साथ ही अपने दैनिक जीवन के हिसाब-किताब रखने व व्यावहारिक कार्यों में लिखित भाषा का प्रयोग करना पड़ता है।भाषा के दो रूप हैं- मौखिक एवं लिखित ।जिस प्रकार मौखिक लेखन का अभ्यास आवश्यक है उसी प्रकार लेखन कौशल का विकास भी अत्यंत आवश्यक है। लेखन कौशल के अंतर्गत छात्रों को मात्राओं का उचित प्रयोग करना सिखान, अक्षरों को सुडौल लिखना , वाक्यों को शुद्धता के साथ लिखना, लेख में उचित स्थान पर विराम चिह्न का प्रयोग करना, शब्दों एवं वाक्यों को क्रम अनुसार लिखना सिखाना इत्यादि कुशलताएं समाहित हैं।जिस प्रकार श्रवण कौशल के लिए अनुकरण विधि उपयुक्त है, उसी प्रकार लेखन कौशल में भी अनुकरण विधि का महत्वपूर्ण योगदान है| आज बाजार में बच्चों के लेखन कौशल को विकसित करने के लिए अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं, जिनमें बच्चे पहले से ही लिखे गए अक्षरों पर पेंसिल की सहायता से कलम चलाते हैं।फिरवर्णों के लेखन का अभ्यास करते हैं। इसके अतिरिक्त चित्र विधि के द्वारा भी खेल-खेल में बच्चों को वर्ण

रचना सिखा दी जाती है। मेज, कुर्सी,नल आदि के चित्र बनाकर छात्रों को न,म ,क जैसे वर्ण आसानी से सिखाए जा सकते हैं।सुलेख विधि एक अत्यंत प्रसिद्ध विधि है, जिसके द्वारा छात्रों में सुलेख की योग्यता को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। इसके लिए बाजार में उपलब्ध पुस्तिकाओं में प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर पंक्ति में सुंदर व मोटे आकार वाले अक्षर छपे होते हैं ।बच्चे उन पर पेंसिल की सहायता से उसी प्रकार लिखने का प्रयास करते हैं।'श्रुत लिपि विधि' के अंतर्गत छात्र बिना देखे केवल सुनकर ही लिखने का अभ्यास करते हैंइस विधि में छात्र अध्यापक द्वारा बोले गए शब्दों को सुन-सुन कर लिखता है, जिससे छात्रों को अक्षरविन्यास का प्रशिक्षण मिलता है व ठीक गति से लिखने की योग्यता विकसित होती है। बाद में लेखन में होने वाली अशुद्धियों को अध्यापक द्वारा दूर किया जाता है। **निष्कर्ष** रूप में कहा जा सकता है कि भाषायी कौशलों के शिक्षण के क्रम में सुनना, बोलना, पढ़ना औरलिखना चारों ही कौशलों का बहुत महत्व है।येचारों कौशल एक दूसरे पर आश्रित हैं ।अध्यापक द्वारा इन कौशलों के उचित विकास के लिए यथोचित विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे छात्रों में उचित प्रकार सेभाषायी कौशलों का विकास किया जा सके।साथ ही भाषा के वैज्ञानिक रूप से भी छात्रों को अवगत कराया जाना चाहिए, जिससे छात्रों में हिंदी भाषा के प्रति रुचि का विकास हो सके।

डॉ. मोनिका पारीक
काउंसलर, एस.ओ.एल, दिल्ली
विश्वविद्यालय,दिल्ली

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. एन) 2005 एफ .सी .हिंदी प्रारूप(दिल्ली प्रकाशन विभाग,भारत सरकार,।
2. मंगल,उमा:(2007)हिंदी भाषा शिक्षण,आर्य बुक डिपो, करोल बाग,नई दिल्ली।
3. सिंह, कर्ण:(2007)संस्कृत शिक्षण विधि,एच,भार्गव बुक हॉउस.पी. आगरा।
4. कुमार,ज्ञानेंद्र:(2018) हिंदी भाषा शिक्षण,प्रगतिशील प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. शर्मा, भूषण:(2017)शिक्षा, समाज और राजनीति ,कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. **Mangal.S.K. (2018):** Advanced Educational Psychology, PHI Learning Private limited, Delhi.
7. **Baran and Mishra (2016):** Psychology, Pearson Publication, Tamil Nadu, India.

ऑनलाइन और ऑफ़लाइन आधारित विद्यालय अनुभव कार्यक्रम: कोविड महामारी के समय में सेवा पूर्व छात्र-अध्यापकों के प्रत्यक्षण का एक अध्ययन

डॉ.मीना सहरावत एवं डॉ.एम.एम.रॉय

सारांश:

हर साल, चालीस दिनों के लिए, एससीईआरटी दिल्ली, डी.एल.एड्. छात्रों के लिए *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम(एस ई पी) आयोजित करता है। कोविड महामारी की स्थिति के कारण, छात्र-अध्यापकों ने 2019-2021 सत्र में *ऑफ़लाइन* और ऑनलाइन *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम प्रशिक्षण को पूरा किया। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य डी.एल.एड. छात्र-अध्यापकों की प्रत्यक्षण के माध्यम से *ऑफ़लाइन* और ऑनलाइन *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम की उपयोगिता की जांच करना थाIशोध के संचालन के लिए वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग किया गया। जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान घुम्मनहेड़ा के सत्र 2019-2021 के द्वितीय वर्ष के 119 छात्र- अध्यापक अध्ययन के न्यादर्श थेI गूगल फॉर्म के रूप में विकसित प्रश्नावली के माध्यम से प्रदत्तों को एकत्र किया गया और इस प्रकार एकत्र किए गए प्रदत्तों का मात्रात्मक विश्लेषण किया गया। प्रश्नावली में, ऑनलाइन और *ऑफ़लाइन विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम की उपयोगिता पर छात्र - अध्यापकोंके प्रत्यक्षण का अध्ययन करने के लिए,12 प्रश्नों को शामिल किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषण से यह पाया गया कि , छात्र-अध्यापकों ने *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम के *ऑफ़लाइन* माध्यम को अत्यंत उपयोगी माना I उन्हें *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम के ऑनलाइन माध्यम के साथ अधिक तकनीकी समस्याएं आ रही थीं।*विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम के ऑफ़लाइन माध्यम की कथित उपयोगिता ऑनलाइन *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम की सीमाएं हैं और कोविड जैसी स्थितियों में ऑनलाइन *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम को तभी प्रभावी बनाया जा सकता है जब *ऑफ़लाइन विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम के सकारात्मक पहलुओं को ऑनलाइन *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम में एकीकृत किया जाए। अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ बताते हैं कि नीति निर्माता और हितधारक शिक्षक शिक्षा संस्थान के लिए एक ऑनलाइन *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम का प्रारूप तैयार कर सकते हैं। ऑनलाइन *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम की सफलता में सबसे बड़ी बाधा सूचना और संचार प्रौद्योगिकी पर संकाय के साथ-साथ छात्र- अध्यापकों की क्षमता संवर्धन कि कमी है । छात्र-अध्यापकों की ऑनलाइन शिक्षण आत्म-प्रभावकारिता का आकलन भी किया जा सकता है और उसके परिणामों के आधार पर ऑनलाइन *विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम को और प्रभावी बनाने के लिए छात्र-अध्यापकों को मार्गदर्शन दिया जा सकता है।

इंटरनेट क्रांति की बदौलत हाल के वर्षों में ऑफ़लाइन सीखने के विकल्प के रूप में ऑनलाइन शिक्षण एक लोकप्रिय तरीका बन गया है। ऑनलाइन शिक्षण के लिए इंटरनेटएक माध्यम बन गया है। आज तक, ऑनलाइन सीखने ने पारंपरिक ऑफ़लाइन, प्रशिक्षक-आधारित शिक्षा (डगलस एंड वैन डेर वायवर, 2004) के पूरक के रूप में बहुत आकर्षित किया है। विभिन्न प्रकार की सीखने की जरूरतों को पूरा करने के लिए, अधिकांश कॉलेजों ने अपने पाठ्यक्रम (आर्टिनो एंड स्टीफेंस, 2009) में ऑनलाइन शिक्षण को शामिल किया है।
ऑनलाइन शिक्षण विभिन्न छात्रों के लिए सीखने का माहौल प्रदान करने की एक बड़ी संभावना प्रदान करता है (कींगवे एंड किड, 2010)। पिटच और ली (2006) के अनुसार, ऑनलाइन शिक्षण विभिन्न प्रकार के निर्देशात्मक सहायक और संचार विधियां प्रदान करता है। यह इस तथ्य के कारण है कि ऑनलाइन शिक्षण कंप्यूटर आधारित शिक्षा, वेब-आधारित शिक्षा, आभासी कक्षाओं और डिजिटल सहयोग (उर्दन और वेगेन, 2000) जैसी विभिन्न तकनीकों का उपयोग करता है। इसके अलावा, छात्र अपनी भौगोलिक स्थिति, समय या स्थान की परवाह किए बिना ऑनलाइन सीखने में भाग ले सकते हैं (रिचर्डसन और स्वान, 2003)। कई उच्च शिक्षण संस्थान कोरोना वायरस के प्रकोप के दौरान ऑनलाइन कक्षाएं दे रहे हैं। ऑनलाइन शिक्षण के लिए सीखने की प्रक्रिया ऑफलाइन सीखने की प्रक्रिया से बहुत अलग है। ई-लर्निंग के सबसे महत्वपूर्ण लाभों में से एक यह है कि यहछात्रों की जरूरतों पर ध्यान केंद्रित करता है। विशेष रूप से, यह एक सीखने के माहौल को सुनिश्चित करता है जो समय और स्थान से स्वतंत्र है, शिक्षार्थियों को समय का उचित प्रबंधन करने में मदद करता है, और जानकारी तक पहुंच प्रदान करता है। कुल मिलाकर, ई-लर्निंग छात्रों की अपनी गति से एक सहयोगी और सहभागी वातावरण में सीखने की क्षमता को बढ़ावा देता है। इसके लाभों के बावजूद, ई-लर्निंग में कमियां हैं, जैसे व्यक्तिगत सम्बन्ध की पूर्ण अनुपस्थिति (यानी, व्यक्तियों के समाजीकरण की प्रक्रिया में बाधा), शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच अंतःक्रियाओं की कमी, और शिक्षार्थियों के बीच संवाद की कमी।
देशमुख (2012) ने एक वर्षीय स्नातकोत्तर शिक्षा के दूसरे सेमेस्टर में सेवा पूर्व अध्यापकों की मानसिकता औरप्रत्यक्षण को बेहतर ढंग से समझने के लिए संयुक्त अरब अमीरात (संयुक्त अरब अमीरात) में शिक्षक शिक्षा संस्थानों में "ऑनलाइन विज्ञान शिक्षणकार्यक्रम" के प्रभाव का अध्ययन किया। प्रतिभागियों को ऑनलाइन माध्यम का उपयोग करने के बाद पाठ्यक्रम सामग्री की बेहतर समझ थी।कार्यक्रम ऑनलाइन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम डिजाइन, सुगमकर्ता के कार्य, और प्रतिभागियों और प्रशिक्षक या सुगमकर्ता के बीच बातचीत के बारे में प्रतिभागियों की अपेक्षाओं को मापने में प्रभावी था।
हर साल एससीईआरटी दिल्ली-डाइटचालीस दिनों के लिए डी.ई.एल.एड छात्र-अध्यापकों के लिए विद्यालय अनुभव कार्यक्रम (एसईपी) आयोजित करता है। 2019-2021 के सत्र के छात्र-अध्यापकों को दोनों ऑफ़लाइन और ऑनलाइन विद्यालयअनुभव कार्यक्रम का अनुभव मिला । इस अध्ययन का उद्देश्य डी.ई.एल.एड के छात्र-अध्यापकों के माध्यम से ऑफ़लाइन

और ऑनलाइन एसईपी की उपयोगिता की जांच करना, दोनों की चुनौतियों का अध्ययन करना और सीखने की प्रक्रिया के दोनों तरीकों में चुनौतियों के समाधान का सुझाव देना था।
उपरोक्त के आलोक में यह अध्ययन निम्नलिखित शोध प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करता है।

1. डी.ई.एल.एड छात्र-अध्यापकों के लिए ऑफलाइन और ऑनलाइन सीखने की प्रक्रिया किस हद तक उपयोगी है?
2. क्या सीखने की प्रक्रिया में चुनौतियाँ हैं?
3. सीखने की प्रक्रिया की चुनौतियों के संभावित समाधान क्या हैं?

संबंधित साहित्य का अध्ययन:

कोविड महामारी ने शैक्षिक गतिविधियों सहित विभिन्न गतिविधियों को सफलतापूर्वक वैश्विक रूप से बंद कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप संस्थानों ने ऑनलाइन शिक्षण अपना लिया है। (एडोयिन और अन्य 2020)। हालांकिई-लर्निंग की तैयारी, डिजाइनिंग और प्रभावशीलता के बारे में प्रश्न अभी भी स्पष्ट रूप से नहीं समझे गए हैं, विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देश के लिए, जहां उपकरणों की उपयुक्तता और बैंडविड्थ उपलब्धता जैसी तकनीकी बाधाएं गंभीरचुनौती हैं(मुथुप्रसाद और अन्य 2021)। टैलेंट-रननेल और अन्य (2006) द्वारा किए गए अध्ययन से पता चलता है कि छात्रों को अपनी गति से आगे बढ़ना पसंद है और सीखने के परिणाम पारंपरिक पाठ्यक्रमों के समान ही दिखाई देते हैं।यद्यपि कंप्यूटर में पूर्व प्रशिक्षित छात्र ऑनलाइन कोर्स से ज्यादा संतुष्ट रहे । इसके अलावा, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में भाग लेने वालों की ऑनलाइन सीखने के अनुभवों के दौरान सहकारीभव से सीखने के चलते इस संबंध में सकारात्मक अनुभूति थी I समूह की सहकारी गतिविधियाँ उनके लिए आकर्षक और प्रेरक थीं (यंग एंड नॉरगार्ड, 2006)।

सॉन्ग और अन्य (2004) ने पाया कि अधिकांश शिक्षार्थी इस बात से सहमत थे कि ऑनलाइन तकनीकों के साथ पाठ्यक्रम डिजाइन, शिक्षार्थी प्रेरणा, समय प्रबंधन और सहजता ने ऑनलाइन सीखने के अनुभव की सफलता को प्रभावित किया। लेकिन प्रतिभागियों ने कुछ चुनौतियों का संकेत दिया जैसे कि तकनीकी समस्याएं, समुदाय भावना की कमी, समय की कमी और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के उद्देश्यों को समझने में कठिनाई।

मुइलेनबर्ग (2007) ने ऑनलाइन सीखने के लिए छात्र बाधाओं को निर्धारित किया। पाए गए आठ कारक थे (ए) प्रशासनिक मुद्दे, (बी) सामाजिक संपर्क, (सी) अकादमिक कौशल, (डी) तकनीकी कौशल, (ई) सीखने की प्रेरणा, (एफ) अध्ययन के लिए समय और समर्थन, (जी) लागत और पहुंच इंटरनेट के लिए, और (ज) तकनीकी समस्याएं।

जोहानसन (2000) ने पाया कि ऑफ़लाइन पाठ्यक्रम में छात्रों के पास प्रशिक्षक और समग्र पाठ्यक्रम गुणवत्ता के बारे में कुछ अधिक सकारात्मकप्रत्यक्षणथा, हालांकि सीखने के परिणामों के कई उपायों में दो पाठ्यक्रम प्रारूपों के बीच कोई अंतर नहीं था। एके, एस

(2021) ने पाया कि अधिकांश सेवा-पूर्व अध्यापकों ने अपने अध्यापक-छात्र जुड़ाव और उनके बीच बातचीत के लिए ऑफ़लाइन शिक्षण वातावरण को प्राथमिकता दी।

शोध प्रविधि:

शोध के संचालन के लिए वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग किया गया था। जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान घुम्मनहेड़ा के बैच 2019-2021 के द्वितीय वर्ष के 119 छात्र - अध्यापक अध्ययन के प्रतिदर्श थे। गूगल फॉर्म के रूप में विकसित प्रश्नावली के माध्यम से प्रदत्तों को एकत्र किया गया और इस प्रकार एकत्र किए गए प्रदत्तों का मात्रात्मक विश्लेषण किया गया था। ऑनलाइन और ऑफलाइन विद्यालय अनुभव कार्यक्रम की उपयोगिता की मात्रा पर छात्र- अध्यापकों की प्रत्यक्षण का अध्ययन के लिए प्रश्नावली में 12 मद शामिल किए गए। छात्र- अध्यापकों को तीन के पैमाने पर उपयोगिता की मात्रा का चयन करने के लिए कहा गया। प्रश्नावली की विभिन्न विषय विशेषज्ञों द्वारा विषयवस्तु अभिपुष्टि प्राप्त की गई। संख्या के रूप में प्राप्त प्रदत्तों को प्रतिशत में परिवर्तित किया गया।

परिणाम:

1. **शोधप्रश्न**

   छात्र- अध्यापकों के लिए ऑफलाइन और ऑनलाइन सीखने की प्रक्रिया किस हद तक उपयोगी है?

   नीचे दी गई मदों में से उपयोगिता की मात्राओं के विकल्प का चयन करने के लिए छात्र- अध्यापकों को कहा गया।

तालिका 1

ऑनलाइन और ऑफलाइन विद्यालय अनुभव कार्यक्रम की उपयोगिता

प्रतिदर्श = 119

उपयोगिता की मात्रा	**अधिक**		**मध्यम**		**अल्प**	
	ऑनलाइन	**ऑफलाइन**	**ऑनलाइन**	**ऑफलाइन**	**ऑनलाइन**	**ऑफलाइन**
ऑनलाइन सामग्री तक निरंतर पहुंच	28.56%	56.30%	41.17%	34.45%	30.25%	9.24%
अपनी गति से सीखना	19.32%	60.50%	51.26%	35.29%	29.41%	4.2%

वास्तविक छात्रों के साथ बातचीत	8.40%	78.15%	40.33%	17.64%	51.26%	4.2%
आईटी उपकरणों के साथ तकनीकी समस्याएं	41.17%	21.84%	40.33%	28.57%	18.48%	49.57%
***विद्यालय* अनुभव कार्यक्रमके दौरान सक्रियता**	15.96%	71.42%	48.73%	21.84%	35.29%	6.72%
विभिन्न विधियों को सीखना	22.68%	64.70%	47.89%	32.77%	29.41%	2.52%
शिक्षण अभ्यास कौशल में वृद्धि	13.44%	73.94%	55.46%	24.36%	31.09%	1.68%
सामाजिक क्षमता का विकास	10.08%	67.22%	24.36%	30.25%	65.54%	2.52%
आनंदपूर्ण सीखना	17.64%	75.63%	47.89%	21%	34.45%	3.36%
स्व-निर्देशित सीखना	21.84%	62.18%	52.10%	33.61%	26.05%	4.2%
साथियों के बीच समन्वय और साथ मिलकर काम करना	20.16%	70.58%	52.10%	25.21%	27.73%	4.2%
साथियों के बीच सहयोग	16.80%	71.42%	50.42%	25.21%	32.77%	3.36%

विश्लेषण और व्याख्या:

तालिका-2

ऑनलाइन और ऑफलाइन विद्यालय अनुभव कार्यक्रम की उपयोगिता

1	**ऑनलाइन सामग्री तक निरंतर पहुंच** ऑफलाइन और ऑनलाइन दोनों माध्यमों में, 56.3 प्रतिशत और 28.57 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों की ऑनलाइन सामग्री तक व्यापक पहुंच थी। इसका अर्थ है कि ऑनलाइन सामग्री की ऑफ़लाइन मा ध्यम में अधिकांश छात्र-अध्यापकों की काफी हद तक पहुँच थी। 41.17 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने कुछ हद तक ऑनलाइन सामग्री का उपयोग किया।
2	**अपनी गति से सीखना** 60.5 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑनलाइन की तुलना में ऑफलाइन में अधिक गति से सीखा, जबकि 51.26 प्रतिशत छात्रों ने ऑफलाइन की तुलना में मध्यम गति से सीखा।
3	**वास्तविक छात्रों के साथ बातचीत** 78.15 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया को वास्तविक छात्रों के साथ बातचीत के लिए अधिक उपयोगी पाया, जबकि 40.33 प्रतिशत छात्रों ने ऑनलाइन सीखने की प्रक्रिया को वास्तविक छात्रों के साथ बातचीत के लिए मध्यम उपयोगी पाया।
4	**आईटी उपकरणों के साथ तकनीकी समस्याएं** 41.17 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने पाया कि आईटी उपकरण और इंटरनेट के साथ तकनीकी समस्याएं ऑफलाइन की तुलना में ऑनलाइन सीखने की प्रक्रिया में अधिक थी , जबकि 49.57 प्रतिशत ने पाया कि आईटी उपकरण और इंटरनेट के साथ तकनीकी समस्याएं ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया में कम हैं। .
5	***विद्यालय* अनुभव कार्यक्रम के दौरान सक्रियता** 71.42 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने विद्यालय अनुभव कार्यक्रम की ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया में खुद को अधिक सक्रिय पाया, जबकि 48.73 छात्र-अध्यापकों ने ऑनलाइन स्कूल अनुभव कार्यक्रम में खुद को मध्यम सक्रिय पाया।
6	**विभिन्न विधियों को सीखना** 64.7 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया को ऑनलाइन की

	तुलना में विभिन्न तरीकों को सीखने के लिए अधिक उपयोगी पाया जबकि 47.89 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑनलाइन को मध्यम उपयोगी पाया।
7	**शिक्षण अभ्यास कौशल में वृद्धि** 73.94 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया को शिक्षण अभ्यास कौशल को बढ़ाने में अधिक उपयोगी पाया, जबकि 55.46 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने शिक्षण कौशल को बढ़ाने में ऑनलाइन को मध्यम उपयोगी पाया।
8	**सामाजिक क्षमता का विकास** 67.22 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने सामाजिक दक्षताओं के विकास में ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया को अधिक उपयोगी पाया।
9	**आनंदपूर्ण सीखना** 75.63 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया को अधिक आनंदपूर्ण पाया, जबकि 47.89 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑनलाइन सीखने की प्रक्रिया को मध्यम आनंददायक पाया।
10	**स्व-निर्देशित सीखना** 62.18 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया को स्व-निर्देशित सीखने के लिए अधिक उपयोगी पाया, जबकि 52.1 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑनलाइन को स्व-निर्देशित सीखने के लिए मध्यम उपयोगी पाया।
11	**साथियों के बीच समन्वय और साथ मिलकर काम करना** 70.58 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया को साथियों के बीच समन्वय और सहयोग में अधिक उपयोगी पाया, जबकि 52.1 प्रतिशत ने साथियों के बीच समन्वय और सहयोग के लिए ऑनलाइन को मध्यम उपयोगी पाया।
12	**साथियों के बीच सहयोग** 71.42 प्रतिशत छात्र-अध्यापकों ने ऑफ़लाइन सीखने की प्रक्रिया को साथियों के बीच सहयोग के लिए अधिक उपयोगी पाया, जबकि 50.42 प्रतिशत ने ऑनलाइन सीखने की प्रक्रिया को साथियों के बीच सहयोग के लिए मध्यम उपयोगी पाया।

2.शोधप्रश्न

क्या शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया में कोई चुनौतियाँ हैं?

प्रदत्तों के विश्लेषण से यह पाया गया कि छात्र-अध्यापकों ने विद्यालय अनुभव कार्यक्रम के ऑफ़लाइन माध्यम को ऑनलाइन सामग्री की पहुँच, अपनी गति से सीखने, विद्यालयों के

छात्रों के साथ बातचीत, कार्यक्रम में सक्रियता, विभिन्न विधियों को सीखना, शिक्षण कौशल में वृद्धि, सामाजिक दक्षता, आनंदमय स्व-निर्देशित शिक्षण, सहयोग समन्वय और सहयोग के संबंध में काफी हद तक उपयोगी माना। जबकि उन्हें ऑनलाइन में तकनीकी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि ये ऑनलाइन विद्यालय अनुभव कार्यक्रम की सीमाएं हैं और ऑनलाइन की चुनौतियां भी हैं। यदि कोविड महामारी की स्थिति बहुत लंबे समय तक बनी रहती है, तो यह छात्र-अध्यापकों की पढ़ाई में बाधा डालने वाली है। इसलिए, हमें स्थिति से निपटने के लिए समाधान खोजना होगा।

3 शोधप्रश्न

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के ऑनलाइन माध्यम की चुनौतियों के संभावित समाधान क्या है?

1. प्रभावी ऑनलाइन विद्यालय अनुभव कार्यक्रम के लिए एक संभावित समाधान यह है कि ऑफ़लाइन विद्यालय अनुभव कार्यक्रम के सकारात्मक पहलुओं को ऑनलाइन सीखने की प्रक्रिया में शामिल करें जैसे- अपनी गति से सीखने, छात्रों के साथ बातचीत, एसईपी के दौरान सक्रियता, विभिन्न तरीकों को सीखने, शिक्षण कौशल में वृद्धि, सामाजिक दक्षताओं और आनंदमय स्व-निर्देशित सीखना ।
2. छात्र-अध्यापकों को सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग से कम से कम एक पाठ योजना तैयार करने के लिए कहा जा सकता है और तैयारी के लिए उन्हें दो दिन का अंतराल प्रदान किया जा सकता है। इस तरह, वे पाठ योजना के लिए ऑनलाइन सामग्री तक पहुंचने और अपनी गति से सीखने और स्व-निर्देशित सीखने के अभ्यास को विकसित करने केलिए उपलब्ध होंगे। वे इस तरह से अपने समय का बेहतर प्रबंधन करने में सक्षम होंगे, जो ऑनलाइन पाठ्यक्रमों की सफलता में एक महत्वपूर्ण कारक है (मुइलेनबर्ग 2007 और सॉन्ग एट अल। 2004)।
3. उन्हें सूचना और संचार प्रौद्योगिकी पर प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। हमारा आशय आईसीटी का शिक्षण-अधिगम में उपयोग से है, नकि केवल इससे कि कंप्यूटर को कैसे संचालित किया जाए।
4. उनकी बातचीत, सक्रियता और सामाजिक कौशल को बढ़ाने के लिए, उन्हें विद्यालय अनुभव कार्यक्रम से पहले कार्यशालाएं दी जानी चाहिए, जैसे प्राथमिक अध्यापकों को ऑनलाइन प्लेटफॉर्म का उपयोग करने के लिए निरंतर व्यावसायिक विकास के तहत प्रशिक्षण दिया जा रहा है, जहां संबंधों के निर्माण पर जोर दिया जा रहा है।
5. प्रत्येक छात्र-अध्यापक को एक प्रभावी ऑनलाइन विद्यालय अनुभव कार्यक्रम संचालित करने की उनकी क्षमता में उनके विश्वास का आकलन करने के लिए एक ऑनलाइन शिक्षण आत्म-प्रभावकारिता पैमाने को पूरा करने के लिए कहा जा सकता है।

6. शिक्षण कौशल में सुधार के लिए कुछ सूक्ष्म शिक्षण कौशल को ऑनलाइन माध्यम में मापा और अभ्यास किया जा सकता है।
7. ऑनलाइन कक्षा को अधिक संवादात्मक और आनंदात्मक बनाने के लिए, छात्र-अध्यापकों को एनीमेशन, वीडियो, वृत्तचित्र, चित्रकला का एकीकरण आदि शामिल करने के लिए कहा जा सकता है।
8. छात्र-अध्यापकों को समन्वय और सहयोग पर आधारित कार्यशालाओं में भाग लेने के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए ।ऐसा करने से वे एक टीम के रूप में काम कर सकेंगे और अपनी समस्याओं का समाधान कर सकेंगे।
9. ऑनलाइन माध्यम की सफलता में मुख्य बाधा कनेक्टिविटी और इंटरनेट डेटा है। यदि संभव हो तो छात्र- निधि के माध्यम से छात्रों को डेटा शुल्क की प्रतिपूर्ति करने का प्रावधान किया जाना चाहिए और साथ ही यदि संभव हो तो विद्यालय अनुभव कार्यक्रम के छात्र-अध्यापकों को टैबलेट दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष:

विद्यालय अनुभव कार्यक्रम (एसईपी) डी.ई.एल.एड कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग है। छात्र-अध्यापक पिछले दो वर्षों से अपने ऑफलाइन और ऑनलाइन दोनों एसईपी कर रहे हैं। एसईपी के दौरान उन्हें पाठ योजनाओं को पूरा करना होता है और विद्यालय से संबंधित सभी गतिविधियों में संलग्न होना होता है। नतीजतन, ऑफ़लाइन और ऑनलाइन एसईपी की उपयोगिता के बारे में छात्र-अध्यापकों की प्रत्यक्षण की जांच करने का निर्णय लिया गया। परिणामों ने स्पष्ट रूप से दिखाया कि ऑनलाइन सामग्री तक पहुँचने, अपनी गति से सीखने, छात्रों के साथ बातचीत, एसईपी के दौरान सक्रियता, विभिन्न तरीकों को सीखने, शिक्षण कौशल में वृद्धि, सामाजिक दक्षताओं, आनंदमय स्व-निर्देशित सीखना,समन्वय और सहयोग के मामले में ऑनलाइन एसईपी की तुलना में ऑफ़लाइन एसईपी का प्रत्यक्षणछात्र - अध्यापकों के लिए अधिक प्रभावी था। । छात्र -अध्यापकों को ऑनलाइन माध्यम के साथ अधिक तकनीकी समस्याएं आ रही थीं । हम कह सकते हैं कि एसईपी के ऑफलाइन माध्यम की कथित उपयोगिता ऑनलाइन एसईपी की सीमाएं हैं और कोविड महामारी जैसी स्थितियों में ऑनलाइन एसईपी को तभी प्रभावी बनाया जा सकता है जब ऑफलाइन एसईपी के उपरोक्त सकारात्मक पहलुओं को ऑनलाइन एसईपी में एकीकृत किया जाए।

शैक्षिक निहितार्थ:

निष्कर्ष बताते हैं कि ऑनलाइन एसईपी को छात्र-अध्यापकों के लिए चुनौती माना गया और इसे कोविड जैसी स्थितियों के दौरान प्रभावी बनाने के लिए इसे ऑफ़लाइन एसईपी के सकारात्मक पहलुओं को शामिल करने के आलोक में सुधारना होगा। नीति निर्माता और हितधारकों द्वारा ऑनलाइन ऑनलाइन एसईपी का स्वरूप भी बनाया जाना चाहिए ।

ऑनलाइन एसईपी की सफलता में सबसे महत्वपूर्ण कदम सूचना और संचार प्रौद्योगिकी पर संकाय के साथ-साथ छात्र-अध्यापकों का क्षमता संवर्धन और डेटा का प्रावधान होगा । इसके अलावा, छात्रों की ऑनलाइन शिक्षण आत्म-प्रभावकारिता का आकलन किया जा सकता है और परिणामों के आधार पर छात्र-अध्यापकों को कोविड जैसी अन्य स्थितियों में प्रभावी ऑनलाइन एसईपी आयोजित करने के लिए मार्गदर्शन दिया जा सकता है।

डॉ.मीना सहरावत एवं डॉ.एम.एम.रॉय

सहायक आचार्य (पाठ्यचर्या और शिक्षण शास्त्र विभाग)
जिला मंडलीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान,घुम्मन हेड़ा ,नई दिल्ली

संदर्भ:

एडोयिन और अन्य (2020) कोविडमहामारी और ऑनलाइन शिक्षा: चुनौतियां और अवसर। इंटरएक्टिव लर्निंग एनवायरनमेंट, 1-13।

एके, ई., और अन्य (2021) आभासी कक्षा और आमने-सामने शिक्षण वातावरण में सेवापूर्व अध्यापकों के शिक्षण अनुभवों की तुलना। गुणात्मक पूछताछ के तुर्की ऑनलाइन जर्नल।

देशमुख, वी., फोरावी, एस., और जायसवाल, ए. (2011) मध्य पूर्व में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की तुलना में विज्ञान शिक्षा में ई-लर्निंग की भूमिका। ऑनलाइन सबमिशन।

डेविड ई. डगलस और ग्लेन वैन डेर वायवर (2004) लर्निंग डेटाबेस मैनेजमेंट सिस्टम के लिए ई-लर्निंग पाठ्यक्रम सामग्री की प्रभावशीलता: एक प्रायोगिक जांच, कंप्यूटर सूचना प्रणाली जर्नल, 44:4, 41-48,

कींगवे, जे., और किड, टी.टी. (2010) टुवर्ड्स बेस्ट प्रैक्टिसेज इन ऑनलाइन लर्निंग एंड टीचिंग इन हायर एजुकेशन। मेरलॉट जर्नल ऑफ़ ऑनलाइन लर्निंग एंड टीचिंग, 6 (2)।

केरामिदास, सी जी (2012)। क्या स्नातक छात्र ऑनलाइन सीखने के लिए तैयार हैं? किसी पाठ्यक्रम के ऑनलाइन और आमने-सामने के अनुभागों की तुलना। ग्रामीण विशेष शिक्षा तिमाही, 31(4), 25-32।

ली, एस. डब्ल्यू.-वाई., और त्साई, सी.-सी. (2010) इंटरनेट-आधारित शिक्षा और पारंपरिक शिक्षा के संदर्भ में सहयोग, स्व-विनियमित सीखने और जानकारी की मांग के बारे में छात्रों की धारणाएं। मानव व्यवहार में कंप्यूटर।

मुइलेनबर्ग, एल। वाई।, और बर्ज, जेड एल। (2005) ऑनलाइन सीखने के लिए छात्र बाधाएं: एक कारक विश्लेषणात्मक अध्ययन। दूरस्थ शिक्षा, 26(1), 29-48.
पिचच, के.ए. और ली, वाई-के। (2006) ई-लर्निंग उपयोग पर सिस्टम विशेषताओं का प्रभाव। कंप्यूटर और शिक्षा, 47
रिचर्डसन। जे.सी., और स्वान, के. (2003) छात्रों के कथित सीखने और संतुष्टि के संबंध में ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में सामाजिक उपस्थिति की जांच करना। जर्नल ऑफ़ एसिंक्रोनस लर्निंग नेटवर्क, 7(1).

सॉन्ग, एल., सिंगलटन, ई.एस., हिल, जे.आर., और कोह, एम.एच. (2004) ऑनलाइन सीखने में सुधार: उपयोगी और चुनौतीपूर्ण विशेषताओं की छात्र धारणाएं। इंटरनेट और उच्च शिक्षा, 7(1), 59-70.

टी, एम., एस, ए., आदित्य, के.एस., और झा, जी.के. (2020) कोविड-19 महामारी के दौरान भारत में ऑनलाइन शिक्षा के लिए छात्रों की धारणा और प्राथमिकता। एसएसआरएन इलेक्ट्रॉनिक जर्नल।

टैलेंट-रननेल, एम.के., थॉमस, जे.ए., लैन, डब्ल्यू.वाई., कूपर, एस., अहर्न, टी.सी., शॉ, एस.एम., और लियू, एक्स. (2006) ऑनलाइन शिक्षण पाठ्यक्रम: शोध की समीक्षा। शैक्षिक अनुसंधान की समीक्षा, 76(1), 93-135.

उरदन, टी.ए., और वेगेन, सी.सी. (2000) कॉर्पोरेट ई-लर्निंग: एक्सप्लोरिंग ए न्यू फ्रंटियर। डब्ल्यूआर हैम्ब्रेच्ट कंपनी

यंग, ए, और नॉरगार्ड, सी। (2006) छात्रों के दृष्टिकोण से ऑनलाइन पाठ्यक्रमों की गुणवत्ता का आकलन करना। इंटरनेट और उच्च शिक्षा, 9, 107-115।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 : मुद्दे एवं चुनौतियाँ

डॉ. अमित कुमार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 हमारे राष्ट्र के लिए अत्यंत समीचीन प्रतीत हो रही है। यह राष्ट्रीय पुनर्निर्माण व वैश्विक स्तर पर भारतीय ज्ञानपरंपरा को एक बार पुनः स्थापित करने में सक्षम व दूरदर्शी सिद्ध होगी।किसी भी देश की शिक्षा नीति का चित्र यह दर्शाता है कि वहाँ की सरकार की प्राथमिकता में शिक्षा की जगह क्या है और वह इससे कितना सरोकार रखती है।विगत कुछ वर्षों में दुनिया भर के रैंकिंग में भारत के पिछड़ने के बाद यह उम्मीद की जा रही थी कि सरकार और हमारी समूची व्यवस्था इस दिशा में सुधार के लिए ठोस पहल करेगी। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता वाली केंद्रीय कैबिनेट ने **'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020'**को मंजूरी दी है, जिसे बड़ी आशा भरी नजरों से देखा जा रहा है।नई शिक्षा नीति 1986 के लगभग 34 साल बाद आई यह शिक्षा नीति स्वतंत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति है। इससे पूर्व वर्ष 1968 ववर्ष 1986 में दोशिक्षा नीतियों को हमारी तत्कालीन सरकारों द्वारा मंजूरी दी जा चुकी है। इसरो के पूर्व प्रमुख श्री के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में वर्ष 2017 में गठित एकसमिति ने इस शिक्षा नीति का पूरा मसौदा तैयार किया है। इस समिति द्वारा तैयार मसौदे को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली केंद्रीय कैबिनेट ने मंजूरी देकर हमारे देश की समुचित शिक्षा व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन की राह को आसान कर दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आधार पर केंद्रीय कैबिनेट ने मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया है। इसका लक्ष्य शिक्षा के मूल उद्देश्यों की तरफ ध्यान आकर्षित कराना है।शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में पूर्व शिक्षा नीतियों की तुलना में कौन-कौन से विशेष प्रावधान किए गए हैं ,यह जानना आवश्यक है |

स्कूली शिक्षा में हुई अनुशंसाओं पर दृष्टि डालें तो,राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में 10+2 की प्रणाली को पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया है। इसके स्थान पर 5+3+3+4 की एक नई प्रणाली की संरचना प्रस्तुत की गई है। भविष्य में स्कूली शिक्षा इसी आधार पर प्रदान की जाएगी।यह क्रमशः 3से 8, 8 से11, 11से 14और 14 से 18 वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए है। फाउंडेशन कोर्स के अंतर्गत प्रथम के 3 वर्ष बच्चे आंगनबाड़ी विद्यालयों में प्री-स्कूलिंगशिक्षा ग्रहण करेंगे। फिर अगले 2 वर्ष

कक्षा 1 व 2 में अध्ययन करेंगे। इन 5 वर्षों की पढ़ाई के लिए एक नया पाठ्यक्रम तैयार होगा। दितीय स्टेज अर्थात प्रीपेरेटरी स्टेज के अंतर्गत कक्षा 3 से कक्षा 5 की पढ़ाई होगी। इस दौरान बच्चों को विभिन्न प्रयोगों के जरिए विज्ञान, गणितएवं कला जैसे विषयों की पढ़ाई कराई जाएगी।

मिडिल स्टेज में कक्षा 6 से 8 की पढ़ाई होगी | इन कक्षाओं में विषय आधारित पढ़ाई होगी। कक्षा 6 से ही व्यावसायिक और कौशल विकास के पाठ्यक्रम शुरू किए जाएंगे। स्थानीय स्तर परइंटर्नशिप भी कराई जाएगी। व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास पर जोर देने का मतलब बच्चों को स्कूली शिक्षा के दौरान ही रोजगार के योग्य बनाना है। सेकेंडरी स्टेज में कक्षा 9 से 12 की पढ़ाई दो चरणों में होगी, जिसमें विषयों का गहन अध्ययन कराया जाएगा। इसमें विषयों को चुनने की आजादी भी होगी। पहले 10+2 व्यवस्था के तहत प्री-स्कूलिंग की समुचित व्यवस्था नहीं थी। कक्षा 1 से 10 तक सामान्य पढ़ाई होती

थी और कक्षा 11 से विषय चुनने की आजादी थी। पहले 6 साल में पढ़ाई शुरू होती थी लेकिन अब नई नीति में 3 साल में ही बच्चे की पढ़ाई शुरू हो जाएगी। 10वीं व 12वीं की बोर्ड परीक्षाओं में बड़े बदलाव किए जाएंगे। नई नीति के तहत कक्षा तीन,पांच व आठवीं में भी परीक्षाएं होंगी, जबकि 10वीं व 12वीं की बोर्ड परीक्षाएं बदले स्वरूप में होंगी।वर्ष में दो बार परीक्षाएं कराई जाएंगी, एक में ऑब्जेक्टिव तथा दूसरे में सब्जेक्टिव फॉर्मेट में परीक्षा ली जाएगी। बोर्ड परीक्षा में मुख्य जोर ज्ञान के परीक्षण पर होगा, जिससे छात्रों में रटने की प्रवृत्ति समाप्त हो। इस दृष्टिकोण से सरकार की यह सोच अभिनंदन योग्य है।

नई शिक्षा नीति में पांचवी तक और जहां तक संभव हो सके आठवीं तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा ही होगी। मुख्य तौर पर कहें तो बच्चे के द्वारा बोली जाने वाली भाषा और शिक्षा के माध्यम के बीच पुल का काम करने के लिए स्थानीय या मातृभाषा में शिक्षा देने का प्रावधान किया गया है। विदेशी भाषाओं की पढ़ाई सेकेंडरी स्तर से होगी अर्थात नवीं कक्षा से बच्चे विदेशी भाषा ले सकेंगे। विद्यार्थियों को स्कूल के सभी स्तरों व उच्च शिक्षा में संस्कृत को एक विकल्प के रूप में चुनने का मौका दिया जाएगा। त्रिभाषा फार्मूला के तहत राज्य, क्षेत्र और छात्र की पसंद को प्राथमिकता दी जाएगी, जिनमें कम से कम दोभारतीय भाषाएं होंगी।उदाहरण के लिए मुंबई में कोई छात्र अगर मराठी और अंग्रेजी सीख रहा है, तो उसे तीसरी कोई भारतीय भाषापढ़नी होगी। इसमें किसी भी विद्यार्थी पर कोई भी भाषा थोपी नहीं जाएगी। भारत की अन्य पारंपरिक भाषाएं और साहित्य भी विकल्प के रूप में उपलब्ध होंगे।

उच्च शिक्षा के लिए हुई अनुशंसाओं पर नजर डालें तो, उच्च शिक्षा में पहली बार मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टम लागू किया गया है। आप इसे ऐसे समझ सकते हैं कि अगर कोई छात्र बीच में ही कोर्स छोड़ देना चाहता है तो, उसके साल बर्बाद नहीं होंगे। अगर 4 साल का अंडरग्रैजुएट कोर्स है, तो 1 साल के बाद कोर्स छोड़ने पर सर्टिफिकेट,2 साल के बाद डिप्लोमा,3 साल पर कोई इंटरमीडिएट सर्टिफिकेट और 4 साल बाद पूर्ण डिग्री मिलेगी। इससे उन छात्रों को बहुत लाभ होगा, जिनकी पढ़ाई बीच में ही किसी वजह से छूट जाती थी। अगर वह कुछ साल बाद किसी दूसरे कोर्स में दाखिला लेते हैं तो पहले वाले कोर्स का सर्टिफिकेट या डिप्लोमा को इस नए कोर्स में अहमियत दी जाएगी। इसे क्रेडिट ट्रांसफर की संज्ञा दी जा सकती है। विभिन्न शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप में सुरक्षित रखने के लिए एक एकेडमिक बैंक आफ क्रेडिट बनाया जाएगा, जिससे अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके। नई शिक्षा नीति के मुताबिक यदि कोई छात्र इंजीनियरिंग कोर्स को दोवर्ष में ही छोड़ देता है, तो उसे डिप्लोमा प्रदान किया जाएगा। इससे इंजीनियरिंग छात्रों को बड़ी राहत मिलेगी।पांच वर्ष का संयुक्त ग्रैज़्एट मास्टर कोर्स लाया जाएगा। नई शिक्षा नीति में छात्रों को यह आजादी भी होगी कि अगर वे कोई कोर्स बीच में छोड़कर दूसरे कोर्स में दाखिला लेना चाहें तो वह पहले कोर्स से खास एक निश्चित अवधि के लिए ब्रेक ले सकते हैं और दूसरा कोर्स ज्वाइन कर सकते हैं।अब तीन साल का डिग्री कोर्स उन छात्रों के लिए होगा, जिन्हें हायर एजुकेशन नहीं लेना है और शोध में नहीं जाना है।वहीं शोध में जाने वाले छात्रों को चारसाल की डिग्री करनी होगी।चार वर्षका डिग्री कोर्स करने वाले छात्र एक साल में एम.ए.कर सकेंगे। इसके बाद सीधे वह पी-एच.डी. कर सकेंगे इसके लिए अब छात्रों को एम. फिल्. करने की जरूरत नहीं होगी।

उच्च शिक्षा में वर्ष 2035 तक 50 प्रतिशतसकल नामांकन अनुपात पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया है। उच्च शिक्षा में अखिल भारतीय सर्वेक्षण वर्ष 2018-19 के मुताबिक यह अनुपात महज26.3 प्रतिशत

है।सकल नामांकन अनुपातकिसी शिक्षा के स्तर पर कुल योग्यआबादीकी वह संख्या है, जो शिक्षण संस्थानों में दाखिला ले चुके हैं।उदाहरण के लिए अगर उच्च शिक्षा में दाखिला लेने लायक आयु वर्ग के कुल छात्रों की आबादी 100 है, लेकिन केवल 60 छात्रों ने ही दाखिला लिया है, तो यह अनुपात60 प्रतिशत कहलाएगा। यही कारण है कि उच्च शिक्षा में इस अनुपात को बढ़ाने के लिए 3.5करोड़ नई सीटें जोड़ने की बात कही गई है। यह नीति वर्ष 2030 तक या उसके बाद हर जिले में कम से कम एक बड़ी बहु-विषयक संस्था बनाने पर ध्यान केंद्रित करने की बात करती है। इसके तहत तकनीकी संस्थानों में भी कला व मानविकी के विषय पढ़ाए जाएंगे।

आईआईटी समेत देशभर के सभी तकनीकी संस्थान होलिस्टिक अप्रोच अर्थात समग्र दृष्टिकोण अपनाएंगे। विज्ञान, कला या वाणिज्य जैसा कोई विभाजन नहीं होगा। छात्र अपनी पसंद का कोई भी विषय चुन सकेंगे। इसे बहुत बड़ा बदलाव माना जा रहा है। मेडिकल और लॉ को छोड़कर उच्च शिक्षा के लिए हायर एजुकेशन कमीशन आफ इंडिया बनाया जाएगा, जो यूजीसी की जगह लेगा। आईआईटी और आईआईएम के स्तर के बहु-विषयक शिक्षा व शोध विश्वविद्यालय बनाए जाएंगे ।यह संस्थान विश्व स्तर के होंगे। नई शिक्षा नीति में देशभर के सभी संस्थानों में दाखिले के लिए एक संयुक्त प्रवेश परीक्षा आयोजित कराए जाने की बात भी कही गई है।इसपरीक्षा का दायित्व नेशनल टेस्टिंग एजेंसी के पास होगा। हालांकि यह ऐच्छिक होगा और सभी छात्रों के लिए इस परीक्षा में बैठना अनिवार्य नहीं होगा।

अब अन्य बड़ी अनुशंसाओं पर नजर डालते हैं उच्च शिक्षा में यूजीसी, एआईसीटीई व एनसीटीई की जगह अब एक ही नियामक बनेगा, जो संस्थानों को निर्देश देगा। कालेजों को स्वायत्तता देकर 15 वर्षों में विश्वविद्यालयों से संबद्धता की प्रक्रिया को पूरी तरह से खत्म कर दिए जाने का विचार है, उन्हें धीरे-धीरे स्वायत्त बनाया जाएगा। यह कालेज आगे चलकर डिग्री देने वाले स्वायत्त कॉलेज बनेंगे या किसी विश्वविद्यालय से जुड़े कॉलेज बने रहेंगे। शिक्षा को अंतरराष्ट्रीय स्वरूप देने के लिए टॉप ग्लोबल रैंकिंग रखने वाले विश्वविद्यालयों को भारत में अपना ब्रांच खोलने की अनुमति दी जाएगी।

विशेषज्ञों का मानना है कि इससे भारत के विद्यार्थी विश्व के अच्छे संस्थानों और विश्वविद्यालयों में प्रवेश ले सकेंगे, उन्हें विदेश नहीं जाना पड़ेगा। शोध करने के लिए और पूरी उच्च शिक्षा में मजबूत अनुसंधान संस्कृति व अनुसंधान क्षमता को बढ़ावा देने के लिए एक शीर्ष निकाय के रूप में नेशनल रिसर्च फाउंडेशन अर्थात एनआरएफ की स्थापना की जाएगी। इसका उद्देश्य विश्वविद्यालयों के जरिए शोध की संस्कृति को सक्षम बनाना है।यह फाउंडेशन स्वतंत्र रूप से सरकार द्वारा एक बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा शासित किया जाएगा।

ई-पाठ्यक्रम क्षेत्रीय भाषाओं में विकसित किए जाएंगे। वर्चुअल लैब विकसित की जाएगी तथा एक राष्ट्रीय शैक्षिक तकनीकी फोरम बनाया जा रहा है। हाल ही में वैश्विक महामारी के कारण ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सिफारिशों के एक व्यापक क्षेत्र को कवर किया गया है, जहां भी पारंपरिक और व्यक्तिगत शिक्षा प्राप्त करने का साधन उपलब्ध नहीं है वहां गुणवत्तापूर्ण वैकल्पिक साधनों की तैयारियों को सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा डिजिटल अवसंरचना, डिजिटल विषय वस्तु और क्षमता निर्माण के उद्देश्य से एक समर्पित इकाई बनाई जाएगी। सभी भारतीय भाषाओं के संरक्षण, विकास और उन्हें जीवंत बनाने के लिए नई शिक्षा नीति में पाली, फारसी और प्राकृत भाषाओं के लिए एक इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रेटेशन की स्थापना करने की बात कही गई है। उच्च शिक्षण संस्थानों में संस्कृत और सभी भाषा विभागों को मजबूत करने और अधिक से अधिक उच्च शिक्षण संस्थानों के कार्यक्रमों में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा या स्थानीय भाषा का उपयोग करने की सिफारिश की गई है। शिक्षा में तकनीक के प्रयोग पर जोर दिया गया है, इनमें ऑनलाइन शिक्षा का क्षेत्रीय भाषाओं में कंटेंट तैयार करना, वर्चुअल लैब, डिजिटल लाइब्रेरी, स्कूलों, शिक्षकों और छात्रों को डिजिटल संसाधनों से युक्त कराने जैसी योजनाएं शामिल हैं। शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय प्रोफेशनल मानक राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा वर्ष

2022 तक विकसित किया जाएगा। इसके लिए एनसीईआरटी, एससीईआरटी के शिक्षकों एवं सभी स्तरों के विशेषज्ञ संगठनों के साथ परामर्श किया जाएगा। नेशनल मेंटरिंग प्लान के जरिए शिक्षकों का उन्नयन किया जाएगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि नई शिक्षा नीति को लागू करने में क्या चुनौतियां आएंगी | दरअसल नई शिक्षा नीति कई संभावनाओं के साथ कई मुद्दे और चुनौतियां भी साथ लाई हैं ।इस नीति के मुताबिक सरकार शिक्षा पर जीडीपी का 6 फ़ीसदी खर्च करेगी हालांकि वर्ष 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी यही बात कही गई थी, लेकिन तस्वीर बेहद अलग है। दरअसल 2017-18 में भारत सरकार ने जीडीपी का महज 2.7 फ़ीसदी ही शिक्षा पर खर्च किया था। भारत सरकार स्वतः बताती है कि 2017-18 में हमने शोध कार्यों पर जीडीपी का महज 0.7 फ़ीसदी ही खर्च किया है। लिहाजा, खर्च के मामले में भारत सरकार इतनी बड़ी उछाल कैसे लाएगी। इस पर स्थिति साफ नहीं हो पाई है। उधर सकल नामांकन अनुपात पहुंचाने का लक्ष्य 26.3 फ़ीसदी से बढ़ाकर 50 फीसदी भी रखा गया है। आर्थिक सर्वे 2017-18 के मुताबिक भारत में प्रति एक लाख आबादी पर शोध करने वालों की संख्या महज 15 है। सरकार ने लक्ष्य प्राप्ति के लिए 3.5 करोड़ नई सीटें जोड़ने की बात कही है, लेकिन फिर वही सवाल है कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार के पास क्या योजना है और सरकार इस लक्ष्य को कैसे हासिल करेगी। उच्च शिक्षा में यूजीसी, एआईसीटीई एनसीटीई की जगह एक ही नियामक पर भी विवाद है, जानकारों का मानना है कि इस नियामक की कमान केंद्र सरकार के हाथ में होगी इसलिए शिक्षा का केंद्रीकरण होगा, जिससे संस्थानों की स्वायत्तता की राह में बड़ी रुकावट पैदा होगी। इस स्थिति में केंद्र सरकार, राज्य सरकार की समस्याओं की अनदेखी कर सकती है।

बच्चों को मातृभाषा या स्थानीय भाषा में पढ़ाने को लेकर भी कई तरह के सवाल वअनिश्चितताएं हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली जैसे केंद्र शासित प्रदेश में देश के अलग-अलग राज्यों से आए लोग रहते हैं | ऐसे में एक ही स्कूल में अलग-अलग मातृभाषा को जानने वाले बच्चे होंगे, अतः सवाल यह है कि उन बच्चों का माध्यम क्या होगा। एक बड़ा सवाल अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों को लेकर भी है कि क्या ऐसे स्कूल स्थानीय भाषा वाली अवधारणा को अपनाने के लिए तैयार होंगे। फिर प्राइमरी में ही एक राज्य से दूसरे राज्य में शिफ्ट करने वाले बच्चे का माध्यम न बदले, इसके लिए सरकार क्या उपाय करेगी। यह कुछ ऐसे बिंदु हैं, जिन पर अभी काफी असमंजस की स्थिति बनी हुई है। अब सवाल यह है कि आगे की राह क्या हो। इसमें कोई दो राय नहीं है कि इस नीति को अमलीजामा पहनाने में सरकार के समक्ष तमाम अड़चनें हैं। सभी घोषणाओं को जमीन पर उतारने के लिए बुनियादी अवसंरचना की जरूरत होगी। इससे भी अधिक राजनीतिक इच्छाशक्ति को प्रबल करना होगा। हालांकि वर्तमान में श्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार में इच्छाशक्ति तो काफी अच्छी प्रतीत होती है। नीतियों का क्रियान्वयन कितना कठिन है इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अभी शिक्षा के लिए आवंटित पूरे धन का इस्तेमाल तक नहीं हो पाता है। यह स्थिति तब है जब हमारी सरकारें अन्य देशों के सापेक्ष कम खर्च करती हैं। पिछले 5 वर्षों में 4 वर्षऐसे गुजरे हैं, जब शिक्षा के लिए जारी किए गए बजट को पूरा खर्च नहीं किया जा सका है। वर्ष 2014-15में आवंटित बजट की 17 फ़ीसदी रकम खर्च नहीं की जा सकी, जो पिछले एक दशक में सर्वाधिक है। शिक्षा में सुधार के लिए यह सबसे जरूरी है कि शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता को कायम किया जाए। सरकार को अपने शीर्ष रैंक वाले 200 विश्वविद्यालयों को पूर्ण शैक्षणिक, प्रशासनिक और वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करना चाहिए, जिससे वे वैश्विक नवाचार को बढ़ावा देने के लिए अद्यतन कोर्स में विविधता ला सकें।

उल्लेखनीय है कि भारत अनुसंधान और नवाचार पर काफी कम खर्च करता आ रहा है। वर्ष 2017-18 में हमारे देश में शोध कार्य पर जीडीपी का महज 0.7 फ़ीसदी ही खर्च किया गया है, जबकि इसी दौरान

पड़ोसी देश चीन ने 2.1,अमेरिका ने 2.8 और इजरायल ने 4.3 फ़ीसदीशोध कार्यों पर खर्च किया है। आज जब नई शिक्षा नीति भी नेशनल रिसर्च फाउंडेशन पर मुखर है, तब जरूरी है कि इसे फास्ट ट्रैक आधार पर स्थापित किया जाए। अनुसंधान और विकास के जरिए राष्ट्र पुनर्निर्माण के इस दूरदर्शी कदम के साथ भारत सरकार को एक प्रतिस्पर्धी आधार पर विश्वविद्यालय प्रयोगशालाओं व अनुसंधान संस्थानों में प्रतिवर्ष अतिरिक्त बजट आवंटित करना चाहिए। इसके अलावा उच्च शिक्षा में वैश्विक पटल पर खुद को साबित करने के लिए हमें बुनियादी अवसंरचना को बेहतर करने पर गंभीर होना पड़ेगा, जिससे देश के शीर्ष विश्वविद्यालय ट्रेंड पी-एच.डी. पैदा कर सकें। भारत के टॉप विश्वविद्यालयों को हर वर्ष 50000 से अधिक पी-एच. डी पैदा करने की जरुरत है। तभी हमारे नवाचार व विशेषज्ञता प्रतिभा में सुधार हो सकेगा। नई शिक्षा नीति पर्यावरण, अनुसंधान और विकास, खेल, संस्कृति व चिकित्सा सुविधाओं पर भी जोर दे रही है। वर्तमान समय में भारतीय विश्वविद्यालयों में सभी जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे की कमी है। इसके लिए जरूरी है कि भारत सरकार को विश्वविद्यालयों को 20 से 30 वर्ष के लिए दीर्घकालिक ऋण देने जैसी योजनाएं बनाने पर विचार करना चाहिए, जिससे वे अवसंरचना को बेहतर कर सकें| जहां सरकार एक ओर सकल नामांकन अनुपात में वृद्धि चाहती है वहीं, शिक्षण संस्थानों में पेशेवर शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भी मुखर दिख रही है। इन दोनों ही लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को चाहिए कि वे संस्थानों को समान रूप से विशेष पैकेज दें, जिससे अगले 10 वर्ष में राष्ट्रीय औसत के बराबर इन संस्थानों में दाखिला सुनिश्चित किया जा सके।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को सरकार किस प्रकार लागू करेगी यह तो भविष्य के गर्भ में है, लेकिन सरकार से यही उम्मीद की जा रही है कि वह राष्ट्र पुनर्निर्माण के इस कार्य में कोई कमी नहीं छोड़ेगी। केवल कागजी खानापूर्ति के बजाय सही अर्थों में नीतियों को लागू करने की कोशिश करेगी, अगर ऐसा हो पाता है तो हम शिक्षा के क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन की बात कर सकते हैं और यदि हमारे देश में अक्षरशः इस शिक्षा नीति के सुझावों का क्रियान्वयन किया गया तो उम्मीद की जा सकती है कि शीघ्र ही हम एक बार पुनः वैश्विक स्तर पर अपने ज्ञान की पताका लहराने में सफल होंगे और विश्व गुरुका गौरव प्राप्त कर सकेंगे।

डॉ. अमित कुमार
सहायक प्रोफेसर ,शिक्षाशास्त्र विभाग
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज (इलाहाबाद वि.वि.), प्रयागराज,उ.प्र.

सन्दर्भ-सूची

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- ठाकुर, जी.के. व राय, एम.के. (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : एक सिंहावलोकन, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा।
- धोत्रे, संजय (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति, योजना, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- यर्वडेकर, विद्या व मिश्रा, शोभा (2020) उच्च शिक्षा का अंतरराष्ट्रीयकरण,योजना, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- The Hindu (July 2020), A Long Road : On National Education Policy, New Delhi : THG Publishing Pvt. Ltd.

- The Indian Express (July 2020), New Policy, Old Test, New Delhi : The Indian Express (P) Ltd.
- m.youtube.com/drishti
- www.mhrd.gov.in/contents

ऑनलाइन माध्यम से अधिगम;चुनौतियाँ और समाधान

डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार

सारांश-कई बार कुछ परिस्थितियाँ ,जहाँ एक ओर अपने साथ अनेक चुनौतियाँ और परेशानियाँ लेकर आती हैं,वहीं दूसरी ओर सुधार के अवसर भी उपलब्ध करवाती हैं|वैश्विक महामारी कोरोना को भी इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए| इस संकट ने शिक्षा के लिए भी यही कार्य किया है | आज सुदूर गाँव में बैठा विद्यार्थी भी ऑनलाइन माध्यम से अधिगम कर रहा है| अब यहाँ प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने से कुछ चुनौतियाँ भी हैं? साथ ही इन चुनौतियों के निवारण हेतु क्या-क्या उपाय अपनाए जा सकते हैं। इसके अलावा इन चुनौतियों के निस्तारण के विषय में विद्यार्थी स्वयं क्या सोचते हैं? प्रस्तुत शोधपत्र में इन सभी प्रश्नों के उत्तर खोजने के प्रयास किए गए हैं।

कोरोना संकट काल ने सम्पूर्ण विश्व की विकास गति को लगभग रोक सा ही दिया । इस महामारी से जहाँ एक ओर लाखों लोग असमय काल के गाल में समा गये,वहीं दूसरीओर असीमित जान और माल की हानि हुई है| इस वैश्विक महामारी ने सम्पूर्ण विश्व को अपने पर्यावरण के दोहन करने पर विचार करने पर मजबूर तो किया ही है, साथ ही सभी देशों को अपनी स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं को सुदृढ़ करने पर विचार करने हेतु भी बाध्य किया है । यदि इस नुकसान का गंभीरता से आकलन करें तो हम पाएंगे कि इस वैश्विक महामारी ने जिन दो क्षेत्रों के लिए सबसे ज्यादा चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं,वे क्षेत्र हैं- स्वास्थ्य और शिक्षा | यहाँ अगर बात करें शिक्षा के क्षेत्र की, तो भारत में मार्च 2020 के पहले सप्ताह से ही, सभी औपचारिक शिक्षण संस्थान बंद कर दिए गए | यद्यपि महामारी पर किसी का कोई बस नहीं होता है,किन्तु यह समय विद्यालयों और महाविद्यालयों में परीक्षा का काल होता है | विद्यालयों/महाविद्यालयों के बंद हो जाने के कारण शिक्षाव्यवस्था के सुचारु सञ्चालन में बाधा उत्पन्न हो गई । तत्काल में उत्पन्न परिस्थिति में जहाँ कुछ राज्यों ने अपने यहाँ के विद्यार्थियों को प्रदत्त कार्यों या असाइमेंट के आधार पर अगली कक्षा में प्रोन्नत कर दिया गया ,वहीं कुछ राज्यों ने अपने यहाँ की परीक्षाओं को आगे करने के लिए निर्देश के साथ, विद्यार्थियों को 'कक्षा प्रोन्नति' प्रदान कर दी| कालांतर में कोरोना संकट के बढ़ते स्वरूप को देखते हुए विभिन्न राज्यों ने अपने यहाँ ऑनलाइन कक्षा सञ्चालन करने के निर्देश दिए । इन्हीं निर्देशों के अनुपालन में,प्राइवेट संस्थानों ने भी अपने यहाँ ऑनलाइन कक्षाएं संचालित करना प्रारम्भ कर दिया | किन्तु क्या ये ऑनलाइन कक्षाएं वास्तव में विद्यार्थियों के अधिगम में सहायक हैं? क्या ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने से विद्यार्थियों को शारीरिक या मानसिक समस्याएं आईं ? इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढना अत्यंत आवश्यक है |

यह कार्य तब और प्रासंगिक बन जाता हैजबकि भारत के अलग-अलग स्कूलों में कुल 24 करोड़ 71 लाख 27 हजार 331विद्यार्थी पढ़ते हों, इनमें भी 8 करोड़ 73 लाख 82 हजार

784 विद्यार्थी प्राइवेट संस्थानों में पढ़ते हैं | इतनी बड़ी जनसँख्या विद्यालयों में पढ़ती है | कोरोना काल में सभी विद्यार्थियों ने ऑनलाइन माध्यम से अधिगम किया । इसके महत्व को देखते हुए शोधकर्ता ने अपने शोध के लिए ऑनलाइन कक्षाओं के द्वारा विद्यार्थियों को होने वाली समस्या और उनके समाधान को अपने शोध के क्षेत्र के रूप में चुना है। इसके लिए शोधकर्ता ने भारत के अलग-अलग छः राज्यों(महाराष्ट्र, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड और दिल्ली)में कक्षा पहली से कक्षा आठवीं तक के विद्यार्थियों को, शोध के न्यादर्श (सैम्पल)के रूप में चयन किया । उनसे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर इन विद्यार्थियों को हो रही शारीरिक और मानसिक समस्याओं और इनके समाधान के लिए क्या-क्या उपाय किये जा सकते हैं,को जानने का प्रयास किया|इस सर्वेक्षण में मुख्य रूप से पांच बातों से संबंधित सूचनाओं का संकलन किया गया | पहला यह कि ये विद्यार्थी एक दिन में कितनी ऑनलाइन कक्षाओं में सहभाग लेते हैं? दूसरा इन कक्षाओं की समयावधि कितनी होती है? तीसरा ऑनलाइन कक्षाओं से उन्हें क्या-क्या शारीरिक समस्याएं होती हैं?चौथा ऑनलाइन कक्षाओं से उन्हें क्या-क्या मानसिक समस्याएं उत्पन्न हुईं ? पांचवां ऑनलाइन कक्षाओं से उत्पन्न इन समस्याओं के समाधान के लिए क्या किया जा सकता है? शोध कर्ता ने अपने शोध अध्ययन में इन सभी प्रश्नों पर सविस्तार चर्चा की है |

चुनौतियाँ - शोध में पाया गया कि ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने से अनेक प्रकार की चुनौतियां उत्पन्न हुई हैं | क्योंकि इन कक्षाओं के आयोजन के लिए विद्यालयों के पास कोई स्पष्ट नियम (केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा दिए गए कुछ सुझावों को छोड़कर) नहीं बनाये गए हैं और जो बनाये गए उनका अनुपालन संबंधित विद्यालयों द्वारा ठीक प्रकार से नहीं किया गया | इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि इसके आयोजन से अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न हो गईं जिसका सबसे ज्यादा प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ा, जिससे वे अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक समस्याओं का सामना करने के लिए बाध्य हुए हैं|ये समस्याएं केवल ऑनलाइन कक्षाओं के आयोजन में कुप्रबंधन से ही उत्पन्न नहीं हुई हैं,बल्कि एक दिन में आयोजित होने वाली कक्षाओं की संख्या से भी हुई हैं| इसीलिए शोधकर्ता द्वारा प्रश्नावली में ऑनलाइन के माध्यम से आयोजित होने वाली कक्षाओं की संख्या के विषय में भी पूछा गया ताकि यह ज्ञात किया जा सके कि एक दिन में उनकी कितनी कक्षाएं चलती हैं ? इन कक्षाओं की समयावधि कितनी है? उक्त प्रश्नों के प्राप्त उत्तरों का विश्लेषणात्मक उत्तर निम्नलिखित प्रकार समझा जा सकता है :-

वर्तमान में संचालित ऑनलाइन कक्षाओं की अवधि और संख्या-

वर्तमान में विद्यालयों द्वारा संचालित ऑनलाइन कक्षाओं की समयावधि को ज्ञात करने के लिए शोधकर्ता द्वारा जब विद्यार्थियों से उनके द्वारा ली जा रही कक्षा के समय अवधि के विषय में प्रश्न पूछा तो 73.3% विद्यार्थियों ने कहा कि उनकी कक्षाएं तीस मिनट से ज्यादा अवधि की होती हैं जिसे इन बालकों की उम्र के हिसाब से बहुत ज्यादा माना जाता है, क्योंकि बालकों का, विशेष रूप से छोटे बच्चों का इतनी देर तक लगातार पढ़ना कठिन

कार्य है। इसीलिए वर्तमान में मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा मंत्रालय) द्वारा विद्यालयों के ऑनलाइन कक्षा सञ्चालन हेतु एक गाइड लाइन जारी की गई है जिसका निर्माण एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली द्वारा किया गया है । इस गाइड लाइन में पूर्व प्राथमिक स्तर में कक्षा के आयोजन हेतु अधिकतम समय सीमा तीस मिनट रखी गई है ।इस गाइड लाइन में कक्षा पहली से कक्षा आठवीं तक 30 से 45 मिनट के दो सेशन आयोजित करने का निर्देश है किन्तु जब शोधकर्ता ने इन बच्चों से जब कालांशों की संख्या के विषय में पूछा तो ज्ञात हुआ कि 8.9% विद्यार्थी छह से ज्यादा, 26.8% विद्यार्थी पांच से ज्यादा, 17.4% विद्यार्थी चार कालांशों में पढ़ते थे जबकि 46.9% विद्यार्थी ही तीन या उससे कम | अध्ययन से यह भी पता चला कि इस प्रकार की अधिक कक्षाओं में सम्मिलित होने के कारण ये बच्चे अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं|

वर्तमान में संचालित ऑनलाइन कक्षाओं से होने वाली शारीरिक समस्याएं -

जैसाकि हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि प्राथमिक स्तर के विद्यार्थी सामान्यतः ज्यादा ऑनलाइन कक्षाओं में भाग ले रहे थे , जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि वे अनेक प्रकार की शारीरिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं । ऑनलाइन माध्यम से अध्ययन के कारण वे किस प्रकार की शारीरिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं? यह प्रश्नपूछे जाने पर ज्ञात हुआ कि उन विद्यार्थियों में से 16.1% विद्यार्थी सिर में दर्द की समस्या से परेशान थे, 12.5% विद्यार्थियों को आँखों में पानी आने की समस्या हो रही थी, 8.9% बच्चों को आँखों में जलन की शिकायत हो रही थी, 1.8% विद्यार्थियों को सिर घूमने की समस्या हो रही थी,साथ ही 50% विद्यार्थियों को उपर्युक्त सभी प्रकार की समस्याएं हो रही थीं| वहीँ 10.7% विद्यार्थियों को किसी प्रकार की शारीरिक समस्याएं नहीं हो रही थीं | इस प्रकार आंकड़ों के आधार पर हम कह सकते हैं कि ऑनलाइन कक्षा लेने के कारण लगभग सभी विद्यार्थियों को शारीरिक समस्याएं हो रही थीं | इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं कि ऑनलाइन कक्षा के माध्यम से अधिगम नहीं कराया जाना चाहिए, किन्तु इसके लिए कुछ उपाय या सावधानियां रखने की आवश्यकता है । वे उपाय या सावधानियां क्या हो सकती हैं? इस विषय में भी इन विद्यार्थियों से चर्चा की गई |

वर्तमान में संचालित ऑनलाइन कक्षाओं से होने वाली मानसिक समस्याएँ -

ऐसा नहीं है कि ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने पर विद्यार्थियों को केवल शारीरिक समस्याएं ही हो रही थीं । ये विद्यार्थी शारीरिक समस्याओं के अतिरिक्त अनेक मानसिक समस्याओं से भी दो चार हो रहे थे जो कि ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने का सबसे भयावह पहलू है | ये विद्यार्थी ही समाज का भविष्य हैं| अगर ये ही मानसिक समस्याओं से ग्रसित हो जायेंगे तो आप कल्पना कर सकते हैं कि समाज का भविष्य किस प्रकार का हो सकता है? इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि ऑनलाइन माध्यम से अधिगम कर रहे विद्यार्थियों को हो रही समस्याओं को जल्दी से जल्दी दूर किया जाये ताकि वे मानसिक रूप से स्वस्थ हो सकें | विद्यार्थियों को हो रही समस्याओं के विषय में जब शोधकर्ता ने उनसे

यह पूछा कि ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने में वे किस प्रकार की मानसिक समस्याओं का सामना कर रहें हैं? तो ज्ञात हुआ कि26.2% विद्यार्थीऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने में मानसिक थकान महसूस करते हैं,10.7% विद्यार्थियों ने स्वीकार किया कि ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने से उन्हें तनाव होता है, 7% विद्यार्थियों ने कहा कि उन्हेंऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने में मानसिक असहजता होती है,साथ ही 37.5% विद्यार्थियों ने माना कि वे उपर्युक्त सभी प्रकार की मानसिक समस्याओं से जूझ रहें हैं जबकि 19.6% विद्यार्थियों ने यह भी स्वीकार किया कि उन्हेंऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने में किसी भी प्रकार की मानसिक परेशानी नहीं हो रही है| जब शोधकर्ता ने यह जानने की कोशिश की यदि ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने में इतनी परेशानियाँ हो रहीं हैं तो क्या ऑनलाइन कक्षाओं के सञ्चालन को बंद कर देना चाहिए तो इस प्रश्न पर विद्यार्थियों की काफी मिली-जुली प्रतिक्रिया प्राप्त हुई | 58.9% विद्यार्थियों ने स्वीकार किया कि ऑनलाइन कक्षाओं का सञ्चालन बंद कर देना चाहिए जबकि 41.1%विद्यार्थियों का यह कहना था कि ऑनलाइन कक्षाओं का सञ्चालन बंद नहीं किया जाना चाहिए| इससे एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि विद्यार्थी ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने के लिए तैयार हैं किन्तु वर्तमान में जिस तरीके से ऑनलाइन कक्षाओं का आयोजन हो रहा है वे उस तरीके में परिवर्तन चाहते हैं| वे परिवर्तन क्या-क्या हो सकते हैं? इसके विषय में भी शोधकर्ता ने विद्यार्थियों से ही जानने का प्रयास किया तो इन विद्यार्थियों के द्वारा ही कुछ सुझाव दिए गए ,जो बहुत हद तक उपयोगी और प्रासंगिक हैं|

समाधान-

ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने में विद्यार्थी अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहे हैं,फिर भी ये विद्यार्थी ऑनलाइन कक्षाओं के आयोजन के लिए अपनी स्वीकृति देते हैं । इससे यह बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि वे ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने में काफी सहज हैं तथा इससे उन्हें विषय के ज्ञान में सहायता भी मिल रही है, किन्तु ये विद्यार्थी वर्तमान में संचालित हो रही कक्षाओं के आयोजन में कुछ परिवर्तन चाहते हैं,जिसके लिए इन्होंने कुछ सुझाव भी,दिए,हैं| जब शोधकर्ता ने,विद्यार्थियों से यह जानने का प्रयास किया,कि उनकी दृष्टि में ऑनलाइन माध्यम से कक्षा आयोजित करते समय, क्या- क्या उपाय या सुधार किये जाने चाहिए? तो16.1% विद्यार्थियों ने स्वीकार किया कि कक्षा के समयावधि को कम किया जाना चाहिए, 12.5% विद्यार्थियों ने माना कि ऑनलाइन कक्षा के स्थान पर, रिकार्डेड वीडियो से अध्यापन कराया जाना चाहिए,8.9% विद्यार्थियों का कहना था कि गृहकार्य को कम दिया जाना चाहिए, 8.9% विद्यार्थियों ने माना कि एक दिन में तीन या इससे कम कक्षाओं का आयोजन किया जाना चाहिए, कुछ विद्यार्थियों का कहना था कि 'एप' के माध्यम से पढ़ाने से पूर्व इसके सञ्चालन का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, 42.9% विद्यार्थियों ने स्वीकार किया कि उपर्युक्त सभी उपायों को अपनाया जाना चाहिए| इन सभी बातों को ध्यानपूर्वक देखने पर एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि विद्यार्थी वर्तमान में संचालित

ऑनलाइन शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से खुश नहीं हैं, किन्तु फिर भी कुछ परिवर्तनों के साथ इस प्रक्रिया को संचालित रखना चाहते हैं|

विद्यार्थियों के लिए सुझाव- शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है,अत: किसी भी प्रभावी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के लिए इस बात को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है कि उनसे जुड़ी समस्याओं का समाधान किया जाये | इसके लिए सर्वप्रथम सभी विद्यार्थियों की ऑनलाइन गतिवधि संतुलित होनी चाहिए | संतुलित गतिविधि से आशय ऑनलाइन संसाधनों के उचित प्रयोग से है । इसके लिए ऑनलाइन माध्यम से पढ़ते समय विद्यार्थियों को बीच-बीच में थोड़ा अवकाश भी मिलना चाहिए । यद्यपि विद्यालय के द्वारा संचालित कक्षाओं में भी मध्य अवकाश (ब्रेक) दिया जाता है,किन्तु इनकी योजना औसत विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है मध्य अवकाश की आवश्यकता प्रत्येक विद्यार्थियों की अलग-अलग हो सकती है ।विद्यार्थी को भी संतुलित दिनचर्या का अनुपालन करना चाहिए,जैसे- संतुलित भोजन करना और ठीक प्रकार से नींद लेना आदि |ऑनलाइन कक्षा लेते समय विद्यार्थियों को अपने संक्षिप्त नोट्स बना लेने चाहिए,ताकि उन्हें ऑफलाइन के समय पर ठीक प्रकार से पढ़ा जा सके | इससे उनको स्क्रीन पर ज्यादा समय नहीं बिताना पड़ेगा, ऑनलाइन कक्षा के बीच में मिलने वाले ब्रेक में वह कुछ शारीरिक गतिविधि कर सकता है, जैसे-अपने कमरे में ही घूमना, थोड़ी देर अपनी आँखों को मलना इत्यादि,ताकि उनकी मांसपेशियों में खिचाव न हो|ऑनलाइन कक्षा लेते समय विद्यार्थी को अपनी कमर को सीधे करके बैठना चाहिये जिससे उसे कमर संबधी बीमारियाँ न हों , ऑनलाइन क्लास लेने के लिए मोबाईल की अपेक्षा लैपटॉप या कंप्यूटर का उपयोग करना चाहिए जिससे उसकी आँखों में दुष्प्रभाव न पड़े अन्यथा विद्यार्थी केआँखों में जलन, आँखों में पानी आना या सिर घूमना इत्यादि समस्याएं हो सकती हैं| इन सबके साथ ही विद्यार्थी को अपनी'निजता' के उल्लंघन का भी ध्यान करना चाहिए | इसके लिए उसे अपने लैपटॉप या कंप्यूटर पर अनावश्यक लिंक्स नहीं खोलना चाहिए,साथ ही कभी भी इन लिंक्स में अपनी व्यक्तिगत सूचनाएं नहीं देनी चाहिए अन्यथा इसके काफी भयावह परिणाम हो सकते हैं|

अभिभावकों के लिए सुझाव- अभिभावक यद्यपि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जुड़े होते, तथापि ऑनलाइन कक्षाओं के संचालन में इनकी भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि ये ही विद्यार्थी के ऑनलाइन अधिगम के 'प्रथम शिक्षक' होते हैं | इनका दायित्व काफी अहम् है| अभिभावकों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि जो बच्चे ऑनलाइन माध्यम से अधिगम कर रहे हैं,कहीं इनके व्यवहार में कोई अप्रत्याशित परिवर्तन तो नहीं हो रहा है | साथ ही अभिभावकों को अपने बच्चों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर लगातार निरीक्षण करते रहना चाहिए ताकि वे किसी प्रकार की शारीरिक और मानसिक समस्याओं से न घिर जाएं | इन बच्चों के खानपान का विशेष ध्यान रखना चाहिए जिससे इनके शारीरिक विकास में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो | जब

बच्चे ऑनलाइन क्लास ले रहे हों तो उन्हें ऐसे स्थान पर बैठने का निर्देश देना चाहिए जहाँ से उनका निरीक्षण करना आसान हो,जैसे-बेडरूम की अपेक्षा ,इन्हें स्टडी रूम या मेहमान रूम में बैठने को कहा जा सकता हैं|अभिभावकों को अपने बच्चों के साथ लगातार संवाद करते रहना चाहिए, ताकि ऑनलाइन पढ़ते समय उन्हें जो परेशानियाँ हो रही हैं उन परेशानियों को स्पष्ट तरीके से बता सकें | इसके अलावा अभिभावकों को अपने बच्चों में ये विश्वास जगाना चाहिए कि वे इनके साथ हैं|इन सबके अतिरक्त अभिभावकों को 'साइबर सुरक्षा'की मूलभूत समझ होनी चाहिए ताकि वे अपने बच्चों की 'निजता' को सुरक्षित रखने में सहायता कर सकें|

शिक्षकों के लिए सुझाव-ऑनलाइन माध्यम से अधिगम कराने में शिक्षक की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं,क्योंकि शिक्षक ही विद्यार्थी को ऑनलाइन के माध्यम से शिक्षण कराते हैं | अत: शिक्षक को सर्वप्रथम ऑनलाइन माध्यम का ठीक प्रकार से अनुप्रयोग करना आना चाहिए अन्यथा सम्पूर्ण शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया ही बाधित हो जाएगी|ऑनलाइन कक्षा के आयोजन से पूर्व शिक्षक को इसके उपयोग हेतु उचित प्रकार से योजना बनानी चाहिए| इसके लिए शिक्षक को विद्यार्थियों की आयु और क्षमताओं का ध्यान रखना चाहिए| इसके अलावा ऑनलाइन शिक्षण हेतु ऐसे'एप' का चयन करना चाहिए जो सस्ते और चलाने में सरल हों | साथ ही उसे कक्षा संचालित करते समय विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का भी ध्यान रखना चाहिए ताकि संचालित कक्षा में सभी विद्यार्थी सक्रिय सहभाग ले सकें|ऑनलाइन माध्यम से शिक्षण करते समय शिक्षक को केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा दिए गए दिशा-निर्देशों का अनुपालन भी करना चाहिए । जैसे अभी हाल ही में मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग) द्वारा 'प्रज्ञता' नाम से एक गाइडलाइन जारी की गई है, जिसका निर्माण एन.सी.ई.आर.टी. ,नई दिल्ली द्वारा किया गया है| एक शिक्षक को 'साइबर सुरक्षा' के मानकों का भी ठीक प्रकार से ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि कक्षा संचालित करते समय विद्यार्थियों की 'साइबर सुरक्षा'की प्राथमिक जिम्मेदारी शिक्षक की ही होती है । इसके अलावा ऑनलाइन शिक्षण करते समय, इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी परिस्थिति में विद्यार्थियों की 'निजता' का उल्लंघन न हो| इस प्रकार हम देखते हैं कि ऑनलाइन शिक्षण और अधिगम दोनों को ही प्रभावपूर्ण बनाने के लिए इस प्रक्रिया से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को अपने दायित्वों का ठीक प्रकार से निर्वहन करना आवश्यक है,तभी इस प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण, रोचक और बोधगम्य बनाया जा सकता है अन्यथा इस पूरी कवायद का कोई सार्थक लक्ष्य नहीं रह जायेगा|

कोरोना संकट काल में शिक्षण और अधिगम की प्रक्रिया को कैसे सुचारु रूप से संचालित किया जाए ? यह एक बड़ी समस्या है ।ऑनलाइन माध्यम से अधिगम इस समस्या का सम्पूर्ण समाधान तो नहीं हो सकता किन्तु इस समस्या के समाधान में काफी महत्वपूर्ण योगदान अवश्य दे सकता है | किन्तु यह भी सत्य है कि ऑनलाइन माध्यम से अधिगम करने के कारण विद्यार्थियों में अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक समस्याएं भी

उत्पन्न हो रही हैं| इस परिस्थिति में यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि शिक्षण और अधिगम के लिए एक ऐसी व्यवस्था को अपनाया जाए , जो विद्यार्थियों पर अनावश्यक बोझ न डालकर,प्रभावी अधिगम कराने में सहायक हो|इसके लिए शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक तीनों को मिलकर कार्य करना होगा अन्यथा यह पूरी कवायद समाधान के स्थान पर, एक अलग प्रकार की समस्या को जन्म दे सकती है|

डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संदर्भ सूची :

1.कुमार,ज्ञानेंद्र (2018): हिंदी भाषा शिक्षण ,प्रगतिशील प्रकाशन, दिल्ली |

2.नवभारत टाइम्स, दिनांक पांच जून 2020 .शनदिल्ली एडि ,

3.नवभारत टाइम्स, दिनांक छब्बीस जून, 2020.दिल्ली एडिशन ,

4.नवभारत टाइम्स , दिनांक उन्तीस जुलाई 2020,दिल्ली एडिशन ,

5.PRAGYATA(2020), Guidelines for digital education, Government of India.

6.Anna Qian Sunand Xiufang Chen(2016):Online Education and Its Effective Practice: A Research ,Journal of Information Technology Education:Research.

7.Ray ,ParthaPratimDecember 2010, Web based e-learning in India: the cumulative views of different aspects.

8.Dr.Mangal, S.K. and Dr.Mangal ,Shubhra,(2018) Psychological Perspective of Education Edition, Arya Book Depot New Delhi.

9.Review of education in India (1947-1961) Punjab,New Delhi, National Council of Education Research and Training, India.

10.Herbartian psychology applied to education Adams, John, 1899Boston, D. C. Heath and Co., Publishers,U. S. A.

प्राचीन भारतीय शिक्षा में शिल्पों का शिक्षण-शास्त्र

डॉ0 अजीत कुमार बोहत

प्राचीन **भारतीय** शैक्षिक दर्शन आध्यात्मिक व सामाजिक जीवन का अद्भुत सम्मिश्रण थी, जो कि धर्म-**अर्थ-**काम-मोक्ष को दृष्टिगत रखते हुए विकसित हुआ था। यद्यपि प्राचीन **भारतीय** सन्दर्भ में **शिक्षा-शास्त्र** का प्रयोग ध्वनिशास्त्र या उच्चारणशास्त्र के रूप में किया जाता था । किन्तु आगे चलकर वह सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त होने लगा। मानव में शरीर-मन-बुद्धि और आत्मा रूपी चार बातें **मुख्यत:** पायी जाती हैं और इनकी संतुष्टि हेतु मानव द्वारा किये जाने वाले कर्म को पुरुषार्थ की संज्ञा दी गयी है।

यदि प्राचीन **भारतीय** शिक्षा की बात करें तो स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में अनेक प्रकार के विषयों की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षण-विषयों में आध्यात्मिक व व्यवहारिक विषयों का अद्भुत सम्मिश्रण था। एक तरफ जहाँ वेद, वेदांग, व्याकरण,पुराण, साहित्य इत्यादि विषयों कि शिक्षा दी जाती थी, वही दूसरी तरफ जीवन उपयोगी व्यावसायिक व शिल्प विषयों का भी ज्ञान दिया जाता था। डॉ० अल्तेकर (1955) का मत है कि " शिक्षा का उद्देश्य मानव को मात्र जीने योग्य बनाना ही नहीं था, अपितु आजीविका कमाने योग्य बनाना भी था ।" डॉ. आर0 के0 मुखर्जी (1961) का विचार है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा पूणतः सैद्धांतिक व साहित्यिक ही नहीं थी अपितु वह किसी न किसी शिल्प तथा व्यवसाय से भी सम्बंधित थी। प्राचीन भारतीय उद्देश्यों के सन्दर्भ में डॉ. कृष्ण कुमार (1990) का मानना है कि "प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य व्यावसायिक कुशलता कि प्राप्ति भी था ताकि व्यक्ति जीविकोपार्जन हेतु योग्य बन सके। शिक्षा व शैक्षिक-प्रक्रिया मात्र साहित्यिक व सैद्धांतिक नहीं थी अपितु क्रियात्मक भी थी।"

यद्यपि शुरुआत में मानव जीवन सादा-सरल व सहज था किन्तु सभ्यता के विकास व विस्तार के साथ-साथ अनेक उद्यमों व शिल्पों का विकास व उनमें मानव-कुशलता बढ़ती चली गयी। प्रो0 डी0 एन0 झा (2000) का कहना है कि "शहरों के विकास,व्यापार तथा मौद्रिक अर्थव्यवस्था की अभिवृद्धि उन विभिन्न कलाओं-शिल्पों के विकास से जुडी हुई है जिनका प्रारम्भ पूर्ववर्ती काल में हो चुका था" । व्यापार-वाणिज्य उद्योगों में शिल्प का

विशेष स्थान था ।प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार के शिल्पों का विकास व विस्तार हुआ जिन्होंने व्यापार के क्षेत्र में मत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। शिल्पियों द्वारा निर्मित वस्तुओं का व्यापक स्तर पर विदेशों में निर्यात किया जाता था।

शिल्प का शाब्दिक अर्थ है निर्माण अथवा गढ़ने की कला अर्थात विभिन्न तत्वों,पदार्थों एवं धातुओं को विधि विशेष द्वारा मिश्रित कर नवीन पदार्थ या वस्तु का निर्माण करने के कौशल को "शिल्प" की संज्ञा दी गयी है। कहा भी गया है "यत् शीलति समाद्धाति तत् शीलम्" । प्राचीन काल में शिल्प को कौशलपूर्ण कार्य माना जाता था। **निरुक्त (3.1.1)** में शिल्प की व्याख्या कर्म कस्मात् क्रियते इति शिल्प अर्थात शिल्पी का कर्म ही शिल्प है, यह भली-भांति हाथों के द्वारा किया जाने वाला काम है। विवाद रत्नाकर में "शिल्प" की व्याख्या इस प्रकार की गयी है कि शिल्प एक प्रकार का विज्ञान है जिसमें विभिन्न तत्वों,पदार्थों व धातुओं जैसे कि स्वर्ण, चाँदी, तांबा, विभिन्न तत्वों,पदार्थों एवं हाथी-दाँत इत्यादि से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण किया जाता है।

यदि प्राचीन कालीन भारतीय ऐतिहासिक स्रोतों का विश्लेषण करें तो यह उभरकर आता है कि प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार के शिल्पों कि उत्पत्ति व विकास हुआ जिसमें समयानुसार व्यापक बदलाव भी आये | उदहारणस्वरूप बौद्ध **ग्रंथ** ललितविस्तर के शिल्पसंदर्शन अध्याय में 96 प्रकार की कलाओं व शिल्पों का वर्णन मिलता है। बौद्ध जातक कथाओं में 'अष्टादशशिल्प' , दीघनिकाय में 24 प्रकार के व्यवसाय व शिल्पों का वर्णन मिलता है । इसी प्रकार महावस्तु नामक ग्रन्थ में 36 प्रकार के व्यवसायों या शिल्पों का उल्लेख मिलता है। प्रो0 रामशरण शर्मा(2004) का कहना है कि "मिलिंदपनहो में 75 प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख मिलता है जिनमें 60 विभिन्न प्रकार के शिल्पों से सम्बंधित थे" । कौटिल्य द्वारा रचित कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी अनेक प्रकार के शिल्पों का उल्लेख मिलता है। नारदस्मृति, ऐतरेय ब्राहमण , **ईसा पूर्व दूसरी सदी में** वराहमिहिर द्वारा रचित बृहत् संहिता,कालिदास द्वारा रचित मालविकाग्निमित्रम् तथा बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी आदि ऐतिहासिक स्रोतों में भी विभिन्न शिल्पों का उल्लेख किया गया है। प्राचीन भारतीय इतिहास के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार के शिल्पों का प्रचलन था जैसे कि रत्नपरीक्षा,वास्तुकला, आयुध-शिल्प, नृत्य-कला, धातु-शिल्प, तंतुवाय -शिल्प मापन, चित्र-कला, लोह-शिल्प, नक्षत्र-कर्म, माणिक्य-ज्ञान, गृहनिर्माण, मूर्ति-शिल्प,स्वर्ण-शिल्प, ताम्र-कला, काष्ठ-शिल्प, रत्नाभूषण आदि शिल्पों का उल्लेख मिलता है । प्रो0 डी0 एन0 झा (2015) का मानना है कि "इतने सारे शिल्पों के उल्लेख का यह अर्थ हुआ

कि उत्पादन के क्षेत्र में विभिन्न लोग विभिन्न कार्यों व शिल्पों में दक्षता प्राप्त करते जा रहे थे । **मौर्य कालीन भारत** के सन्दर्भ में प्रो0 रोमिला थापर(2001) का मत है कि "मज़बूत केंद्रीयकृत तथा सुदृढ़ शासन से प्राप्त होने वाली सुरक्षा के फलस्वरूप शिल्प श्रेणियों द्वारा किये जाने वाले व्यापार में व्यापक प्रगति हुई तथा धीरे-धीरे इन्होंने लघु उद्योगों का रूप ग्रहण कर लिया"| राज्य ने कुछ शिल्पों जैसे कि स्वर्ण,माणिक्य,रत्न शिलालेखों, **मूर्ति शिल्प, वास्तुकला** व **रत्न आभूषण इत्यादि** को सीधे राज्य सेवा में ले लिया। इनकी आय कर मुक्त थी किन्तु इनकी कार्यशालाओं एवं राजकीय खानों में काम करने वालों पर कर लगता था। मेगास्थनीज द्वारा वर्णित 7 **समिति**यों में से एक समिति का कार्य शिल्पों का निरीक्षण करना भी था। इन सन्दर्भों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत के लोगों को शिल्पों से संबंधित पर्याप्त ज्ञान था तथा इनके शिल्पों के शिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था थी। यद्यपि प्राचीन काल में वर्तमान की भांति कोई विशेष औद्योगिक प्रशिक्षण प्रदान नहीं किए जाते थे जो सभी के लिए सुलभ हों किन्तु फिर भी तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में शिल्प-शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान अवश्य था।

महाजनपद कालीन भारत में शिल्प-कौशल तथा शास्त्रीय शिक्षा दोनों की पूर्ण व्यवस्था थी। शिल्प शिक्षा को 'जनपदी' तथा दूसरी साहित्यिक शिक्षा को 'चारणी' कहा जाता था। डॉ0 आर0 के0 मुखर्जी (1960) भी इसको स्वीकारते हैं कि "प्राचीन भारत में विभिन्न शिल्पों की शिक्षा की उचित व्यवस्था थी।" प्राप्त ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में विभिन्न शिल्प कारखाने या शिल्प केंद्र थे जो सरकारी एवं व्यक्तिगत दोनों रूप में विद्यमान थे , जिनका विवरण कौटिल्य अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है। शिल्प केंद्र अथवा शिल्प कर्मान्त (कारखाने) में शिल्पों की शिक्षा की व्यवस्था थी। प्रायः शिल्प शिक्षा शिल्पियों के गृह, आश्रमों तथा मठों में दी जाती थी। मुख्यतः शिल्प शिक्षा परिवार के सबसे वृद्ध एवं अनुभवी व्यक्ति द्वारा प्रदान की जाती थी यह मूलतः वंशानुगत थी । प्रो0 डी0 एन0 झा (2000) भी इसी बात को स्वीकारते हैं कि शिल्प-शिक्षा मुख्यतः वंशानुगत थी। हो सकता है कि इसका कारण वर्ण व्यवस्था रही हो । पणिक्कर (1951) का कहना है कि "शुरुआत में शिल्प-शिक्षा पारिवारिक शिक्षालयों में कारीगर शिक्षक के पुत्र,पौत्र तथा परिवार के अन्य सदस्यों को सुलभ थी, किन्तु आगे चलकर इन पारिवारिक शिल्प शिक्षा घरों तथा केंद्रों में अन्य व्यक्तियों को भी स्वीकार किया जाने लगा हो।"

प्राचीन भारत में शिल्प-शिक्षा औपचारिक व अनौपचारिक दोनों ही प्रकार से दी जाती थी। अनौचारिक रूप से शिल्प-शिक्षा शिल्पियों के गृह में तथा औपचारिक रूप में 'श्रेणी',

आश्रमों,मठों में दी जाती थी। यदि मौर्यकालीन स्रोतों का विश्लेषण करें तो यह उभरकर आता है कि तत्कालीन समय में, सुवर्णाध्यक्षक ,लवणाध्यक्ष , यंत्रनिरीक्षक, आकराध्यक्ष इत्यादि की नियुक्ति तथा स्वर्ण-चांदी ,माणिक्य-रत्न, यंत्रवीक्षको तथा अन्य उच्च कोटि के शिल्पों तथा व्यवसायों पर राज्य-नियंत्रण था | स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में शिल्प कौशलों का प्रशिक्षण व्यापक रूप से दिया जाता था। शिल्प ज्ञान के इच्छुक प्रशिक्षु को शिक्षा ग्रहण करने हेतु आचार्य के घर पर जाना पड़ता था। शिल्पों की शिक्षा के सन्दर्भ में डॉ0 अल्तेकर (1955) का भी विचार है कि शिल्प-कला व विज्ञान की शिक्षा "उम्मीदवारी" प्रथा के द्वारा दी जाती थी। डॉ0 मुखर्जी (1960) का कहना है कि "उम्मीदवारी प्रथा के माध्यम से प्रशिक्षु गुरु के समीप रहता हुआ न केवल शिल्प विशेष के सभी पहलुओं का अवलोकन करके ज्ञान ग्रहण करता था बल्कि शिल्प विशेष का सैद्धांतिक व व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त करता था" । शिल्प ज्ञान प्राप्त करने वाले प्रशिक्षु के लिए विशेष नियमों का पालन करना आवश्यक था जैसे कि उचित आचरण, व्यवहार, सही प्रकार शिक्षा ग्रहण करना तथा आचार्य का त्याग न करना इत्यादि प्रमुख थे ,वहीं शिल्पाचार्य से भी यह उम्मीद कि जाती थी कि वह प्रशिक्षु को 'शिल्प' का सही ज्ञान देगा, उसके रहने -खाने का उचित प्रबंध करेगा। शिल्प सीखने हेतु प्रशिक्षुओं के लिए निर्धारित विशेष नियमों का उल्लेख नारदस्मृति के शुत्रूषाभ्युपगम प्रकरण में विस्तारपूर्वक दिया गया है।

प्राचीन काल में श्रेणियां भी शिल्प ज्ञान का मुख्य केंद्र थी। श्रेणी के प्रबंध,व्यवस्था व अनुशासन में शिल्प विशेष की शिक्षा व्यवस्था होती थी जो कि विशेषज्ञ शिल्पी के घर पर दी जाती थी जो लघु विद्यालय या कर्मान्त होता होगा जहाँ प्रशिक्षु 'शिल्प-विशेष' का ज्ञान प्राप्त करते थे । प्रत्येक श्रेणी के अपने नियम व कायदे थे। श्रेणी में न केवल शिल्पियों, ,प्रशिक्षुओं को अपने शिल्प में तकनीकी कुशलता प्राप्त होती थी वरन् उसके व्यवसाय का भी विस्तार होता था। प्रो0 डी0 एन0 झा0 (2015) का मत है कि "कलाओं और शिल्पों के विकास व विस्तार के फलस्वरूप अलग-अलग लोगों ने न केवल इसमें विशेषज्ञता प्राप्त की बल्कि तकनीकी कौशल में भी काफी विकास हुआ।" प्राचीन कालीन भारतीय शिक्षा में छात्र जीवन की अवधि मुख्यतः 12-14 वर्षो की मानीं गईं है किंतु शिल्प-शिक्षा की अवधि कितनी थी इस पर कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इस विषय में डॉ0 अल्तेकर (1955) का कहना है कि "शिल्पों के प्रशिक्षण की अवधि कितने वर्षो की थी इस विषय पर ग्रंथों में स्पष्ट नहीं है" । किन्तु यह भी स्पष्ट है कि निश्चय ही विभिन्न शिल्पों के प्रशिक्षण हेतु समय स्वीकृत किये जाते होंगे। घरों में शिल्पों के प्रशिक्षण की इस परिपाटी से प्रशिक्षु न

केवल 'शिल्प-विशेष का सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करता था अपितु वह व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करके शिल्प में कुशलता प्राप्त करता था। फलस्वरूप प्रशिक्षु शिल्प की प्रक्रिया के विभिन्न भागों से पूर्णतया परिचित होता था | विभिन्न शिल्प विषयों की दिनचर्या भी अलग थी जो शिल्प शिक्षण की प्रक्रिया व पद्धति पर निर्भर थी। प्रशिक्षु दिन-भर आचार्य या फिर श्रेणी में शिल्प की बारीकियां सीखकर उनका व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त करता था।

शिल्प-शिक्षण हेतु प्राचीन-काल में विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता था जिसमें प्रश्नोत्तर, अवलोकन, प्रदर्शन, श्रवण तथा प्रायोगिक प्रमुख थी। सैद्धांतिक तौर पर जहाँ शिल्प विशेष के सभी पहलुओं की जानकारी दी जाती थी |उदाहरणस्वरूप धातु-शिल्प के प्रशिक्षण के दौरान विभिन्न धातुओं को खानों से निकालने, शुद्ध करने,गलाने,ढालने, तथा विभिन्न वस्तुओं के निर्माण से संबंधित सैद्धांतिक व व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता था, इसी प्रकार ताँबा,चांदी,स्वर्ण,लौह इत्यादि धातुओं का शोधन कैसे करें, गलाने की प्रक्रिया में शीशा-क्षार, प्राकृतिक अम्ल इत्यादि का प्रयोग किस प्रकार व कितनी मात्रा में करें। धातु को गर्म करने की क्या विधि हो, किस प्रकार शुद्धता की पहचान करें | रत्नों का दोहन, रत्नों की पहचान, वर्गीकरण,निर्माण,मूल्य-निर्धारण, गुण-दोषों का विवरण इत्यादि बताए जाते थे | इसी प्रकार विदलकर्म (बाँस से सम्बंधित शिल्प) में बांस की पहचान, वस्तुओं का निर्माण इत्यादि का सैद्धांतिक व व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता था । कौटिल्य अर्थशास्त्र,वृहद्संहिता ,शुक्रनीतिसार,अग्निपुराण,शतपथ ब्राह्मण,ललितविस्तर इत्यादि ग्रंथों में संबंधित विवरण दिए गए हैं । आचार्य या विशेषज्ञ शिल्पी द्वारा शैक्षिक,सैद्धांतिक ज्ञान ग्रहण करने के बाद प्रशिक्षु इनके सान्निध्य में शिल्पों का व्यावहारिक रूप में प्रयोग करता था। इसके द्वारा प्रशिक्षु की कार्यक्षमता व दक्षता में वृद्धि होती थी। फलस्वरूप वह शिल्प-विशेष के सभी पहलुओं व प्रक्रिया के सम्बन्ध में वह पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता था। डॉ0 कृष्ण कुमार (1990) का मत है कि “यह वास्तविक व प्रत्यक्ष शिक्षण प्रक्रिया थी इसमें प्रशिक्षु 'शिल्प-विशेष' के विषय में विशेषज्ञता हासिल करता था।” शिल्प-शिक्षा का ढंग प्रत्यक्ष व व्यक्तिगत था।

अतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा केवल आध्यात्मिक ही नहीं थी बल्कि मानव को शिल्प ज्ञान देकर समाज का उपयोगी सदस्य बनाने में भी सहायता करती थी। प्राचीन काल में शिल्प-ज्ञान मूलतः गृह-उद्योग व श्रेणियों के माध्यम से दिया जाता था। श्रेणियों में शिल्प-शिक्षा मुख्यतः वंशानुगत थी किन्तु कालांतर में बाह्य व्यक्ति भी इसमें कुछ शुल्क देकर ज्ञान हासिल कर सकते थे। एक तरफ जहां

बालकों को सामान्य शिक्षा प्रदान की जाती थी वहीं दूसरी ओर विशेष शिल्प का ज्ञान-कौशल देकर उन्हें कुशल बनाकर व्यावसायिक जीवन हेतु तैयार भी किया जाता था।

डॉ0 अजीत कुमार बोहत
सहायक प्राध्यापक, शिक्षण-प्रशिक्षण एवं निरौपचारिक विभाग
शिक्षा संकाय,जामिया मिलिया इस्लामिया,नई दिल्ली 110025

संदर्भ सूची:-

- अल्तेकर,ए0 एस0(1955): प्राचीन भारतीय शिक्षण: पद्धति ; पटना ।
- उपाध्याय,भगवतशरण(2003): कालिदास का भारत : भारतीय ज्ञानपीठ; दिल्ली ।
- औड : एल0 के0 (1973); शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि :राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी ; जयपुर ।
- कुमार :कृष्ण डॉ0(1990):प्राचीन भारत की शिक्षण पद्धति : श्री सरस्वती सदन ; दिल्ली ।
- कौशाम्बी : डी0 डी0(1993): प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता : अनूदित गुणाकर मुले; राजकमल प्रकाशन ; दिल्ली।
- गाँधी,शारदा(1992) : ललितविस्तर-दार्शनिक और सांस्कृतिक सर्वेक्षण : परिमल पब्लिकेशन ;दिल्ली ।
- गुप्ता ,एन0 एल0 (1979) : प्राचीन शिक्षा और शिक्षाशास्त्री: चेतना प्रकाशन;नागपुर।
- घोषाल,यू0 एन0 (1984) :शिक्षा :उद्धृत श्रेण्य युग: (संपादक आर0 सी0 मजूमदार); मोतीलाल बनारसीदास ;दिल्ली ।
- चट्टोपाध्याय ,देवी प्रसाद(2001): प्राचीन भारत में विज्ञान और समाज : अनूदित नरेंद्र व्यास; ग्रन्थ शिल्पी ,दिल्ली।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विविध आयाम

डॉ. मनोरमा मिश्रा

शिक्षा किसी भी राष्ट्र या समाज का केंद्रीय प्राणवायु है, शिक्षा और साक्षरता दो अलग-अलग चीजें हैं क्योंकि जहाँ साक्षरता अक्षर ज्ञान तक सीमित है, वहीं शिक्षा का अर्थ कहीं अधिक व्यापक है | यह मनुष्य और समाज के आचार-विचार, उसके जीवन शैली, उसके सामाजिक सरोकारों, मानवीय मूल्यों, प्रगति के उपादानों आदि को बहुत गहराई तक प्रभावित करती है। शायद इसीलिए एडमंड बर्क ने कहा था कि किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी सुरक्षा उसकी शिक्षा है। पुरानी शिक्षा नीतियाँ चाहे वह सर्जेंट योजना हो, चाहे 1952 का माध्यमिक शिक्षा आयोग हो, चाहे कोठारी कमीशन या फिर 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो, कहीं न कहीं ये सभी ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड के आस-पास ही घूमती रही हैं ,जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक वास्तविक अर्थ में समाज को साक्षर बनाने से आगे बढ़कर ,समाज को शिक्षित करने के व्यापक लक्ष्य पर आधारित है।

इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति की व्यापकता भारतीय समाज के निचले पायदानों तक जाती है। इन पायदानों में भारत के गाँवों से लेकर जन-जातियों, पिछड़े वर्गों तक का व्यापक क्षेत्र फैला हुआ है।

इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद की उक्ति उल्लेखनीय है - असली भारत गाँवों में बसता है।

जब तक हम जन जातियों एवं पिछड़े वर्गों के लोगों का उत्थान करने में सफल नहीं होंगे तब तक भारत का भविष्य उज्ज्वल नहीं होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने विषमताओं को दूर करने पर विशेष बल दिया है और इसमें अब तक वंचित रहे लोगों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के समान अवसर मुहैया कराने का प्रयास है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सकारात्मक पहलू :-

1. महिलाओं की भागीदारी

अतीत से चले आ रहे असंतुलन और विषमताओं को खत्म करने के लिए शिक्षा- व्यवस्था का स्पष्ट झुकाव महिलाओं के पक्ष में होगा। शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में किया गया है। यह नीति राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था में ऐसा प्रभाव डालेगी जिस से महिलाएँ समर्थ और सशक्त होंगी। नए मूल्यों की स्थापना के लिए शिक्षण संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से पाठ्यक्रमों तथा पठन-पाठन सामग्री की पुनर्रचना की जाएगी तथा अध्यापकों व प्रशासकों का पुन: प्रशिक्षण किया जाएगा। महिलाओं से संबंधित अध्ययन को विभिन्न पाठ्यचर्याओं के भाग के रूप में प्रोत्साहन दिया जाएगा। इस काम को सामाजिक पुनर्रचना का अभिन्न अंग मानते हुए इसे

पूर्ण कृतसंकल्प होकर किया जाएगा और शिक्षा संस्थाओं को महिला विकास के सक्रिय कार्यक्रम शुरू करने के लिए प्रेरित किया जाएगा।

महिलाओं में साक्षरता प्रसार को तथा उन रुकावटों को दूर करने के लिए , जिनके कारण लडकियाँ प्रारंभिक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं, सर्वोपरि प्राथमिकता दी जाएगी। इस काम के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की जाएंगी , समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित किए जाएंगे और उनके कार्यान्वयन पर विशेष ध्यान रखा जाएगा । विभिन्न स्तरों पर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी पर विशेष बल दिया जाएगा। लड़के और लड़कियों में किसी प्रकार का भेद-भाव न बरतने की नीति पर पूरा जोर देकर अमल किया जाएगा। इसी प्रकार मौजूदा और नई प्रौद्योगिकी में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जाएगी।

2.अनुसूचित जातियों की शिक्षा

अनुसूचित जातियों के शैक्षिक विकास पर बल दिया जाएगा जिससे कि वे गैर-अनुसूचित जाति के लोगों के समकक्ष आ सकें। यह बराबरी सभी स्तरों पर इन चारों आयामों में होनी जरूरी है: ग्रामीण पुरुषों में, ग्रामीण स्त्रियों में, शहरी क्षेत्रों के पुरुषों में और शहरी क्षेत्रों की स्त्रियों में। इसी उद्देश्य से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया गया है :-

* निर्धन परिवारों को इस प्रकार का प्रोत्साहन दिया जाए कि वे अपने बच्चों को 14 साल की उम्र तक नियमित रूप से स्कूल भेज सकें।

* सफाई कार्य, पशुओं की चमड़ी उतारने तथा चर्म शोधन जैसे व्यवसायों में लगे परिवारों के बच्चों के लिए मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति योजना ,पहली कक्षा से शुरू की जाएगी। ऐसे परिवारों की आय पर ध्यान दिए बिना, उनके सभी बच्चों को इस योजना में शामिल किया जाएगा तथा उनके लिए समयबद्ध कार्यक्रम शुरू किए जाएंगे।

* ऐसी सुनुयोजित व्यवस्थाएँ करना और जांच-पड़ताल की विधि स्थापित करना, जिससे पता चलता रहे कि अनुसूचित जातियों के बच्चों के नामांकन होने, नियमित रूप से अध्ययन जारी रखने और पढ़ाई पूरी करने की प्रक्रिया में कहीं गिरावट तो नहीं आ रही है। साथ ही इन बच्चों की आगे की शिक्षा और रोजगार पाने की संभावना को बढ़ाने के उद्देश्य से उनके लिए उपचारात्मक पाठ्यचर्या की व्यवस्था इस शिक्षा नीति के अंतर्गत संभव हो सकेगा।

* अनुसूचित जातियों से शिक्षकों की नियुक्ति पर विशेष ध्यान देना। जिला केन्द्रों पर अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए छात्रावास की सुविधाएँ क्रमिक रूप से बढ़ाना।

* विद्यालय भवनों, बालवाड़ियों और प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का, स्थान चुनते समय अनुसूचित जाति के व्यक्तियों की सहूलियत पर विशेष ध्यान देना। अनुसूचित जातियों के लिए शैक्षणिक सुविधाओं का विस्तार करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा

भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के साधनों का उपयोग करना। अनुसूचित जातियों का शिक्षा की प्रक्रिया में समावेश बढ़ाने हेतु लगातार नये तरीकों की खोज जारी रखना।

3.अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा

इस शिक्षा नीति के अनुसार अनुसूचित जनजातियों को अन्य लोगों की बराबरी पर लाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाएंगे-

- आदिवासी इलाकों में प्राथमिक पाठशालाएं खोलने के काम को प्राथमिकता दी जाएगी। इन क्षेत्रों में स्कूल भवनों के निर्माण का कार्य शिक्षा के बजटय राष्ट्री , जनजातीय ,ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम ,ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम कल्याण योजनाओं आदि के अन्तर्गत प्राथमिकता के आधार पर हाथ में लिया जाएगा। आदिवासियों की अपनी सांस्कृतिक एवं सामाजिक विशिष्टता होती है और बहुधा उनकी अपनी बोलचाल की भाषाएँ होती हैं । पाठ्यक्रम निर्माण में तथा शिक्षण सामग्री तैयार करने में यह जरूरी है कि शुरुआत की अवस्था में आदिवासी भाषाओं का उपयोग किया जाए तथा ऐसी ,व्यवस्था की जाए कि आदिवासी बच्चे शुरू के कुछ वर्षों के बाद क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर सकें ।
- पढ़ेलिखे प्रतिभाशाली आदिवासी युवकों को प्रशिक्षण देकर अपने क्षेत्र में ही - शिक्षक बनने के लिए प्रोत्साहन दिया जाएगा।
- बड़ी तादाद में आश्रमशालाएं और आवासीय विद्यालय खोले जाएंगे। अनुसूचित जनजातियों के

लिए उनकी जिन्दगी के तौर- तरीकों और उनकी खास जरूरतों को ध्यान में रखते हुए ऐसी प्रोत्साहन योजनाएँ तैयार की जाएंगी, जिनसे शिक्षा प्राप्ति में आने वाली बाधाएं दूर हों। उच्च शिक्षा के लिए दी जाने वाली छात्रवृत्तियों में तकनीकी और व्यावसायिक पढ़ाई को ज्यादा महत्त्व दिया जाएगा। सामाजिक तथा मानसिक अवरोध को दूर करने के लिए विशेष उपचारात्मक पाठ्यचर्या और अन्य कार्यक्रम चलाए जाएंगे, ताकि आदिवासी शिक्षार्थी सफलता से अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें। आंगनवाड़ी केंद्र , अनौपचारिक शिक्षा केंद्र और प्रौढ़ शिक्षा केंद्र आदिवासी बहुल इलाकों में प्राथमिकता के आधार पर खोले जाएंगे।

आदिवासियों की समृद्ध सांस्कृतिक अस्मिता और विशाल सृजनात्मक प्रतिभा के बारे में चेतना सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों का जरूरी हिस्सा होगी। शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए सभी वर्गों को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, समुचित प्रोत्साहन दिया जाएगा। पहाड़ी और रेगिस्तानी जिलों में, दूरस्थ और दुर्गम क्षेत्रों में और टापुओं पर पर्याप्त संख्या में शिक्षा संस्थाएं खोली जाएंगी।

4 . दिव्यांगों की शिक्षा पर विशेष बल-

शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से विकलांगों को शिक्षा देने का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे समाज के लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकें, उनकी सामान्य तरीके से प्रगति हो और वे पूरे भरोसे और हिम्मत के साथ जिंदगी जिएं। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति में** इस संबंध में निम्नलिखित उपाय किए जाएंगे–

- विकलांगता अगर हाथ पैर की या मामूली सी हैतो ऐसे बच्चों की पढ़ाई आम , ।बच्चों के साथ हो
- गंभीर रूप से विकलांग बच्चों के लिए छात्रावास वाले विशेष विद्यालयों की जरूरत होगी। इस तरह के विद्यालय जिला मुख्यालयों ,जहाँ तक संभव होगा , में बनाए जाएंगे।
- दिव्यांगों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था की जाएगी। शिक्षकोंथमिक कक्षाओं के शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को भी खासतौर से प्रा , नया रूप दिया जाएगा ताकि वे विकलांग बच्चों की कठिनाइयों को ठीक तरह से समझ कर उनकी सहायता कर सकें।

5. **प्रौढ़ शिक्षा -** केंद्र सरकार और राज्य सरकारों-राजनैतिक दलों तथा उनके जन , -और शिक्षा संस्थाओं को विविध प्रकार के जन संचार के माध्यमों-जन ,संगठनों साक्षरता कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए प्रतिबद्ध होना होगा। इस कार्य में स् , छात्राएं-छात्र ,युवावर्ग ,शिक्षकवैच्छिक संस्थाएं और नियोजक आदि बड़े पैमाने पर शामिल होंगे। शोध संस्थानों की सहायता से शैक्षिक पहलुओं में सुधार लाने के ठोस प्रयास किए जाएंगे। साक्षरता के अलावाकार्यात्मक ज्ञान और कुशलताओं का , आर्थिक वास्तविकता की सम -तथा शिक्षार्थियों में सामाजिक ,विकासझ पैदा करना और इस स्थिति को बदल सकने की संभावना के प्रति उन्हें सचेत बनाना प्रौढ़ शिक्षा , का अंग होगा।

विभिन्न पद्धतियों और माध्यमों का उपयोग करते हुए प्रौढ़ तथा सतत शिक्षा का एक व्यापक कार्यक्रम कार्यान्वित किया जाएगा। इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार के कार्यक्रमों की योजना बनाई जाएगी, जैसे-

(क) ग्रामीण क्षेत्रों में सतत शिक्षा केंद्रों की स्थापना।

(ख) नियोजकोंजदूर संगठनों और संबंधित एजेंसियों के द्वारा श्रमिकों की शिक्षा।म ,

(ग) उच्च शिक्षा की संस्थाओं द्वारा सतत शिक्षा व्यवस्था ।

(घ) पुस्तकों के लेखन व प्रकाशन को तथा पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना को बड़े पैमाने पर प्रोत्साहन।

(ङ) जनदूरदर्शन और फिल्मों का ,रूप में रेडियो शिक्षण और समूह शिक्षण के साधन के-उपयोग।

(च) शिक्षार्थियों के समूहों और संगठनों का सृजन।

(छ) दूरस्थ - शिक्षण के कार्यक्रम।

(ज) स्वाध्याय और स्वयंशिक्षण में सहायता की व्यवस्था।-

(झ) आवश्यकता और रुचि पर आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रम।

6. बच्चों के विकास, देखभाल और शिक्षा पर पर्याप्त निधि आबंटन

बच्चों से संबंधित यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस बात पर विशेष बल देती है कि बच्चों के विकास पर पर्याप्त विनियोग किया जाए, विशेषकर ऐसे वर्गों पर, जिनके बच्चों की पहली पीढ़ी बड़ी संख्या में शिक्षा प्राप्त कर रही है।

बच्चों के विकास के विभिन्न पहलुओं को अलग- अलग करके नहीं देखा जा सकता। पौष्टिक भोजन व स्वास्थ्य को और बच्चों के सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक और भावनात्मक विकास को समेकित रूप में ही देखना होगा। इस दृष्टि से शिशुओं की देखभाल और शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा और इसे जहाँ भी संभव हो, समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम के साथ जोड़ा जाएगा। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के संदर्भ में शिशुओं की देखभाल के केंद्र खोले जाएंगे, जिससे अपने छोटे भाई- बहन की देखभाल करने वाली लड़कियों को स्कूल जाने की सुविधा मिल सके। साथ ही निर्धन वर्ग की कार्यरत स्त्रियों को भी इन केंद्रों से मदद मिल सकेगी। शिशुओं की देखभाल और शिक्षा के केंद्र पूरी तरह बाल-केंद्रित होंगे। उनकी गतिविधियाँ खेल- कूद और बच्चों के व्यक्तित्व पर आधारित होंगी। इस अवस्था में औपचारिक रूप से पढ़ना- लिखना नहीं सिखाया जाएगा। इस कार्यक्रम में स्थानीय समुदाय का पूरा सहयोग लिया जाएगा।

7. बाल- केंद्रित दृष्टिकोण-

बच्चों को विद्यालय जाने में सबसे अधिक सहायता तब मिलती है, जब वहाँ का वातावरण प्यार, अपनत्व और प्रोत्साहन से भरा हो और विद्यालय के सब लोग बच्चों की आवश्यकताओं पर ध्यान दे रहे हों। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की पद्धति बाल- केंद्रित और गतिविधि पर आधारित होनी चाहिए। पहली पीढ़ी के सीखने वाले बच्चों को अपनी गति से आगे बढ़ने देना चाहिए और उनके लिए पूरक और उपचारात्मक शिक्षा की भी व्यवस्था होनी चाहिए। ज्यों- ज्यों बच्चें बड़े होंगे, उनके सीखने में ज्ञानात्मक तत्व बढ़ते जाएंगे और अभ्यास के द्वारा वे कुछ कुशलताएँ भी ग्रहण करते चलेंगे। प्राथमिक स्तर पर बच्चों को किसी भी कक्षा में फेल न करने की प्रथा जारी रखी जाएगी। शिक्षा की व्यवस्था में से शारीरिक दंड को सर्वथा हटा दिया जाएगा और विद्यालय के समय का और छुट्टियों का निर्णय भी बच्चों की सुविधा को देखते हुए किया जाएगा।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 वास्तव में 'शिक्षा नीति' होगी न कि 'साक्षर नीति' । यह शिक्षा नीति ऐसी शिक्षा नीति होगी जो मनुष्य को यंत्र बनने से रोकेगी। मनुष्य को मानवीय, संवेदनशील एवं प्रगतिशील बना सकेगी।

डॉ. मनोरमा मिश्रा
सहायक प्रोफेसर -हिंदी विभाग
मिहिर भोज पी.जी.कॉलेज, गौतम बुद्ध नगर (उ.प्र.)

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. माध्यमिक शिक्षा आयोग प्रतिवेदन (1952-53), भारत सरकार, नई दिल्ली
2. शिक्षा आयोग रिपोर्ट (1964-66), भारत सरकार नई दिल्ली
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), भारत सरकार ,नई दिल्ली
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020,शिक्षा मंत्रालय ,भारत सरकार ,नई दिल्ली
5. बर्क एडमंड : जीवनी राजनीति और सौन्दर्य के विचार
6. यादव ,जीतेन्द्र, नई शिक्षा नीति और मेरे विचार
7. स्वामी विवेकानंद ,मेरा जीवन तथा ध्येय
8. पाठक ,आर.पी. (2018), भारतीय समाज में शिक्षा ,कनिष्क प्रकाशन ,नई दिल्ली

शिक्षक विकास समन्वयक कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षकों की सतत व्यावसायिक शिक्षा: सीखने की आजीवन यात्रा

डॉ. ऍम.ऍम.रॉय एवं
डॉ. मीना सहरावत

सारांश :

शिक्षक किसी भी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग होता है | शिक्षकों द्वारा ही भावी नागरिकों को आदर्श स्वरूप दिया जाता है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, शिक्षकों को स्पष्ट रूप से यह कहकर महत्व देती है कि वे समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक लोकाचार को दर्शाते हैं। वर्तमान में समस्त शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया शिक्षा की गुणवत्ता पर केन्द्रित है और इस गुणवत्ता की कुंजी हमारे शिक्षक हैं। शिक्षकों पर शिक्षणशास्त्र के स्वरूप को पुष्ट करने और ज्ञान में सुधार को अद्यतन करने का दबाव होता है। शिक्षकों के लिए सेवा-पूर्व प्रशिक्षण कितना भी अच्छा क्यों न हो, उनसे उन सभी चुनौतियों के लिए तैयार होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है , जिससे वे अपने पूरे शैक्षिक जीवन में सामना करेंगे। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को बनाए रखने और शैक्षिक प्रणाली में प्रभावी शिक्षकों को बनाए रखने के लिए, शिक्षकों को सेवाकालीन व्यावसायिक विकास के अवसर प्रदान किये जाने की आवश्यकता है। शिक्षकों का विकास शिक्षकों के सीखने का एक अंतहीन चक्र है जो प्रारंभिक शिक्षक प्रशिक्षण से शुरू होता है और तब तक जारी रहता है ,जब तक शिक्षक अपने व्यवसाय में रहता है। परिणामतः , आज पुरे विश्व में शिक्षकों के लिए व्यावसायिक शिक्षा जारी रखने पर ध्यान केंद्रित किया गया है। शिक्षक विकास समन्वयक कार्यक्रम, एससीईआरटी, दिल्ली द्वारा 2017 में शुरू की गई एक पहल है, जिसका उद्देश्य सभी शिक्षा निदेशालयों में शिक्षक प्रशिक्षण का एक सहयोगी नेटवर्क बनाना है। यह कार्यक्रम मुख्य रूप से कई प्लेटफार्मों के माध्यम से व्यावसायिक विकास पर केंद्रित है और एक सह-शिक्षण वातावरण की परिकल्पना करता है, जहां सभी को सीखने के सुधार चक्र के माध्यम से शिक्षण व्यवसाय के विकास की यात्रा का अनुभव करने का अवसर मिलता है। यह पत्र शिक्षक विकास समन्वयक कार्यक्रम के सीखने के सुधार चक्र के माध्यम से सतत व्यावसायिक शिक्षा पर आधारित है जिससे शिक्षक अपनी गति से सीखने की जीवन भर की यात्रा का आनंद ले सकते हैं।

मुख्य शब्द: सतत व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षक विकास समन्वयक (टी.डी.सी.), अधिगम सुधार चक्र(एल आई सी) , सहयोगी मार्गदर्शक शिक्षक (मेन्टर),जिला शिक्षा और प्रशिक्षण

संस्थान (डाइट),राष्ट्रीय शिक्षा नीति ,1986, मेन्टर शिक्षक , अधिगम सहायक, अकादमिक संसाधन डाल (ए आर टी) एवं विचार निर्माण जुड़ाव (थीम बिल्डिंग कनेक्ट)

परिचय:

शिक्षक को शिक्षा प्रणाली, समाज और देश की रीढ़ माना जाता है। शिक्षक पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि एक स्कूल समाज का लघु रूप होता है। कल के नागरिक उनके छात्र हैं और देश का भविष्य उन्हीं के हाथ में है। शिक्षक स्कूल के प्रदर्शन और दक्षता में एक बड़ा बदलाव करता है। एन ई पी1986 में एक पूरा खंड "शिक्षक" को समर्पित है, जिसमें कहा गया है - "शिक्षक की स्थिति समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक लोकाचार को दर्शाती है |" ऐसा कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति शिक्षकों से ऊपर नहीं हो सकता है। इस बदलते युग में जहां शिक्षा की गुणवत्ता पर ध्यान केंद्रित किया गया है वहीँ इस गुणवत्ता की कुंजी हमारे शिक्षकों के पास उनके शिक्षणशास्त्र और विषय ज्ञान में सुधार और अद्यतन द्वारा है। शिक्षकों के लिए सेवा-पूर्व प्रशिक्षण कितना भी अच्छा क्यों न हो, उनसे उन सभी चुनौतियों के लिए तैयार होने की उम्मीद नहीं की जा सकती, जिनका वे अपने पूरे करियर में सामना करते हैं । गुणवत्तापूर्ण शिक्षण को बनाए रखने और शैक्षिक प्रणाली में प्रभावी शिक्षकों को बनाए रखने के लिए, शिक्षकों को सेवाकालीन व्यावसायिक विकास के अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है।

शिक्षकों का विकास ,शिक्षकों के सीखने का एक अंतहीन चक्र है जो प्रारंभिक शिक्षक-प्रशिक्षण से शुरू होता है और तब तक जारी रहता है जब तक शिक्षक उस व्यवसाय में रहता है। जबकि आज विश्व नित्य-प्रति विकास की ओर अग्रसर है | अधिकांश अन्य पेशेवर समूहों की तरह, शिक्षकों का प्रारंभिक प्रशिक्षण उन्हें जीवन भर के लिए पर्याप्त नहीं होगा। उन्हें अपने पूरे जीवनकाल में अपने स्वयं के ज्ञान, तकनीकों और शिक्षणशास्त्रीय कौशल को अद्यतन करने और सुधारने की आवश्यकता है।

शिक्षक हमेशा सीखने वाले होते हैं, चाहे उनकी औपचारिक शिक्षा और तैयारी कितनी भी व्यापक या उत्कृष्ट क्यों न हो। भारत में शिक्षण एक बहुत ही महत्वपूर्ण व्यवसाय है |एक अद्यतन ज्ञानसम्पन्न शिक्षक विद्यार्थियों के सीखने में सुधार करता है। शिक्षक के व्यावसायिक विकास के माध्यम से छात्रों के सीखने के परिणामों पर प्रभाव को तब अनुभव किया जा सकता है जब उनकी भूमिका एवं अपने व्यवसाय के विषय में उनका दृष्टिकोण और धारणाएं बदल जाती हैं। शिक्षक दक्षता विकास एक सतत प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षक अपनी सफलता और असफलताओं से सीखते हैं |इसके लिए सतत व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम एक प्रभावी प्रयोग सिद्ध हुआ है | सतत व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम ने शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में योगदान

दिया है । वर्तमान में शिक्षक अपने अभ्यास के बारे में अधिक चिंतनशील और अधिक जागरूक हो गए। इसके अलावा, उन्होंने शिक्षण-मूल्यांकन के संबंध में अपने शिक्षणशास्त्रीय ज्ञान और विषयवस्तु के ज्ञान में बदलाव देखा (डोरिट टैटेलबाम ,राहेल ममलोक नामान ,मिरियम कार्मेलिकऔरएवी हॉफस्टीन ,2008)। शिक्षकों ने बताया कि उनकी शिक्षण स्थिति, योग्यता, लिंग या उम्र की परवाह किए बिना उन्होंने **सतत व्यावसायिक शिक्षा** कार्यशाला का सकारात्मक अनुभव किया है | (*ए लेसिंग, एम डी विट 2007)*।

वर्तमान परिदृश्य

सेवारत शिक्षकों को अपने ज्ञान को अद्यतन करने, प्रक्षिक्षण के नवाचारों की जानकारी तथा शैक्षणिक प्रयोगों के प्रभाव की जाँच शिक्षक प्रशिक्षण का चिंतनीय विषय है | यद्यपि ग्रीष्मावकाश के दौरान शिक्षकों के लिए आवश्यकता आधारित सेवाकालीन कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, लेकिन यदि वे सत्र के दौरान किसी समस्या, चुनौती या कुछ प्रश्नों का सामना करते हैं तो उन्हें कैसे हल किया जाए। यदि इसके लिए कुछ सेवाकालीन कार्यक्रमों के स्थान पर शिक्षकों में विद्यालय आधारित सतत व्यावसायिक कार्यक्रम का प्रावधान हो तो इस समस्या का समाधान हो सकता है। शिक्षकों को एक ऐसा मंच प्रदान करने की आवश्यकता है जहां वे सीखने को साझा कर सकें, एक-दूसरे का निरीक्षण कर सकें, केंद्रित प्रतिक्रिया प्रदान कर सकें और अपने कक्षा अभ्यास में सुधार कर सकें। सतत व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम नवोन्मेषी शिक्षण के अभ्यास को बढ़ावा देता है; शिक्षकों को अपने स्वयं के शिक्षण को सुधारने और प्रतिबिंबित करने के लिए एक मंच प्रदान करता है (बिन एचजे सुहैली, एचजे एडे शाहरेन; खालिद, मदीहा 2011)।

शिक्षक विकास समन्वयक (टी.डी.सी) कार्यक्रम

शिक्षक विकास समन्वयक कार्यक्रम ,एससीईआरटी, दिल्ली द्वारा सभी शिक्षा निदेशालयों में शिक्षक शिक्षा का एक सहयोगी नेटवर्क बनाने की दृष्टि से शुरू की गई एक पहल है। यह कार्यक्रम मुख्य रूप से कई प्लेटफार्मों के माध्यम से पेशेवर विकास पर केंद्रित है | यह एक सह-शिक्षण वातावरण की परिकल्पना करता है, जहां सभी शिक्षकों को शिक्षा व्यवसाय विकास की यात्रा का अनुभव करने का अवसर मिलता है। आज शिक्षक विकास समन्वयक (टी.डी.सी) कार्यक्रम दिल्ली के 1029 स्कूलों में लागू होकर दिल्ली राज्य के सभी 13 जिलों में सफलतापूर्वक पहुंच गया है। जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) टी.डी.सी कार्यक्रम में शैक्षिक नेतृत्व करते हैं | जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान अपने 24 सहयोगी मार्गदर्शक शिक्षक (मेन्टर शिक्षक) के साथ कार्यक्रम के संचालन में केंद्रीय भूमिका निभा

रहे हैं । जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान के साथ-साथ, 200 मेंटर टीचर (एमटी) भी स्कूलों में कार्यरत टी.डी.सी को नियमित रूप से सहायता प्रदान कर रहे हैं, साथ ही स्तिर (STIR) संगठन (गैर सरकारी संगठन) के 9 प्रोग्राम मैनेजर (प्रत्येक जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान में एक) दिल्ली के विभिन्न जिलों में टी.डी.सी कार्यक्रम का सञ्चालन कर रहे हैं। इस कार्यक्रम में जुड़ाव के विभिन्न रास्ते और मंच बनाए गए हैं , जिसका उद्देश्य शिक्षकों के व्यावसायिक विकास पर है | इसमें दैनिक आधार पर 30-30 मिनट के सत्र होते हैं , जिसमें एक आयाम पर सत्र और मासिक बैठक आदि शामिल हैं। मासिक नेटवर्क बैठकों को तीन बैठकों के सेट में संरचित किया जाता है जिसे सीखने में सुधार चक्र 'लर्निंग इम्प्रूवमेंट साइकिल' (एलआईसी) कहा जाता है। एलआईसी एक सुधार प्रक्रिया है जिसे विशेष रूप से कक्षा अभ्यास में परिवर्तन का समर्थन करने के साथ-साथ शिक्षक पेशेवर मानसिकता और व्यवहार विकसित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। इस कार्यक्रम में शिक्षकों को प्रगति देखने, एक साथ कुछ बनाने और एक साझा लक्ष्य की दिशा में काम करने के अवसर प्रदान करते हुए प्रेरणा देने और व्यवहार परिवर्तन का समर्थन करने के लिए आवश्यक सभी सामग्री संकलन शामिल हैं।

मेंटर टीचर्स, STIR के प्रोग्राम मैनेजर और प्रत्येक जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान के अधिगम सहायक, शिक्षक समन्वयक को प्रशिक्षण देते हैं और निरंतर सहायता प्रदान करते हैं।

कार्यक्रम के उद्देश्य

- शिक्षण और सीखने में प्रभावी ढंग से सुधार करने के लिए सलाहकार शिक्षकों, शिक्षक विकास समन्वयकों और शिक्षकों के मानसिकता और शिक्षण व्यवसाय दक्षता का विकास करना।
- सहपाठी अधिगम के लिए शिक्षक प्रेरणा और दृष्टिकोण बढ़ाना।
- शिक्षकों के कक्षा अभ्यास को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए सुधार करना और समझ के साथ सीखने में सहायता करना।
- छात्र -अधिगम सुधर विशेषतः शिक्षण कौशल का विकास ।

शिक्षक विकास समन्वयक कार्यक्रम में हितधारकों की भूमिकाएँ और उत्तरदायित्व :

शिक्षक विकास समन्वयक

शिक्षक विकास समन्वयक (टी.डी.सी) स्कूल के एक प्रेरित शिक्षक को दी गई एक नई और समर्पित भूमिका है, जिसे स्कूल के एक महत्वपूर्ण रणनीतिक लक्ष्य को प्राप्त करने और स्कूलों को एक अच्छे शिक्षण संस्थानों के रूप में बनाने में शिक्षकों की सहायता करने के लिए विकसित किया गया है। । शिक्षक विकास समन्वयक स्कूल में एक सुसंगत और

सामंजस्यपूर्ण शैक्षणिक विकास और प्रबंधन में योगदान देता है जहाँ हर कोई सीख सकता है। शिक्षक विकास समन्वयक कार्यक्रम "एक प्रणाली है जहां हर कोई सीख सकता है" के दृष्टिकोण को प्राप्त करने के लिए प्रधानाचार्य के मार्गदर्शन में सभी स्कूल शिक्षकों के साथ सीधे काम करता है।

स्कूल में शिक्षक विकास समन्वयक की भूमिका:

1. स्कूल शिक्षक प्रशिक्षण गतिविधियों की रचना । कक्षा अभ्यास के सीखने और अनुभव/चुनौती साझा करने के लिए शिक्षक को सुविधा प्रदान करना।
2. कक्षा के अवलोकनों के बाद शिक्षकों को विकासात्मक केन्द्रित प्रतिपुष्टि प्रदान करने वाले शिक्षक के लिए उपलब्ध दैनिक आधे घंटे के शैक्षिक स्लॉट में अकादमिक संवर्धन सत्रों की रचना, डिजाइन और सुविधा प्रदान करना।
3. विद्यालय में बेहतर शिक्षण अभ्यास लागू करना |
4. शिक्षकों को पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र के नवीनतम सन्दर्भों से अवगत कराना।
5. कक्षा अवलोकन के बाद विकासात्मक, केंद्रित प्रतिक्रिया प्रदान करना।

एक शिक्षक विकास समन्वयक के रूप में एक स्कूल में शिक्षकों के समग्र व्यावसायिक विकास की भूमिका निभाने के अलावा,एक शिक्षक समूह / नेटवर्क का निर्माण और नेतृत्व करना जिसे अकादमिक संसाधन टीम (एआरटी) कहा जाता है जिसमें स्वयंसेवी शिक्षक शामिल होते हैं। यह एक सतत, अभ्यास का समुदाय है जिसके माध्यम से स्कूल के सभी शिक्षक अपनी कक्षा की प्रथाओं और बच्चों के सीखने में सुधार कर सकते हैं।

उपर्युक्त भूमिकाओं को प्राप्त करने के लिए टी.डी.सी द्वारा अपने स्कूलों में निम्नलिखित रणनीतियों को अपनाया जाता है:-

1. स्कूल के शिक्षकों और छात्रों के साथ संपर्क स्थापित करना |
2. शिक्षकों को कमियों की पहचान करने और उनके अंतरालों को भरने के लिए शिक्षण रणनीतियों को अनुकूलित करने के लिए मूल्यांकन तकनीकों का उपयोग करने में मदद करना |
3. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्रों को सक्रिय रूप से संलग्न करने के लिए पाठ गतिविधियों की योजना बनाने और अनुक्रमित करने में शिक्षकों की मदद करना |
4. शिक्षकों को कुछ नवीन तकनीकों, जैसे नाम टैग, क्लास ट्री, विभेदित समूह, सहपाठी अधिगम (पीयर लर्निंग), समझ और प्रतिक्रिया को चिह्नित करना (साइन फॉर अंडरस्टैंडिंग एंड रिस्पॉन्स), उद्घाटन दिनचर्या (ओपनिंग रूटीन), मुख्य गतिविधि, समापन दिनचर्या (क्लोजिंग रूटीन), विस्तृत प्रश्न, पुनर्प्राप्ति अभ्यास (रिट्रीवल प्रैक्टिस), अभी करें (डू नाउ), हाथ नहीं उठाएं (नो हैंड्स)आदि को एकीकृत करने के लिए प्रेरित करना।

मेंटर शिक्षक (सहयोगी मार्गदर्शक शिक्षक) :

1. टी.डी.सी को उनके स्कूलों में शिक्षण को बेहतर बनाने में अधिक प्रभावी होने में मदद करने पर ध्यान केंद्रित करने के लिए उत्कृष्ट मार्गदर्शन प्रदान करना।
2. टी.डी.सी को शिक्षाशास्त्र के विभिन्न तत्वों के माध्यम से सोचने में मदद करने के लिए संसाधनों और विचारों तक पहुंच प्रदान करना |

जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान अधिगम सहायक:

1. टी.डी.सी के लिए उत्कृष्ट सुविधा का मॉडल और शिक्षण एवं सीखने में सुधार पर केंद्रित एक सकारात्मक और रचनात्मक स्वर प्रदान करना |
2. शिक्षण प्रथाओं में सुधार के लिए टी.डी.सी और शिक्षकों को केंद्रित रखने के लिए व्यवस्था के भीतर चैंपियन के रूप में कार्य करना |

कार्यक्रम प्रबंधक:

1. उप निदेशक शिक्षा को अपनी जिला टीमों के साथ कार्य करने के लिए सक्रिय रूप से काम करना - बैठक और एजेंडा की संरचना करना |
2. शिक्षकों और स्कूलों की प्रगति को पहचानने और ज्ञान को साझा करने के लिए संसाधन और मंच प्रदान करना
3. सभी हितधारकों को उपयोगी प्रदत्त (डेटा) प्रदान करने और प्रदत्तों के आधार पर विश्लेषण और योजना बनाने के लिए रुपरेखा तय करना |

शिक्षक:कक्षा अभ्यासों के बारे में जानकारी देने के लिए एआरटी शिक्षकों की कक्षाओं का निरीक्षण करना

एआरटी सदस्य (अकादमिक संसाधन टीम):

1. कक्षा के नए अभ्यासों को जांचने और सहकर्मियों के साथ अपने अनुभव साझा करने के लिए तैयार करना |
2. सभी छात्रों के सीखने पर ध्यान देना और विकास मानसिकता को प्रोत्साहित करना |

विद्यालय प्रमुख:

1. शिक्षकों को नियमित रूप से उन शिक्षण विचारों को साझा करने के लिए आमंत्रित करना, जिन्हें उन्होंने व्यापक कर्मचारियों के साथ प्रभावी पाया।
2. शिक्षकों से नियमित रूप से उनके शिक्षण के बारे में पूछना तथा शिक्षण और सीखने पर ध्यान केंद्रित करना |

3. शिक्षण नवाचार, रचनात्मकता और चैंपियन शिक्षकों को प्रोत्साहित करना तथा उनकी सराहना करना |

सीखने में सुधार का चक्र (एलआईसी):

सीखने में सुधार का चक्र शिक्षकों के लिए उनकी कक्षा के अभ्यासों को प्रतिबिंबित करने का एक ठोस तरीका है। यह अभ्यासकर्ताओं को समस्या की पहचान करने, समाधान विकसित करने, समाधानों को लागू करने, समाधान के प्रभाव को प्रतिबिंबित करने, समाधान को अद्यतन/अनुकूलित करने, अंत में सफलता साझा करने और मूल्यांकन करने के लिए मंच प्रदान करता है। इस सीखने के सुधर - चक्र के माध्यम से शिक्षक अभ्यास कर सकते हैं और अपनी जीवन भर की सीखने की यात्रा का आनंद ले सकते हैं। एलआईसी में निम्नलिखित तीन चरण होते हैं:

1. समस्या को पहचानें और उसका विचार करें |

2. चिंतन करें और अद्यतन करें |
3. साझा करें और मूल्यांकन करें।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पहला लर्निंग इम्प्रूवमेंट साइकिल (एलआईसी) अगस्त 2017 के महीने में आयोजित किया गया था। हम यहां एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं कि एलआईसी थीम (बिल्डिंग कनेक्ट) "कैसे जोड़े" के साथ पहला टी.डी.सी कार्यक्रम कैसे आयोजित किया गया था?

विवरण प्रस्तुत करने से पहले यह उल्लेख करना आवश्यक है कि जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान के अधिगम सहायक ने भी इस थीम पर पहले अपने प्रशिक्षण में भाग लिया, जिसके बाद जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान में मेंटर सह-शिक्षण सत्र का आयोजन अधिगम सहायक द्वारा किया गया और उसके बाद टी.डी.सी सह-शिक्षण सत्र का आयोजन किया गया। डाइट में सह-शिक्षण सत्र में भाग लेने के बाद टी.डी.सी ने शैक्षिक संसाधन टीम (एआरटी) शुरू करने और बनाने के लिए अपने संबंधित स्कूलों में सह-शिक्षण सत्र आयोजित किए ।

जब भी टी.डी.सी द्वारा स्कूलों में एआरटी बैठक आयोजित की जाती है तो उन्हें फीडबैक के रूप में गूगल फॉर्म भरना होता है। जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान में, एलआईसी के बारे में विचार करने और जिला विशिष्ट योजना के साथ मेंटर्स,जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान के अधिगम सहायक और प्रोग्राम मैनेजर्स के साथ मासिक बैठकें आयोजित की जाती हैं। तीन और चीजें जो एलआईसी में अंतर्निहित हैं, वे हैं एक से एक सत्र, तीस मिनट का सत्र और कक्षा अवलोकन।

1. **मासिक एआरटी बैठकें :**

डाइट में टी.डी.सी सह-शिक्षण सत्र के बाद, टी.डी.सी एलआईसी के विषय पर चर्चा करने के लिए एआरटी एक बैठक आयोजित करता है जिसका अभ्यास किया जाता है। एआरटी एक के बाद सदस्य एलआईसी के चक्र का पालन करते हैं और एआरटी दो और तीन का संचालन करते हैं।

2. **दैनिक 30 मिनट की बैठक :**

30 मिनट की बैठक का उद्देश्य स्कूल में अकादमिक चर्चा की संस्कृति विकसित करना है जो इसे एक उत्कृष्ट शिक्षण संगठन के रूप में विकसित करने पर केंद्रित है और इसलिए "एक शिक्षा प्रणाली जहां हर कोई सीखता है" के समग्र दृष्टिकोण का हिस्सा प्राप्त करना है।

3. एक से एक व्यक्तिगत सत्र स्कूल में अधिक व्यक्तिगत चर्चा करने के लिए एक उपयोगी तरीका सिद्ध होता है।

सीखने के सुधार चक्र का महत्व :

हम कह सकते हैं कि एलआईसी टी.डी.सी कार्यक्रम का मूल है जो हितधारकों को अभ्यास और सीखने के लिए एक मंच प्रदान कर रहा है ताकि निरंतर सुधार और मूल व्यवहार और हितधारकों के दिमाग को विकसित किया जा सके। एलआईसी के माध्यम से शिक्षक, शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया के दौरान चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, अपने साथियों के साथ साझा कर रहे हैं, दूसरों के साथ सहयोग कर रहे हैं, चुनौतियों को दूर करने के लिए कक्षा अभ्यास कर रहे हैं, अपने कार्यों के बारे में गंभीर रूप से सोच रहे हैं, मूल्यांकन कर रहे हैं, समस्याओं का समाधान कर रहे हैं और अपनी सफलता का जश्न मना रहे हैं। ऐसा करके वे मानसिकता बदलने की राह पर हैं।

पहली एलआईसी में थीम बिल्डिंग कनेक्ट की रणनीतियाँ :

1. **बच्चों के नाम जानना :** बच्चों के नाम जानने और उन्हें एक-दूसरे को जानने में मदद करने के लिए नाम का खेल, बच्चों के नाम जानना और उनका उपयोग करना वास्तव में एक बुनियादी लेकिन बहुत प्रभावी तरीका है जिससे बच्चों को स्वयं को कक्षा में मूल्यवान महसूस करने में मदद मिलती है।

2. **कक्षा में आने पर बच्चों का अभिवादन करना** : कक्षा में आने पर बच्चों का स्वागत करने का अनुभव करने से इस बात पर बहुत प्रभाव पड़ता है कि वे शिक्षक के साथ अपने दिन या पाठ को कैसे सीखते हैं।

3. **नाम टैग गतिविधि** : बच्चों को अपने स्वयं के व्यक्तिगत पहचान टैग बनाने के लिए कहा जा सकता है और उन्हें अपना नाम लिखने और अपनी तस्वीर या अपने पसंदीदा जानवर या कुछ और बनाने के लिए कहा जा सकता है।

4. **बच्चों के काम को दृश्यमान बनाना** : कक्षा में सीखने से संबंधित कोई भी सामग्री चिपकाएँ या लटकाएँ। इससे बच्चों में कक्षा के लिए स्वामित्व की भावना विकसित होती है।

निष्कर्ष: शिक्षकों का विकास शिक्षकों के सीखने का एक अंतहीन चक्र है जो प्रारंभिक शिक्षक प्रशिक्षण से शुरू होता है और जब तक शिक्षक इस व्यवसाय से जुड़ा रहता है तब तक जारी रहता है। दिल्ली के स्कूलों में टी.डी.सी कार्यक्रम शिक्षकों को लगातार व्यावसायिक विकास प्राप्त करने के लिए एक मंच प्रदान कर रहा है। इस कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षकों को सीखने में बाधा की पहचान करने, समाधान खोजने, उनके समाधान को लागू करने, नवाचार के प्रभाव को प्रतिबिंबित करने, साझा करने, अद्यतन करने, अभ्यास करने और मूल्यांकन करने के अवसर मिल रहे हैं। शिक्षकों का आवश्यकता आधारित व्यावसायिक विकास हो रहा है। सतत व्यावसायिक विकास के माध्यम से शिक्षक छात्रों और उनके साथी शिक्षकों के साथ जुड़ाव विकसित करने, अपने छात्रों को समझने, उनकी प्रतिक्रियाओं को समझने के लिए विकास की मानसिक यात्रा पर हैं, जो स्कूल आधारित मूल्यांकन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इससे शिक्षकों को पूर्व नियोजित गतिविधियों का उपयोग करके पाठ का संचालन करने के अवसर मिल रहे हैं। शिक्षकों को अपनी कक्षा के वातावरण को जीवंत बनाने ,छात्रों को साझा करने, समूहों में काम करने और आलोचनात्मक रूप से सोचने के अवसर मिल रहे हैं। इस माध्यम से शिक्षक सहयोग कर रहे हैं, अपने अनुभव साझा कर रहे हैं, अपने सुविधा कौशल और अपनी मानसिकता बदल रहे हैं। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि शिक्षक और अन्य हितधारक अपने व्यावसायिक विकास का आनंद ले रहे हैं।

डॉ. ऍम.ऍम.रॉय एवं डॉ. मीना सहरावत
सहायक आचार्य (पाठ्यचर्या और शिक्षण शास्त्र विभाग)
जिला मंडलीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान,घुम्मन हेड़ा ,नई दिल्ली

संदर्भ:

1. *ए लेसिंग, एम डी विट (2007) :* द वैल्यू ऑफ कंटीन्यूअस प्रोफेशनल डेवलपमेंट: टीचर्स परसेप्शन, *साउथ अफ्रीकन जर्नल ऑफ एजुकेशन* वॉल्यूम 27 (1) 2007: पीपी. 53-67

2. डोरिट टेटेलबौम ,राहेल ममलोक नामान ,मिरियम कार्मेलिकऔरएवी हॉफस्टीन (2008)एक सतत व्यावसायिक विकास कार्यक्रम में भाग लेने और रसायन विज्ञान

प्रयोगशाला में जांच दृष्टिकोण को लागू करने केदौरान शिक्षकों के परिवर्तन के साक्ष्य,*विज्ञान शिक्षा के अंतरराष्ट्रीय जर्नल,* खंड 30

3. सुहाली और अन्य (2011) मैथमेटिक्स टीचर्स परसेप्शन ऑफ़ लेसन स्टडी एज़ ए कंटीन्यूअस प्रोफेशनल डेवलपमेंट प्रोग्राम, *जर्नल ऑफ़ साइंस एंड मैथमेटिक्स एजुकेशन इन साउथ ईस्ट एशिया*, v34 n1 p 67-89 2011

4. एससीईआरटी दिल्ली (2017) शिक्षक विकास समन्वयक हैंडबुक, लर्निंग इम्प्रूवमेंट साइकिल कनेक्ट, नई दिल्ली: एससीईआरटी।

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिष्य की संकल्पना

डॉ. प्रवीण कुमार तिवारी

शिक्षा का समस्त आयोजन शिक्षार्थी के लिए ही होता है। इसीलिए भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षार्थी का भी अत्यंत सम्मान था। शिक्षार्थी के लिए ब्रह्मचारी, विद्यार्थी, शिष्य, छात्र, वटु, वटुक, अन्तेवासी आदि पदों का प्रयोग होता था। **ब्रह्मचारी** पद के सम्बन्ध में कहा गया है - "ब्रह्मणि विद्यायाम् चरति इति ब्रह्मचारी" अर्थात् जो ब्रह्म अर्थात् ज्ञान (ज्ञानं ब्रह्म) के क्षेत्र में विचरण करता है ,वह ब्रह्मचारी है। प्राचीन परम्परा में विधान था कि स्नातक होने तक शिष्य विवाह नहीं कर सकता। उसके लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अनिवार्य था; इसीलिए वह ब्रह्मचारी कहलाता था। इसी कारण से अध्ययन काल को ब्रह्मचर्य आश्रम भी कहा जाता था।

शिक्षार्थी के लिए एक और प्रचलित पद '**विद्यार्थी**' है। विद्यार्थी पद के संदर्भ में कहा गया है कि "विद्यमर्थयते कामयते वेति विद्यार्थी" अर्थात् जो गुरु के समीप जाकर विद्या प्राप्त करने की कामना करता है वह विद्यार्थी है। इसी प्रकार शिक्षार्थी पद के संदर्भ में कहा गया है कि "शिक्षामर्थयते कामयते वेति शिक्षार्थी" अर्थात् जो गुरु के समीप जाकर शिक्षा प्राप्त करने की कामना करता है वह शिक्षार्थी है।

एक अन्य प्रचलित पद '**शिष्य**' की निष्पत्ति 'शास्' धातु से होती है। शिष्य शब्द 'शास्+यत्' से बना है जिसका अर्थ है- वह, जिसका अनुशासन गुरु के द्वारा किया जाता है। एक और प्रचलित पद '**छात्र**' की निष्पत्ति 'छद्' या 'छत्र' धातु से हुई है। दोनों धातु आवृत करने के अर्थ में हैं। छात्र शब्द 'छद्+ष्ट्रन्' या 'छत्र+अण्' से बना है। इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि "छत्र गुरोर्वे त्वावरणन् शीलं यस्य" अर्थात् छत्र के समान जो गुरु से आवृत्त होता है या आवृत्त करता है वह छात्र है। इसका अर्थ है कि जो निरंतर गुरु की छत्रछाया में रहता है वह छात्र है। छात्र और आचार्य में अधिक से अधिक व्यक्तिगत सम्पर्क हो जिससे वह गुरु की छत्रछाया में रह सकें, इसी उद्देश्य से भारतीय परम्परा में एक आचार्य के सानिध्य में पंद्रह से कम विद्यार्थी ही अध्ययन करते थे *(वेदमित्र, 1964, पृ. 21)*। नालन्दा विद्यापीठ में छात्रों की संख्या नौ हज़ार, और अध्यापकों की संख्या एक हज़ार थी; अर्थात् प्रति अध्यापक छात्रों की संख्या नौ थी *(अल्तेकर, ए. एस., 1968, पृ. 65)*।

विद्यार्थियों के लिए विद्या आरम्भ करने की आयु:

भारतीय परम्परा में अनौपचारिक रूप में जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त विद्या ग्रहण करने के अनेकानेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। परंतु औपचारिक रूप में इसके लिए समय निर्धारित था जो उपनयन संस्कार से प्रारम्भ होकर समावर्तन संस्कार तक चलता था। परम्परा में विभिन्न वर्णों के लिए उपनयन संस्कार हेतु आयु भिन्न-भिन्न थी। महाराज मनु का कथन है कि-

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विश: ॥ *(कौंडिन्यायन, एस. (सं.), 2008, मनुस्मृति 2/36)*

अर्थात् उपनयन संस्कार हेतु ब्राह्मण बालकों के लिए आठ वर्ष, क्षत्रिय बालकों के लिए ग्यारह वर्ष और वैश्य बालक के लिए बारह वर्ष की आयु निर्धारित है।

यद्यपि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य आदि के लिए उपनयन संस्कार की आयु सामान्यतः 11-12 वर्ष है, तथापि महाराज मनु ने आगे यह भी कहा है कि-

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे ।

राज्ञो बलार्थिन: षष्ठे वैश्यस्येहाऽर्थिनोऽष्टमे ॥ *(कौंडिन्यायन, एस. (सं.), 2008, मनुस्मृति 2/37)*

अर्थात्, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के इच्छुक ब्राह्मण बालक का पाँच वर्ष की आयु में, शौर्य प्राप्त करने की इच्छा वाले क्षत्रिय बालक का छह वर्ष की आयु में, और धन प्राप्त करने की इच्छा वाले वैश्य बालक का आठ वर्ष की आयु में उपनयन किया जाना चाहिए।

अध्ययन की अवधि:

भारतीय परम्परा में अनेक धर्मशास्त्रों ने अध्ययन की अवधि के सम्बन्ध में निर्देश दिया है। छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णन प्राप्त होता है कि श्वेतकेतु ने पिता के आदेश से बारह वर्षों तक वेद का अध्ययन किया और चौबीस वर्ष की आयु होने पर यह अध्ययन पूर्ण हुआ -

"स ह द्वादशवर्षमुपेत्य चतुर्विंशतिवर्ष: सर्वान् वेदानधीत्य...." *(छान्दोग्य उपनिषद्, सम्वत् 2070, 6/1/2)*

छान्दोग्य उपनिषद् में ही सत्यकाम जाबाल के बारह वर्षों तक अध्ययन करने के उपरांत समावर्तन का वर्णन प्राप्त होता है (छान्दोग्य उपनिषद्, सम्वत् 2070, 8/11/3)।

तीनों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) का अध्ययन करने के लिए किए जाने वाले और 36 वर्षों तक चलने वाले व्रत को गुरुकुल में ब्रह्मचारी को सम्पन्न करना चाहिए। अथवा उसके आधे अर्थात् 18 वर्षों तक चलने वाले व्रत को, अथवा उसके चौथाई अर्थात् 9 वर्षों तक चलने वाले व्रत को अथवा वेद के ग्रहण अर्थात् अध्ययन पूर्ण होने पर समाप्त होने वाले व्रत को सम्पन्न करना चाहिए। स्वशाखावेदादिक्रम से तीनों वेदों को पढ़कर अथवा दो वेदों को पढ़कर अथवा स्वशाखावेदरूप एक वेद को ही मंत्र-ब्राह्मणादि क्रम से पढ़कर अस्खलित ब्रह्मचर्य से युक्त पुरुष गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

शिष्य की पात्रता :

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है "श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:*(श्रीमद्भगवद्गीता, सम्वत् 2060, 4/39)*" अर्थात् श्रद्धावान्, साधनपरायण और जितेन्द्रिय मनुष्य ज्ञान को प्राप्त करता है। गीता का यह कथन भारतीय परम्परा में ज्ञान प्राप्त करने का या शिष्य बनने का अधिकारी कौन है, इसकी सुन्दर व्याख्या करता है। *शिष्यत्व की प्रथम शर्त* है ज्ञान के प्रति श्रद्धा, क्योंकि इसके बिना आचार्य के कोटिश: प्रयासों के बावजूद भी शिष्य में ज्ञान का अंकुरण सम्भव नहीं है। सभी प्रयास वैसे ही निष्फल होंगें जैसे ऊसर में बोया जाने वाला बीज निष्फल होता है। *शिष्यत्व की दूसरी शर्त* है साधनपरायण होना, अर्थात् ज्ञानप्राप्ति के मार्ग पर चलने हेतु आवश्यक पुरुषार्थ करने का सामर्थ्य होना। परम्परा में साधनचतुष्टय का वर्णन आता है। विद्या का आरंभ करने से पहले जिज्ञासु को "साधन चतुष्टय" से संपन्न होना नितान्त आवश्यक है।*प्रथम साधन*-नित्यानित्यवस्तुविवेक, *द्वितीय साधन*-ऐहिक एवं पारलौकिक विषयभोगों के प्रति प्रखर वैराग्य,*तृतीयसाधन*-साधन षट्क अर्थात् शम,दम उपरति,तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा - ये छह प्रकार की साधनाएँ और *चतुर्थ साधन*- मुमुक्षत्व;ये सभी साधन मिलकर **"साधन चतुष्टय "** कहलाते हैं। जो इसमें पूर्णत्व पाता है वही ज्ञान का 'अधिकारी' होता है।*शिष्यत्व की तीसरी शर्त* है जितेंद्रिय होना। साधन चतुष्टय को अपनाने वाला जितेंद्रिय बनता है। गीता का यह कथन परा और अपरा दोनों विद्याओं के साधकों के लिए है। गुरु शिष्य की विद्याध्ययन हेतु श्रद्धा व योग्यता का छह महीने से एक वर्ष तक परीक्षण करता था, उसके पश्चात ही उसे

प्रवेश देता था। गुरु एक वर्ष के पूर्व शिष्य को श्रद्धा व योग्यता की कमी के आधार पर वापस भेज सकता था।

वेदाध्यापन करने वाले विप्र को भले ही विद्या के साथ ही मरना पड़े, तो भी घोर आपत्काल में भी वह इस विद्या को मरुभूमि में न बोये, अर्थात् अपात्र शिष्य को विद्या कभी न दे। विद्या ने विप्र के पास आकर ऐसा कहा कि "मैं आपका ख़ज़ाना हूँ, मेरी रक्षा कीजिए, मेरे गुण में भी दोष देखने वाले को मुझे मत दीजिए; ऐसा करने से मैं अधिकतम प्रभावशालिनी बनूँगी "। विद्या ने विप्र को कहा कि "जिसको आप छलछद्मरहित और जितेंद्रिय ब्रह्मचारी जानते हों, ऋषियों द्वारा अर्जित विद्यारूपी निधि की रक्षा करने वाले और प्रमाद न करने वाले उसी विप्र को मुझे बताइए "। ठीक ऐसा ही संदर्भ निरुक्त में प्राप्त होता है *(निरुक्तम्, 2006, वर्ज्य-शिष्य-निरूपणम्, 2/1)*।

गुरुकुलों व विद्यापीठों में शिष्य की पात्रता की अनिवार्य परीक्षा होती थी। तक्षशिला विद्यापीठ में अनेक आचार्यकुल थे। वहाँ के आचार्य प्रवेश के समय छात्रों से विविध प्रश्न पूछते थे। आचार्य के मानदंडों पर खरे उतरने वाले विद्यार्थी ही प्रवेश पाते थे। नालन्दा व विक्रमशिला विद्यापीठों में प्रवेश प्रक्रिया हेतु द्वार-पण्डितों की व्यवस्था थी। प्रवेश प्रक्रिया अत्यंत कठिन थी।

प्राचीन शास्त्रकारों व आचार्यों ने शिष्य की योग्यता और गुणों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है:

निरुक्त में कहा गया है कि - गुरु के प्रति भक्ति रखने वाले, श्रद्धालु, मेधावी, तपस्वी, अनिंदक, अकपटी, संयमी, अद्रोही, दूसरे को कष्ट न पहुँचाने वाले, पवित्र, अप्रमादी, सावधान, बुद्धिमान, ब्रह्मचारी और विद्या की रक्षा करने वाले में ही शिष्य बनने की योग्यता है *(निरुक्तम्, 2006, वर्ज्य-शिष्य-निरूपणम्, 2/1)*।

महाराज मनु का मत है-

> आचार्यत्पुत्र:शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिक: शुचि: । आप्त: शक्तोऽर्थद: साधु: स्वोऽध्याप्यो दश धर्मत: ॥ *(कौंडिन्यायन, एस. (सं.), 2008, मनुस्मृति 2/109)*

अर्थात्, आचार्य का पुत्र, सेवा करने वाला, अन्य ज्ञान देने वाला, धर्मपरायण, छलछद्म रहित, बान्धव, विद्या के ग्रहण करने में और धारण करने में समर्थ, दान देने वाला, सच्चरित्र और अपना सगोत्र-सपिंडादि - ये दश प्रकार के शिष्य धर्मानुसार पढ़ाने योग्य हैं।

याज्ञवल्क्य का मत है-

> कृतज्ञोऽद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयक: ।
> अध्याप्या धर्मत: साधु: शक्ताप्तज्ञानवित्तदा: ॥ *(राय, जी. एस. (सं.), 2013, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/28)*

अर्थात्, कृतज्ञ, अद्रोही, मेधावी, पवित्र (शुचि), रोगरहित (कल्प), ईर्ष्या न करने वाले (अनसूयक), साधु, समर्थ, विश्वस्त, दान देने वाले और अन्य ज्ञान देने वाले शिष्य धर्मानुसार पढ़ाने योग्य हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में भी उपर्युक्त मत का समर्थन किया गया है (छान्दोग्य उपनिषद्, सम्वत् 2070, 8/15/1)। इस प्रकार भारतीय परम्परा में श्रद्धावान् व योग्य शिष्य को ही विद्या प्रदान करने की बात कही गई है। विद्या अपात्र के लिए नहीं है। यहाँ पर कौशल, शिल्प व अन्य कलाओं और विद्या में अंतर है।

ब्रह्मचारी का बाह्य स्वरूप:

भारतीय परम्परा में ब्रह्मचारी के लिए बाह्यस्वरूप और वेशभूषा भी निर्धारित थी । बाह्य परिच्छदों से ही ब्रह्मचारी की पहचान होती थी। सामान्यतः निम्नलिखित परिच्छद ब्रह्मचारी धारण करते थे:

1. वस्त्र :

ब्रह्मचारी के लिए विशेष वस्त्रों की व्यवस्था थी। सामान्यतः ब्रह्मचारी दो वस्त्र पहनते थे, उत्तरीय और अधोवस्त्र। उसके वस्त्र मृग या भेड़ के चर्म के तथा सन, रेशम या कपास के होते थे। आपस्तम्ब सूत्र के अनुसार - "ब्रह्मज्ञान का इच्छुक विद्यार्थी मृगचर्म, सैनिक शिक्षा का इच्छुक विद्यार्थी कपास का वस्त्र और दोनों प्रकार की विद्याओं का इच्छुक दोनों प्रकार का वस्त्र धारण कर सकता है *(आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1932, 1/1/3/9-10)*"। उत्तरीय सामान्यतः चर्म का बना होता था। आपस्तम्ब ने ब्राह्मण छात्र के लिए एष या कृष्ण मृग के चर्म का उत्तरीय प्रयोग करने को कहा है तथा अन्य सभी वर्णों के लिए भेड़ के चर्म को भी स्वीकार किया है - ('हारिणमेणेयं वा कार्ष्णन् वा ब्राह्मणस्य…' (*आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/1/3/7-8*) ।

अधोवस्त्र को वासस् भी कहा जाता था। इस वस्त्र को सन, अतसी के तंतु, दर्भ, ऊन या कपास से बनाया जाता था। मनु का मत है कि ब्राह्मण छात्र को सन के, क्षत्रिय को क्षौम के और वैश्य छात्र को भेड़ की ऊन के या कपास के अधोवस्त्रों का उपयोग करना चाहिए। विभिन्न वर्णों हेतु इन वस्त्रों की रँगाई भी होती थी। वशिष्ठ का मत है कि ब्राह्मण छात्र के लिए श्वेत रंग का, क्षत्रिय छात्र के लिए मंजिष्ठा से लाल रंगे वस्त्र का और वैश्य छात्र के लिए हल्दी से रंगे वस्त्र का उपयोग होना चाहिए।

2. मेखला :

उपनयन के अवसर पर विद्यार्थी को मेखला पहनाई जाती थी जिसे कटिप्रदेश में बाँधा जाता था। यह सामान्यतः मूँज की बनी होती थी। बोधायन ने सभी वर्णों को मूँज की मेखला बाँधने की अनुमति दी है *(बोधायनधर्मसूत्र, , 2/5/13)*। परन्तु विभिन्न वर्णों के छात्रों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की मेखलाओं का विधान भी प्राप्त होता है। वशिष्ठ का मत है कि - "मौंजी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्य शणतांतवी वैश्यस्य - *(वशिष्ठ धर्मसूत्र, 1916, 11/47)*" अर्थात् ब्राह्मण छात्र को मूँज की मेखला, क्षत्रिय छात्र को मूर्वा की मेखला और वैश्य छात्र को सन की मेखला धारण करना चाहिए। मनु *(कौंडिन्यायन, एस., मनुस्मृति 2/42)* तथा बोधायन *(बोधायनधर्मसूत्र, 1991, 2/5/13)* का भी यही मत है।

3. दण्ड :

ब्रह्मचारी को दण्ड धारण करना भी अनिवार्य था। दण्ड किस काष्ठ का हो, इस विषय में कई मत हैं। आश्वालायन का मत है कि 'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य छात्र को क्रमशः पलाश, उदुंबर और बिल्व का दण्ड धारण करना चाहिए। अथवा किसी भी वर्ण का विद्यार्थी किसी भी काष्ठ का दण्ड धारण कर सकता है' *(आश्वालायन गृह्यसूत्र, , 1/10/13)*। महर्षि गौतम के अनुसार ब्राह्मण छात्र को पलाश या बिल्व का, तथा अन्य वर्णों के छात्रों को अश्वत्थ या पीलु काष्ठ का दण्ड धारण करना चाहिए। ये दण्ड ऊपर के सिरे पर मुड़े हुए तथा छाल से मुक्त होने चाहिए। दण्ड को छात्र के मस्तक या नासिका तक ऊँचा होना चाहिए *(गौतम धर्मसूत्राणि, 1/24-28)*।

4. अक्षवलय:

जप विद्यार्थी के जीवन का दैनिक अनिवार्य अंग था। अतः जप के लिए अक्षवलय (जपमाला) रखना आवश्यक था। सामान्यतः अक्षवलय के रूप में धागे में पिरोए गए रुद्राक्ष के दाने होते थे।

5. यज्ञोपवीत:

ब्रह्मचारी के लिए यज्ञोपवीत धारण करना अनिवार्य था। शिष्य के बाएँ कंधे के ऊपर कंठ के पास से सिर के बीच में से दाहिने हाथ की बगल में से निकाल कर आचार्य यज्ञोपवीत धारण कराते थे। यज्ञोपवीत में तीन धागे होते हैं पुनः प्रत्येक धागे में तीन-तीन तार बँटे होते हैं। तीन धागे तीन गुणों, तीन ऋण और त्रिदेव के परिचायक हैं, और नौ तार नौ देवताओं के सूचक हैं, जिसे एक विशेष ग्रंथि से बाँधा जाता है जो ब्रह्म और विद्या का संकेत करती

है। उपनयन संस्कार के समय यज्ञ करते समय पहनाने के कारण इसे यज्ञ + उपवीत अर्थात् यज्ञोपवीत कहा गया। इसे ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। सामान्यतः यज्ञोपवीत कपास के धागों से बनाया जाता था, परंतु सुविधानुसार इसे क्षौम, अतसी या ऊन से भी बनाया जा सकता था। ब्राह्मण छात्र के लिए कपास के, क्षत्रिय के लिए रेशम के और वैश्य के लिए ऊन के यज्ञोपवीत का भी वर्णन मिलता है।

6. केश-विन्यास:

ब्रह्मचारियों के लिए तीन प्रकार के केश-विन्यास का वर्णन मिलता है। प्रथम, सिर को बिल्कुल मुंडवा देना; दूसरा, सिर के मध्य में मोटी शिखा रखकर शेष सिर को बिल्कुल मुंडवा देना; और तीसरा, केशों को विशेष विधि से बाँध दिया जाना। आपस्तम्ब ने तीनों का विधान दिया है *(आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/1/2/31-32)*। गौतम का भी यही मत है ('मुण्डो जटिल: शिखावलश्च - *गौतमधर्मसूत्राणि, 1/29*')।

7. अन्य विशेष चिह्न:

उपर्युक्त सामान्य परिच्छद के अतिरिक्त विशेष विषय के विद्यार्थी विशेष चिह्न को भी धारण करते थे जिससे उनकी विशेष पहचान होती थी। जैसे धनुर्वेद का अभ्यास करने वाले विद्यार्थी धनुष-बाण को धारण किए रहते थे।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध:

भारतीय परम्परा में गुरु-शिष्य-सम्बन्ध विश्व की किसी भी परम्परा से अनूठा है। यहाँ गुरु, शिष्य के साथ पुत्रवत स्नेह रखता था और शिष्य उसके प्रति माता-पिता जैसा ही आदर का भाव रखता था। निरुक्त का कथन है-

तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न *द्रुह्येतकथंचनाह* । *(निरुक्तम्, 2/4)*

अर्थात्, शिष्य का कर्तव्य है कि अपने आचार्य को पितृतुल्य और मातृतुल्य माने तथा किसी भी अवस्था में उसके प्रति द्रोह न करे।

कठोपनिषद् के शान्तिपाठ के अनुसार गुरु और शिष्य दोनों मिलकर प्रार्थना करते हैं -
"ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । (कठोपनिषद्, शान्तिपाठ में उद्धृत)"

अर्थात्, "हे भगवन्! आप हम दोनों गुरु और शिष्य की साथ-साथ रक्षा करें। साथ-साथ हमारा पालन करें। हम दोनों साथ-साथ शक्ति प्राप्त करें। हम दोनों द्वारा अधीत (अध्ययन की गई) विद्या तेजोमयी हो और हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।"

कठोपनिषद् की उपर्युक्त प्रार्थना से यहाँ एक बात स्पष्ट होती है कि अध्ययन के दौरान केवल विद्यार्थी का ही विकास नहीं हो रहा, वरन् आचार्य का भी विकास हो रहा है।

महाराज मनु का मत है कि "द्विज का पहले माँ से जन्म होता है, उपनयन में दूसरा जन्म होता है, वेद के विधान से की जाने वाली अग्निष्टोमादि यज्ञ की दीक्षा में तीसरा जन्म होता है *(कौंडिन्यायन, एस., मनुस्मृति, 2/169)*।" वे आगे कहते हैं-

तत्र यद् ब्रह्मजन्माऽस्य मौंजीबंधचिह्नितम् ।
तत्राऽस्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ।। *(कौंडिन्यायन, एस., मनुस्मृति, 2/170)*

अर्थात्, उन जन्मों में से इसका (शिष्य का) जो मौंजीबंधन अर्थात् उपनयन से विद्याग्रहणार्थ जन्म होता है, उसमें इसकी माता सावित्री (मंत्र) और पिता आचार्य को कहा जाता है।

उपनिषदों में आचार्य व शिष्य के प्रेमपूर्ण सम्बन्धों के कई संदर्भ प्राप्त होते हैं। प्रश्न उपनिषद् में वर्णित है कि सुकेश भारद्वाज ने अपनी जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करने पर अपने आचार्य पिप्पलाद की अर्चना करते हुए कहा था-

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि न: पिता योऽस्माकमविद्याया: परं पारं तारयसीति । *(प्रश्नोपनिषद्, 6/8*

अर्थात्, आप हमारे पिता हैं, क्योंकि आप मुझे अविद्या के पार ले जाकर तार देते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् में कथा आती है कि महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर विदेह राजा जनक ने उनकी अर्चना करते हुए कहा कि "आपको नमस्कार है। मैं और समस्त विदेह सम्पूर्णरूपेण आप ही के हैं *(बृहदारण्यकोपनिषद्, 4/2/4)*।" छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित है कि आचार्य अपने पुत्र और अन्तेवासी को एक ही कोटि में रखता था-

इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्र ब्रूयात ।
प्रणाय्याय वान्तेवासिने । *(छान्दोग्य उपनिषद्, सम्वत्, 3/11/5-6)*

अर्थात्, पाणिनि कहते हैं कि गुरु-शिष्य एक दूसरे की परस्पर छाते के समान रक्षा करते हैं *(पणशीकर, वी. एल. एस. (सं०), 1985, अष्टाध्यायी 4/4/62)*। भारतीय परम्परा में गुरु का यह दायित्व था कि वह शिष्य का शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास करे, उसे पुत्रवत् स्नेह करे, उसकी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान करे तथा उसे अनेकानेक विद्याएँ प्रदान करे। शिष्य का कर्तव्य था कि वह गुरु की सेवा व आज्ञापालन करे। आचार्य के लिए यह भी आवश्यक था कि वह शास्त्र के अनुकूल स्वयं आचरण करे तदुपरांत शिष्यों को आचरण व शास्त्रज्ञान प्रदान करे। तैत्तिरीय उपनिषद् के 'शिक्षावल्ली' में आचार्य शिष्य के लिए यह प्रार्थना करता है कि

…आमायन्तु ब्रह्मचारिण: स्वाहा । विमायन्तु ब्रह्मचारिण: स्वाहा । प्रमायन्तु ब्रह्मचारिण: स्वाहा । दमायन्तु ब्रह्मचारिण: स्वाहा । शमायन्तु ब्रह्मचारिण: स्वाहा । … *(तैत्तिरीयोपनिषद्, 1/4/2*

अर्थात्, ब्रह्मचारी मेरे पास आएँ। ब्रह्मचारी निष्कपट हों। ब्रह्मचारी यथार्थ ज्ञान धारण करें। ब्रह्मचारी इंद्रियों का दमन करें। ब्रह्मचारी मनोनिग्रही हों।

आचार्य की हार्दिक इच्छा होती थी कि उसका शिष्य ज्ञान, बुद्धि, शील व तपश्चर्या से सर्वथा विभूषित होकर यशस्वी हो। बृहदारण्यक उपनिषद् में यह कथा वर्णित है कि आचार्य व पिता उद्दालक आरुणि जब अपने पुत्र व शिष्य की जिज्ञासा को शांत करने में समर्थ नहीं हो पाए तो उस जिज्ञासा की शान्ति हेतु अपने शिष्य को लेकर महाराज प्रवाहण के पास गए, जहाँ जिज्ञासा का समाधान हुआ *(बृहदारण्यकोपनिषद्, सम्वत् 2071, 6/2/3-8)*। यह कथा बताती है कि गुरु का दायित्व केवल अपने पास उपलब्ध ज्ञान को ही देना मात्र नहीं है, बल्कि शिष्य की जिज्ञासा जैसे भी शान्त हो, उसे अभीष्ट विद्या जैसे भी प्राप्त हो सके, उसके लिए भी उद्योग करना है। गुरु अपने जिज्ञासु शिष्य का अत्यंत सम्मान भी करता था। कठोपनिषद् में उद्धृत यम-नाचिकेता की कथा इसका प्रमाण है। जब नाचिकेता ने यम के द्वार पर तीन दिनों तक प्रतीक्षा की तो उसके उपलक्ष्य में यम ने उसे अत्यंत ही सम्मान के साथ तीन वरदान और ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान किया *(कठोपनिषद्, सम्वत् 2073, 1/2/9, में उद्धृत, ईशादि नौ उपनिषद्)*। ऐसे अन्य कई उदाहरण हैं।

परम्परा में गुरु का शिष्यों के प्रति कर्तव्यों का वर्णन भी कई ग्रंथों में प्राप्त होता है। **उत्तररामचरित** में उद्धृत है-

वितरति गुरु: प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे ।
न च खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।। *(उत्तररामचरितम्, 2/4)*

अर्थात्, गुरु को चाहिए कि अपने सभी शिष्यों के प्रति समान व्यवहार करे। शिष्यों को शिक्षा देने में किसी भी प्रकार का भेद-भाव न करे।

प्रश्नोपनिषद् में उद्धृत कथा में भरद्वाज पुत्र सुकेशा ने कोसलदेश के राजकुमार हिरण्यनाभ से उसके द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर न पता होने के संदर्भ में कहा कि-

नाहमिमं वेद । यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नाऽवक्ष्यमिति । समूलो व एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति ॥ *(प्रश्नोपनिषद, 6/1)* अर्थात्, "मैं इसे नहीं जानता, यदि मैं इसे जानता होता तो तुझे क्यों न बतलाता? जो अपने ज्ञान को छुपा कर मिथ्याभाषण करता है, वह सब ओर से मूल सहित सूख जाता है, अतः मैं मिथ्याभाषण नहीं करता।"

उपर्युक्त कथन गुरु को निर्देशित करता है कि वह अपने शिष्यों के लिए वह सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान करे जो उसके पास है, किसी भी प्रकार के ज्ञान को न छिपाए। प्राचीन काल में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध केवल अध्ययन-काल तक ही नहीं अपितु जीवनपर्यन्त था। विद्या प्राप्त करके घर जाने के बाद भी शिष्य गुरु की सेवा में आते रहते थे और अपने गुरु के लिए कुछ उपहार भी अपने साथ लाते थे *(आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/2/8/22)*। गुरु भी कभी-कभी अपने शिष्यों के घर जाते थे (जातक संख्या 130)। आचार्य आपने शिष्यों के लिए अत्यंत आदरणीय थे और शिष्य आचार्य का सदैव स्नेहपात्र था।

अनुशासन एवं दण्ड:

कभी-कभी आचार्य से प्रवेश के समय शिष्य के चुनाव में भूल भी हो जाती थी जिसका परिणाम यह होता था कि उसे मन्द, अशिष्ट और अनुशासनहीन विद्यार्थी भी मिल जाते थे। उनमें से कुछ ऐसे हठी भी होते थे जिन पर बार-बार कहने का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। ऐसे कुत्सित छात्रों को पाणिनि ने तीर्थकाक (जो अपने तीर्थ अर्थात् गुरु के प्रति काक के समान चंचल व्यवहार करे) की संज्ञा दी है-

> यो गुरुकुलानि गत्वा न चिरविष्टति स उच्चते तीर्थकाक इति । *(पणशीकर, वी. एल. एस. अष्टाध्यायी, 2/1/41)*

विद्यार्जन में मन न लगाने वाले ऐसे अनुशासनहीन विद्यार्थियों को दण्डस्वरूप गुरु आश्रम से हटा देता था या उनसे उपवास करवाता था *(आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/2/8)*। महाराज मनु ने अहिंसापूर्वक कल्याणार्थ उपदेश देने का मार्ग सुझाया है *(कौंडिन्यायन, एस. (सं.), 2008, मनुस्मृति, 2/159)*। अथर्ववेद का मत है कि यदि शिष्य कोई पाप करता है तो उसके लिए गुरु उत्तरदायी होता है *(शिष्यपापं गुरोरपि - सातवलेकर, एस. डी. (सं.), 1943, अथर्ववेद संहिता, 11/3/15)*। अतः शिष्य को अपने तप से आचार्य को तृप्त करना चाहिए *(आचार्यं तपसा पिपर्ति: - सातवलेकर, एस. डी., अथर्ववेद संहिता, 6/108/2)*। शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु के लिए नित्य जल, दातुन, आसन आदि सुलभ कराए। गुरु की सुश्रूषा करना उसका प्रधान कर्तव्य है *(गुरु सुश्रूषया ज्ञान शान्ति योगेन विन्दति - महाभारत, 1958, 5/36/52)*। ब्रह्मचारी गुरु से प्रेरित होने पर और न होने पर भी सदैव अध्ययन व आचार्य के हित का ही कार्य करे *(कौंडिन्यायन, एस. ,मनुस्मृति, 2/191)*।

अगर छात्र यथोचित निर्देशों का पालन नहीं करता है और बारंबार समझाने पर भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो गुरु के लिए यह कहा गया है कि वह उसे शारीरिक दण्ड दे। महर्षि गौतम ने ऐसे छात्रों को दण्ड देने की व्यवस्था की है परन्तु वे दण्ड में कठोरता का समर्थन नहीं करते। उनका मत है कि आचार्य ऐसे विद्यार्थी को रज्जु अथवा छड़ी से दण्ड दे-

> शिष्यशिष्टिर वधेन। अशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्याम् । अन्येन न राज्ञा शास्त्र: ॥ *(गौतमधर्मसूत्राणि, 1/2/48, 53)*

इस प्रकार परम्परा में उद्दंड शिष्य को आचार्य समझाकर या अल्प दण्ड देकर सही मार्ग पर लाने की चेष्टा करता था। यदि उससे भी विद्यार्थी में सुधार नहीं होता था तो उसे आश्रम से बाहर निकाल दिया जाता था।

गुरुकुल में शिष्य के कर्तव्य:

गुरुकुल में विद्यार्थियों को विभिन्न कर्तव्यों का पालन करना होता था। इनमें से कुछ कर्तव्य गुरुकुल के प्रति थे, जो सम्पूर्ण संस्था के हित के लिए होते थे, जिन्हें बाह्य कर्तव्य कह सकते हैं। कुछ कर्तव्य ब्रह्मचारी की निजी उन्नति से सम्बन्धित थे, जिन्हें आंतरिक कर्तव्य कहा जा सकता है। विद्यार्थियों के कर्तव्य इस प्रकार थे- भिक्षाचर्या, अग्न्याधान, समिधाहरण, कुश लाना, पशुचारण, सावित्री साधना, मेधाजनन, संध्यावंदन, अभिवादन, आदेशोपरांत भोजन, गुरु सेवा, दैनिक कर्तव्य निर्वहन, अध्ययन, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचारी हेतु निषेध का समुचित पालन आदि।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा में विद्यार्थी की संकल्पना एक अनूठी संकल्पना है जिसके अनुरूप ही तत्कालीन विद्यार्थियों का विकास होता था। तपश्चर्या व गुरुकृपा से सर्वकल्याणकारी ज्ञान, विवेकवती बुद्धि व सच्चरित्र का अर्जन ही विद्यार्थियों के जीवन का सर्वप्रधान लक्ष्य था। आधुनिक युग के विद्यार्थी इस महान परम्परा से बहुत कुछ अर्जित कर सकते हैं।

डॉ. प्रवीण कुमार तिवारी
सह आचार्य, शिक्षा विभाग
महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय,
बरेली, उत्तर प्रदेश - 243006

सन्दर्भ सूची:

- अल्तेकर, ए. एस. (1968). *प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति*. बनारस: नन्द किशोर एण्ड सन्स.
- अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान (व्याख्याकार: डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी) (2019). दिल्ली: चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान.
- *आपस्तम्बधर्मसूत्र* (1932). बनारस सिटी: जयकृष्ण दास हरिदास गुप्त चौखम्भा संस्कृत सीरिज़ ऑफिस
- *आश्वालायन गृह्यसूत्र* (1909). बम्बई: निर्णय सागर प्रेस.
- *उत्तररामचरितम्* (1925). बम्बई: निर्णयसागर प्रेस.
- *कठोपनिषद्* (सम्वत् 2073). में उद्धृत, *ईशादि नौ उपनिषद्* (पृपृ. 195-339). गोरखपुर: गीताप्रेस.
- *कूर्मपुराण* (2006). गोरखपुर: गीताप्रेस
- कौंडिन्यायन, एस. (सं.) (2008). *मनुस्मृति*. वाराणसी: चौखम्भा विद्याभवन.
- *गौतमधर्मसूत्राणि (हिंदी व्याख्याकार: डॉ. उमेश चन्द्र पाण्डेय)* (1966). वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस.
- *छान्दोग्य उपनिषद्* (सम्वत् 2070). गोरखपुर: गीताप्रेस.
- *तैत्तिरीयोपनिषद्* (सम्वत् 2073). में उद्धृत, *ईशादि नौ उपनिषद्* (पृपृ. 893-1103). गोरखपुर: गीताप्रेस.
- त्रिवेदी, के. डी. (सं.) (1993). *गोपथ ब्राह्मण*. दिल्ली: चौखम्भा.

- *निरुक्तम्* (2006). नई दिल्ली: मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स.
- पणशीकर, वी. एल. एस. (सं०) (1985).*पाणिनीयव्याकरण सूत्रवृति: अष्टाध्यायी सूत्र पाठ*. दिल्ली : चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान.
- पाण्डेय, ओ. पी. (सं.) (1991). *पारस्कर गृह्यसूत्र: हरिहरभाष्य एवं हिंदी*. वाराणसी: चौखम्भा
- *प्रश्नोपनिषद्* (सम्वत् 2073). में उद्धृत, *ईशादि नौ उपनिषद्* (पृपृ. 341-452). गोरखपुर: गीताप्रेस.
- *बोधायनधर्मसूत्र* (1991). वाराणसी: चौखम्भा.
- *बृहदारण्यकोपनिषद्* (सम्वत् 2071). गोरखपुर: गीताप्रेस.
- *महाभारत* (1958). गोरखपुर: गीताप्रेस
- राय, जी. एस. (सं.) (2013). *याज्ञवल्क्य स्मृति: मिताक्षरा टीका सहित*. दिल्ली: चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान.
- *वशिष्ठ धर्मसूत्र* (1916). बम्बई: निर्णय सागर प्रेस.
- वेदमित्र (1964). *एज्यूकेशन इन एंशिएण्ट इंडिया*. दिल्ली: आर्य बुक डिपो.
- शास्त्री, एम. (सं.) (1988). *तैत्तिरीय ब्राह्मण: भट्ट भास्कर भाष्य सहित*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
- श्रीमद्भगवद्गीता (सम्वत् 2060). गोरखपुर: गीताप्रेस.
- सातवलेकर, एस. डी. (सं.) (1943). *अथर्ववेद संहिता*. पारडी: स्वाध्याय मंडल.

वर्तमान युग में मूल्यपरक शिक्षा

डॉ. के.सी.गौड़

प्रस्तावनाः-

मानव जाति एवं सभ्यता की सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि विश्व के समस्त देशों के नागरिकों के बीच मधुर सम्बन्धों, सौहार्द्रपूर्ण वातावरण, सह-अस्तित्व एवं सहिष्णुता की भावना का विकास हो तथा विश्वशान्ति की स्थापना हो। विश्वशान्ति की स्थापना के आदर्श लक्ष्य के लिए शान्ति शिक्षा की अवधारण का जन्म हुआ। मूल्य एवं शान्ति-शिक्षा के महत्व को आज महसूस किया जा रहा है | वर्तमान में इसके प्रचार-प्रसार के लिए बड़े पैमाने पर प्रयास किये जा रहे हैं तथा इसे शिक्षा के स्वरूप के साथ जोड़ा जा रहा है। आदर्श व्यक्तित्व निर्माण के लिए मूल्य शिक्षा तथा मूल्य विकास अनिवार्य संदर्भ हैं |

मूल्य शिक्षा की आवश्यकताः- मूल्य शिक्षा की आवश्यकता सदैव से रही है | आज भी है और कल भी रहेगी । वर्तमान में इसकी आवश्यकता को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है :-

* सर्वमान्य स्वीकृत धारणा है कि बिना मूल्यों के मनुष्यों का आदर्श व्यवहार निर्धारित नहीं हो सकता। मनुष्य के आचार-विचार को सही दिशा देने के लिए मूल्यों की आवश्यकता होती है। मूल्यों में ह्रास का अर्थ है समाज द्वारा स्वीकृत आदर्श एवं मानदण्डों को अपने अन्तःकरण में न उतारना एवं तद्नुरूप आचरण न करना। आज हम पुराने मूल्य छोड़ते जा रहे हैं ,किन्तु नये मूल्यों का निर्धारण नहीं कर पा रहे हैं। अतः चूँकि शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य मूल्य विकास है इसलिए आज मूल्य-शिक्षा अत्यावश्यक है।

मूल्यपरक शिक्षा के उद्देश्य - मूल्यपरक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

* सांस्कृतिक,सामाजिक ,एवं राष्ट्रीय मूल्यों का विकास करना |
* व्यक्तित्व का शारीरिक, बौद्धिक एवं सौन्दर्यात्मक विकास करना ।
* वैज्ञानिक स्वभाव एवं लोकतन्त्रात्मक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का निर्माण।
* अप्रत्याशित परिस्थितियों का सामना करने के लिए आत्मविश्वास का विकास।
* भौतिक, सामाजिक, तकनीकी, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रति जागृति उत्पन्न करना।

* श्रम की भव्यता के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करना।

* धर्म निरपेक्षता एवं सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्धता विकसित करना ।

* देश की एकता, अखण्डता एवं प्रतिष्ठा के लिए समर्पण की भावना का विकास तथा देश के विकास को सुदृढ़ बनाना।

* सच्चरित्र व्यक्तित्व का निर्माण करना |

* अंतरराष्ट्रीय विवेक का विकास।

मूल्य शिक्षा के प्रमुख पद :

मूल्य शिक्षा के तीन प्रमुख पद हैं - संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक । आज स्थिति यह है कि हमें मूल्यों का ज्ञान तो है, परन्तु वे हमारे भावात्मक पक्ष के अंग नहीं हैं अतः उनके अनुसार आचरण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। आज मूल्यों को भावना में उतारने की एवं उन्हें आचरण का आधार बनाने की आवश्यकता है।

सार्वभौमिक मूल्यः- सार्वभौमिक मूल्य के सम्बन्ध में जब चर्चा करते हैं तो ज्ञात होता है कि सार्वभौमिक मूल्य का अभिप्राय अंतरराष्ट्रीय , राष्ट्रीय , मानवीय तथा नैतिक मूल्यों/विचारों का आत्मसातीकरण है | इन सभी के सम्बन्ध में किसी की कोई आपत्ति न हो। सच तो यह है कि विद्वान सार्वभौमिक मूल्यों के विषय में एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान केवल सत्य को सार्वभौमिक मूल्य मानते हैं, कुछ लोग सत्यम् शिवम् सुन्दरम् तथा कुछ लोग प्रेम, शान्ति, अहिंसा और सद्व्यवहार को और कुछ लोग प्रेम, सच्चाई और ईमानदारी को सार्वभौमिक मूल्य मानते हैं । फरवरी, 1999 में भारतीय संसद में प्रस्तुत एस0वी0 चव्हाण समिति के प्रतिवेदन में सत्य, सदाचरण, शान्ति, प्रेम और अहिंसा को सार्वभौमिक मूल्य माना गया है।

आज के संदर्भ में मूल्य शिक्षा की प्रासंगिकता :- आज प्रश्न यह उठता है कि मूल्य शिक्षा किसे तथा कैसे दी जाए ? इस पर विचार करते हुए विद्वानों का विचार है की आज विद्यालयों , महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों में मूल्य शिक्षा को स्थान दिया जाए | मूल्य शिक्षा देने के क्रम में निम्नलिखित सन्दर्भों को ध्यान में रखा जाना चाहिए -

* **मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया** - समाजशास्त्रियों की दृष्टि से मनुष्यों में मूल्यों का निर्माण सामाजीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ होता है। उनका स्पष्टीकरण है कि बच्चा जिस समाज

की सामाजिक क्रियाओं में भाग लेता है, उसी की भाषा सीखता है, उसी के व्यवहार मानदण्डों आदि को अपनाता है और इस प्रकार वह समाज में समायोजन करता है। धीरे-धीरे इनके प्रति स्थायी भाव बन जाता है। यह स्थायी भाव उसके व्यवहार को निर्देशित एवं नियंत्रित करने लगता है और तभी हम कहते हैं कि उनमें उस समाज के अनुरूप यथोचित मूल्यों का निर्माण हो गया है ।

* **मूल्य निर्माण के स्रोत** - समाज, संस्कृति, धर्म, अर्थतन्त्र, राजतन्त्र, विज्ञान एवं तकनीकी तथा अंतरराष्ट्रीय संबंध ।

- **परिवार एवं मूल्य शिक्षाः-** मूल्य आधारित आचरण, कहानी, कथन, रेडियो, टेलीविजन कार्यक्रम विश्लेषण, समाज द्वारा स्वीकृत आचरण की पुष्टि, पुरस्कार एवं दण्ड।
- **समुदाय और मूल्य शिक्षाः** -मूल्य आधारित शिक्षा, मूल्य प्रधान नाटकों का मंचन, जनसंचार के साधनों का प्रयोग, समाज सेवा कार्य, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा ,कष्ट सहन करने के लिए मानसिक तैयारी।
- **विद्यालय और मूल्य शिक्षाः** मूल्य -आधारित विद्यालयी वातावरण, विद्यालय विषयों के शिक्षण के साथ मूल्य शिक्षा, पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन तथा शिक्षकों का आदर्श व्यव्हार ।

मूल्य शिक्षा एवं शिक्षकों के दायित्व :-

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान है। राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था के अनुरूप ही विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास होता है। शिक्षा व्यवस्था की सफलता उसके प्रभावशाली क्रियान्वयन पर निर्भर करती है और यह प्रभावशाली क्रियान्वयन उस देश की सरकार, शिक्षा नीति, प्रशासन, शैक्षिक संस्थाओं व शिक्षकों पर निर्भर है। शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी शिक्षक ही होता है | शिक्षक ही विद्यार्थियों में ज्ञान, संस्कार, मूल्य ,दृष्टिकोण व अभिवृत्तियों का विकास करने वाला होता है। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक ही विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए उत्तरदायी होता है।

सम्पूर्ण विश्व समुदाय के शिक्षकों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह उसके विद्यार्थियों में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार तथा साथ ही उन्हें इसके महत्व को भी समझाए । इसके लिए शिक्षकों को कुछ दायित्वों का भी निर्वहन करना पड़ेगा। इस क्रम में शिक्षकों के दायित्वों को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है -

* सर्वप्रथम विश्व के समस्त देशों के शिक्षकों को शान्ति शिक्षा हेतु स्वयं जागरूकता एवं सहिष्णुता के दृष्टिकोण को अपनाना होगा।

* शिक्षकों द्वारा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों की संस्कृति, धर्म, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित ज्ञान का आदान-प्रदान बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए ताकि विभिन्न देशों के नागरिकों के बीच सहिष्णुता, प्रेम, सौहार्द्र को बढ़ाया जा सके। इसके लिए अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, सेमिनारों व सम्मेलनों को अधिक से अधिक संख्या में आयोजित किया जाना चाहिए।

* मूल्य शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार हेतु शिक्षकों के अध्ययन दल एवं प्रतिनिधित्व दल बड़ी संख्या में एक-दूसरे देशों में भेजे जाने चाहिए।

* मूल्य शिक्षा के लिए प्रसार हेतु शिक्षकों को चाहिए कि वे अपने छात्रों में पड़ोसी व विश्व के अन्य राष्ट्रों से विवादपूर्ण मुद्दों पर सरल, सकारात्मक व सहिष्णुतापूर्ण दृष्टिकोण का विकास करें। उग्रता के स्थान पर सहिष्णुता, विवाद के स्थान पर समझौता, शान्तिपूर्ण हल व शान्तिपूर्ण सम्बन्धों हेतु मानस बनाये जाने हेतु प्रयास किये जाने चाहिए।

* विश्व के सभी देशों के शिक्षकों द्वारा शान्ति एवं निःशस्त्रीकरण पर एक अंतरराष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाना चाहिए।

* शिक्षकों द्वारा मूल्य शिक्षा हेतु नवीन क्षेत्रों में अनुसन्धान, अनुसन्धान पद्धतियों, नवीन गतिविधियों व प्रयासों को क्रियान्वित करना चाहिए। अनुसन्धान के परिणामों को विश्व समुदाय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

* मूल्य शिक्षा की अवधारणा को पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के प्रयोग द्वारा भी विकसित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान होता है। देश की शिक्षा की अवस्थाओं के अनुरूप ही राष्ट्र का विकास होता है। हमारी भारतीय संस्कृति सदैव विश्वबन्धुत्व का नारा देती चली आ रही है । उसके अनुसार "बसुधैव कुटुम्बकम्" अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी ही हमारा परिवार है। सम्पूर्ण मानव चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, प्रदेश, रंग या लिंग के हों , ईश्वर की सन्तान हैं । यह एक ऐसा उदारवादी दृष्टिकोण है, जो मानव को

समस्त संकीर्णताओं से ऊपर उठाकर मानव कल्याण के लिए प्रेरित करता है। विश्व के समस्त देशों के निवासी मेरे बन्धु-बान्धव हैं। हम मिलकर रहें | उपनिषद् में लिखा है - सह नाववतु , सह नौ भुनक्तु , सहवीर्यं करवावहै | सभी मानव प्राणिमात्र को सुख पहुंचाने वाले मानवोचित संकल्पों को ग्रहण करें , किसी के संकल्प का किसी के संकल्प से विरोध न हो, सबके हृदय समान एवं मिले हुए हों, प्रत्येक का मन समता के प्रेम से भरा हो, जिससे सुख व समृद्धि की वृद्धि हो।

मूल्य शिक्षा सम्पूर्ण मानव के कल्याणार्थ वेदों में उद्धृत हैः-

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।"

मूल्य शिक्षा अंतरराष्ट्रीय सहयोग व विश्वशान्ति की स्थापना के लिए एक अवधारणा के रूप में धीरे-धीरे विकसित होती हुई आज एक वट वृक्ष के रूप में पुष्पित व पल्लवित है। आज विश्व का प्रत्येक देश व प्रत्येक नागरिक मूल्य शिक्षा की आवश्यकता को तीव्रता से अनुभूत करता है व इसके बढ़ते महत्व को समझता है। विभिन्न देशों की सरकारों ने मूल्य शिक्षा को शिक्षा की नीति में स्थान देकर इस बात पर मोहर लगा दी है।

इस प्रकार शिक्षक यदि अपने दायित्वों का निर्वहन पूरी लगन, ईमानदारी एवं सक्रियता पूर्वक करे तो हम निश्चित रूप से मूल्य शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मूल्य शिक्षा का प्रसार-प्रचार कर विश्व की जनता को मूल्य शिक्षा के सूत्र में बांधने में सफल हो सकते हैं।

डॉ. के.सी.गौड़

अध्यक्ष ,शिक्षा संकाय
डी.पी.बी.एस. पी.जी. कॉलेज
अनूपशहर- 203390, बुलन्दशहर (उ0प्र0)

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1.शैक्षिक चिन्तन प्रयोग; प्रो0 रमन बिहारी लाल; आर लाल बुक डिपो, मेरठ ,द्वितीय संस्करण 2006-07

2.उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक; डा0 जी0एस0 वर्मा एवं सविता कुमारी; इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ; नवीन संस्करण 2011

3.उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा; प्रो0 एम0एल0 मित्तल; इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस ,मेरठ ,संस्करण 2007

4.उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक; एन0आर0 स्वरूप सक्सेना; डा0 शिक्षा चतुर्वेदी; डा0 के0पी0 पाण्डेय; आर लाल बुक डिपो; संस्करण 2006

5.शिक्षा का सामाजिक आधार, डा0 सीताराम जायसवाल ; प्रकाशन केन्द्र ,रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ; चतुर्थ संस्करण।

6.शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त; डा0 एस0के0 अग्रवाल; राजेश पब्लिशिंग हाउस, शंकर सदन, 729 पी0एल0 शर्मा रोड़, मेरठ; 23 संस्करण 1991-92।

7.शिक्षा एवं भारतीय समाज; डा0 रामपाल सिंह; विनोद पुस्तक मन्दिर ,आगरा; छठा संस्करण, 1986

8.भारतीय शिक्षा सिद्धान्त; सुबोध अदावल; गर्ग ब्रदर्स, प्रयाग; छठा संस्करण ,1966 ।

किन्नरों के शैक्षणिक अधिकारः मानव अधिकारों के सन्दर्भ में

डॉ. प्रियंका सिंह
एवं सुधा मिश्रा

प्रस्तावनाः

अधिकारों की बात की जाय तो मानव अधिकार वे आधारभूत अधिकार तथा स्वतंत्रताएँ हैं जो कि मानव को एक मानव होने के नाते जन्म से प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं को किसी भी सरकार या संस्था के द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। मानव अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं में निम्न तत्व शामिल हैं- समानता का अधिकार, विचार तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जीवन का अधिकार आदि। किसी भी व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का अधिकार, साथ ही अपने लिंग/इच्छा के अनुकूल जीवन जीने का अधिकार भी प्राप्त है|(चावला, 2006)। साधारण शब्दों में कहा जाए तो ये वे अधिकार होते हैं जो जन्म से ही लिंग, निवास-स्थान, जाति, धर्म, रंग, राष्ट्रीयता अथवा अन्य किसी भी श्रेणी के भेदभाव के बिना सभी मनुष्यों को प्राप्त होते हैं। ये सभी के लिए समान होते हैं |किसी के द्वारा मानव अधिकारों में भेदभाव नहीं किया जा सकता। यद्यपि सभी के लिए मानव अधिकार समान होते हैं, परन्तु विश्व में सभी लोग मानव- अधिकारों का समान अनुभव नहीं करते हैं। बहुत से लोग तथा सरकारें इन मानव- अधिकारों की अनदेखी करती हैं | इस कारण लोगों पर अत्याचार होते हुए देखे जाते हैं |

मानव अधिकार :-

1. नागरिक अधिकार, जैसे - जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता, सुरक्षा आदि।
2. राजनीतिक अधिकार, जैसे - कानून का समान संरक्षण तथा कानून के समक्ष समानता।
3. आर्थिक अधिकार, जैसे -कार्य करने का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार तथा समान वेतन पाने का अधिकार।
4. सामाजिक अधिकार, जैसे - शिक्षा का अधिकार तथा अपनी मर्जी से विवाह करने का अधिकार।
5. सांस्कृतिक अधिकार, जैसे - अपनी संस्कृति को मानने तथा उसमें भाग लेने का अधिकार।
6. सामूहिक अधिकार, जैसे - आत्म-निर्णय का अधिकार।

नोटः- तृतीय लिंग (थर्ड जेंडर) के लिए अधिकांशतः किन्नर शब्द प्रचालन में है | लेखिका ने अपने शोध में इसी शब्द का प्रयोग किया है | लेख में प्रयुक्त किन्नर स्गाब्द के प्रयोग के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है |

भारत देश अपेक्षित प्रगति और विकास की दिशा में अग्रसर है। वर्तमान में देश की सकल घरेलू उत्पाद विकास दर भी उच्च स्तर पर चल रही है। मानव विकास सूचकांक में सुधार से भी यह सिद्ध होता है कि भारत दिनों-दिन ऊँचाइयों को छूता जा रहा है और अनेकों कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। परन्तु इस प्रगति और विकास के बावजूद भारत वर्ष में एक समुदाय विशेष सभी अधिकारों, स्वतंत्रताओं, विकास आदि से अछूता है और पृथकता का जीवन व्यतीत कर रहा है। मानव विकास के सूचकांक जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य आदि, मानव के विकास को दर्शाते हैं तथा ये ही वे सूचक हैं जिनसे यह भी प्रदर्शित होता है कि कुछ समूह या समुदाय ऐसे भी हैं जो विकास के इन बिन्दुओं को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं तथा समान रूप से उन्हें शिक्षा नहीं मिल रही है जो कि विकास की राह में बाधा है। अन्य पिछड़े समुदायों की तुलना में किन्नर समुदाय सर्वाधिक पिछड़ा तथा मुख्य धारा का हिस्सा न होकर हासिये पर खड़ा है। संविधान के प्रावधानों तथा सरकार के सकारात्मक प्रयासों जैसे- शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009, आरक्षण व्यवस्था आदि के बावजूद भी किन्नर समुदाय की निम्न सामाजिक स्थिति तथा शैक्षणिक स्तर में उचित सकारात्मक परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है। अभी भी किन्नर समुदाय में शिक्षा का स्तर मात्र 56 प्रतिशत है। अधिकांशतः किन्नर या तो अशिक्षित या बहुत ही कम शिक्षा ग्रहण किए हुए हैं, फलस्वरूप यह समुदाय सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियों में सहभागिता से दूर है। इसके साथ ही स्कूल अध्यापक भी किन्नर समुदाय के बच्चों के साथ असमानता का व्यवहार करते हैं। समाज के लोंगो से दूरी, गरीबी, असमानता का व्यवहार, भेदभाव, लैंगिक दुर्व्यवहार आदि ऐसे कारक हैं जो किन्नर समुदाय के पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी हैं।

किन्नर समुदाय एक ऐसा समुदाय है जिसके पास मूलभूत अधिकार नहीं हैं और ना ही पर्याप्त मात्रा में मूलभूत स्वतन्त्रताएँ है। जनसंख्या की दृष्टि से 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में किन्नरों की जनसंख्या मात्र 04.9 लाख है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद-21, यह बताता है कि किसी भी व्यक्ति को जीवन को जीवन जीने का अधिकार तथा आत्म-निर्णय की स्वतंत्रता दी गयी है। भारतीय संविधान का भाग-3, जिसमें मूल अधिकारों को रखा गया है, राज्य पर बाध्यकारी हैं। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय भी कहता है कि कोई भी व्यक्ति जिस लिंग का है, उसके लिंग का निर्धारण उस व्यक्ति की इच्छा से होना चाहिए न कि परम्परागत दृढ़ पैमाने से। इसीलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 2014 में लिंग निधारण की एक अलग श्रेणी के निर्माण का फैसला सुनाया तथा इस श्रेणी में उन लोंगो को रखा गया जो कि स्वंय को न तो पुरुष मानते हैं और न ही महिला। हालाकि यह वर्ग समाज में वर्षों से मौजूद था, लेकिन माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के

पश्चात् इस वर्ग को समाज में नये तरीके से पहचान मिली है और इस समुदाय के अधिकारों की चर्चा होने लगी है | सरकारी स्तर पर भी इनको अधिकार दिलाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

परिभाषा के रूप में किन्नरः

किन्नर समुदाय को देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है, जैसे कि किन्नर, हिजड़ा, अरावानिस, कोठी, जोगप्पा, शिव-शक्ति, मंगलामुखी आदि। अभी हाल ही में माननीय सुप्रीम कोर्ट (अप्रैल , 2014) ने इस समुदाय को तृतीय लिंग से सम्बोधित किया है। मोटमान्स ने किन्नर समाज को बहुत ही व्यापक रूप में परिभाषित किया है। मोटमान्स सम्भावित निम्न श्रेणियों को अपनी परिभाषा में जगह देते हैं -

1- वे व्यक्ति जो किन्नर समुदाय का हिस्सा हैं | 2- वे व्यक्ति जिनकी शारीरिक पहचान या लैंगिक भूमिका समाज द्वारा अपेक्षित भूमिका या पहचान से भिन्न है | 3- वे व्यक्ति जो अपने निर्धारित लिंग या भूमिका से विपरीत रहना या भूमिका निभाना पसन्द करते हैं | 4- वे व्यक्ति जो विपरीत लैंगिक वेशभूषा और विपरीत लिंग परिवर्तन के इच्छुक होते हैं, सभी किन्नर कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त सरीन नंदा ने सबसे छोटी व सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा दी है। नंदा के अनुसार, किन्नर वे लोग हैं जो ''न तो पुरुष हैं और न ही महिला''। विख्यात किन्नर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी के अनुसार, ''किन्नर वह व्यक्ति है जिसमें नारीत्व गुण हैं लेकिन शरीर से नारी नहीं है अथवा जिसमें पुरुषत्व गुण हैं लेकिन शरीर से पुरुष नहीं होते हैं'' इस समुदाय को जीवन में विभिन्न प्रकार की परेशानियों को सहन करना पड़ता है | यथा-

- पहचान के संकट का सामना करना |
- परिवार तथा समाज द्वारा किए जाने वाले अपमान, शोषण व बहिष्कार को झेलना |
- शिक्षा, स्वास्थ्य एवं लोक सेवाओं से वंचित रहना |
- सामाजिक- सांस्कृतिक कार्यक्रमों से दूर रखा जाना |
- किन्नर समुदाय के पास मूलभूत अधिकारों का अभाव होना |
- राजनीतिक प्रक्रिया तथा निर्णय निर्माण से दूरी |
- सेवाओं का अभाव, भेदभाव, उत्पीड़न, शोषण आदि की अनेकों घटनाओं का सामना।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009:

यह अधिनियम, राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार के द्वारा संचालित अथवा इनकी सहायता से चलने वाले शिक्षण संस्थानों में ''6 से लेकर 14 वर्ष तक के लड़का अथवा लड़की लिंग के बच्चों को प्राथमिक स्तर तक की मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा'' प्राप्त करने का अधिकार देता है। यह अधिनियम जम्मू- कश्मीर राज्य को छोड़कर अन्य सभी राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में लागू है। यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 पर लागू नहीं होता है। संविधान का अनुच्छेद 29 और 30, धार्मिक अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों की स्थापना से सम्बन्धित है। इसके अनुसार एक बच्चा

जो कि अनुसूचित जाति, जनजाति, सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े समूह अथवा सरकार के द्वारा आदेशित समूह से है, लाभान्वित होगा। इस अधिनियम के द्वारा आर्थिक रूप से पिछड़े माता-पिता के बच्चों को लाभ प्रदान किया गया है। इस शिक्षा का खर्च केन्द्र और राज्य प्रावधान बनाकर वहन करेंगे।

किन्नरों की शैक्षणिक स्थितिः

भारत में किसी भी व्यक्ति को शिक्षित तब माना जाता है जब उस व्यक्ति के पास पढने तथा लिखने की क्षमता होती है। इसी आधार पर भारत में शिक्षा का स्तर जांचा जाता है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में शिक्षित लोंगो का प्रतिशत 74.04 है जिसमें 82.14 प्रतिशत पुरुष जबकि 65.46 प्रतिशत महिला जनसंख्या शिक्षित है। इसके विपरीत किन्नर समुदाय में मात्र 56 प्रतिशत किन्नर ही शिक्षित हैं।

शोधार्थी ने स्वंय किन्नर समुदाय के बीच जाकर उनके शैक्षिक विकास पर शोध किया है , जो कि उत्तर प्रदेश राज्य के आगरा शहर में निवास करने वाले 62 किन्नरों पर है | यह शोध जून और जुलाई, 2017 तथा पुनः सितम्बर, 2019 से लेकर फरवरी, 2020 के मध्य सम्पन्न हुआ है। इस शोध को पूर्ण करने के लिए प्राथमिक स्रोतों से एकत्रित किए गए तथ्यों का विश्लेषण करने के पश्चात परिणाम प्राप्त किए गए हैं। प्राथमिक तथ्यों का संकलन साक्षात्कार- अनुसूची की सहायता से पूछे गए प्रश्नों के द्वारा किया गया है। आगरा में रहने वाले 62 किन्नरों की शैक्षणिक स्थिति इस प्रकार है-

सारणी सं. 1

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशतता
शैक्षिक स्थिति कैसी है ?	अशिक्षित	49	79.03
	प्राथमिकशिक्षा	8	12.90
	माध्यमिकशिक्षा	5	8.06
	12वींतक	0	0
	स्नातक	0	0
	परास्नातक	0	0
	कुल-	62	100

सारणी संख्या 1 : आगरा शहर में रहने वाले 62 किन्नरों में से 79.03 प्रतिशत अशिक्षित हैं। मात्र 20.96 प्रतिशत किन्नर ही शिक्षित हैं। इनमें से भी 12.90 प्रतिशत तो केवल प्राथमिक स्तर तक ही शिक्षित हैं, जबकि 8.06 प्रतिशत किन्नरों के पास माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा का ज्ञान है।

माध्यमिक से ज्यादा कोई भी किन्नर पढ़ा-लिखा नहीं है, न ही कोई स्नातक है और न ही परास्नातक।

सारणी सं. 2

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशतता
क्या शिक्षण संस्थानों में प्रवेश आसानी से मिल जाता है	हाँ	11	17.74
	नहीं	2	3.22
	पता नहीं	49	79.03
	कुल	62	100

सारणी संख्या- 2 चूंकि ज्यादातर किन्नर (79.03 प्रतिशत) अशिक्षित हैं, इसीलिए वे इस प्रश्न का उत्तर देने में असहज हैं तथा साफ-साफ नहीं बता पाए कि किन्नरों को शिक्षण संस्थानों में प्रवेश मिलने में किसी प्रकार की दिक्कत तो नहीं आती। 17.74 प्रतिशत किन्नरों का कहना है कि शिक्षण संस्थान किन्नरों को आसानी से प्रवेश दे देते हैं क्योंकि जब वे बच्चे होते हैं तब यह बात स्पष्ट नहीं होती कि प्रवेश के लिए इच्छित बच्चा किन्नर है और माता-पिता भी उस वक्त इस बात का खुलासा नहीं करते हैं। इसके विपरीत 3.22 प्रतिशत किन्नरों का मानना है कि किन्नर बच्चों को स्कूल वाले आसानी से प्रवेश नहीं देते हैं।

सारणी सं. 3

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशतता
शिक्षा न ग्रहण करने के कारण	शिक्षण संस्थान प्रवेश के समय बहाने बनाते हैं	5	8.06
	फीस अधिक होने के कारण प्रवेश नहीं मिला	5	8.06
	गुरुओं ने प्रवेश दिलाने में रुचि नहीं दिखाई	16	25.80
	सरकार/प्रशासन की ओर से सहयोग नहीं मिला	7	11.29
	स्वयं की अनिच्छा के कारण	29	46.77
	कुल-	62	100

सारणी संख्या- 3 : कुल 46.77 प्रतिशत किन्नरों का कहना है कि स्कूल जाने की उनकी स्वयं की अनिच्छा के कारण ही उन्होंने स्कूल में प्रवेश नहीं लिया । द्विलिंगीय समाज के लोग किन्नरों को अजीब सी नजरों से देखते हैं, इसलिए वे समुदाय के बाहर जाकर शिक्षा ग्रहण करने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाए , साथ ही इन लोगों का यह भी मानना है कि पढ़ -लिखकर उन्हें कोई फायदा नहीं

होने वाला है। उनका मानना है कि उन्हें कोई नौकरी तो देता नहीं है और नाच-गाना करने के लिए पढ़ा -लिखा होना जरूरी नहीं है। इसके विपरीत 25.80 प्रतिशत किन्नर कहते हैं कि उनके गुरुओं की अनिच्छा के कारण ही वे पढ़-लिख नहीं पाए । बहुत से किन्नर बच्चे तो कम उम्र में ही समुदाय में आ गये थे | इस कारण इन बच्चों को पढाने-लिखाने का दायित्व समुदाय के गुरुओं का था | इन गुरुओं ने अपना दायित्व संवेदनशीलता से नहीं निभाया। इसके विपरीत 8.06% गुरुओं का कहना है कि पैसों की कमी के कारण वे अपने चेलों को नहीं पढ़ा पाये। इसका गुरुओं को भी खेद है। सरकार अथवा प्रशासन की ओर से इस ओर ध्यान नहीं दिया गया, अन्यथा शायद वे भी शिक्षित हो सकते थे। 11.29 प्रतिशत किन्नरों का यह मानना है कि सरकार तथा प्रशासन की ओर से किन्नरों को किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग नहीं मिला। इन किन्नरों का कहना है कि गरीब लोगों को सरकार सुविधाएँ मुहैया कराती है और कमजोर आर्थिक स्थिति वाले लोगों के बच्चों को भी सरकार की ओर से शिक्षित करवाया जाता है परन्तु सरकार ने किन्नरों को सहायता प्रदान करने के लिए कोई प्रयास नहीं किए । अतः उनके अशिक्षित होने के लिए ये सरकार और प्रशासन को उत्तरदायी मानते हैं।

सारणी सं. 4

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशतता
प्रवेश के पश्चात् शिक्षण संस्थानों में होने वाली परेशानियाँ	शिक्षकगण अपशब्दों का प्रयोग करते थे	8 ;13	61.53
	सहपाठी दुर्व्यवहार करते थे	13 ;13	100
	मौखिक शोषण होता था	13 ;13	100
	शारीरिक शोषण होता था	0	0
	लैंगिक शोषण होता था	5 ;13	38.46
	कुल-	13	100

सारणी संख्या- 4 चूँकि आगरा में रहने वाले 62 में से मात्र 20.96 प्रतिशत किन्नर ही शिक्षित हैं इसलिए इन्हीं 13 किन्नरों में सभी का कहना है कि सहपाठियों के साथ ही साथ शिक्षक उनका मौखिक शोषण किया करते थे तथा सभी 13 किन्नरों का यह भी कहना है कि सहपाठियों ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया | किसी भी किन्नर को बिना किसी गलती के मारा-पीटा नहीं गया जबकि 38.46 प्रतिशत किन्नरों का कहना है कि उनके साथ लैंगिक दुर्व्यवहार भी हुआ था। इनमें से एक के साथ तो इस प्रकार का दुर्व्यवहार उसके शिक्षक के द्वारा ही किया गया ,जबकि 4 किन्नरों के साथ उनके सहपाठियों के द्वारा यह कृत्य किया गया।

सारणी सं. 5

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशतता

अशिक्षित होने के कारण	गृह त्यागने के कारण छूट गयी	13	20.96
	स्कूल का विपरीत माहौल	9	14.51
	गुरुओं की अरुचि	13	20.96
	परिवार की अरुचि	16	25.80
	आर्थिक असम्पन्नता	11	17.74
	कुल-	62	100

सारणी संख्या- 5 आगरा में रहने वाले 62 किन्नरों में 79.03 प्रतिशत किन्नर अशिक्षित हैं | केवल 20.96 प्रतिशत किन्नर ही शिक्षित हैं। किन्नरों के अशिक्षित होने के पीछे महत्वपूर्ण कारणों में से एक कारण जैविक परिवार द्वारा शिक्षा न दिलाना है। जिस परिवार में ये किन्नर बच्चे पैदा हुए, उन्हीं परिवार वालों ने इन्हें शिक्षित करने में कोई रुचि नहीं दिखाई और 25.80 प्रतिशत किन्नर अशिक्षित रह गये। 20.96 प्रतिशत किन्नरों का यह कहना है कि जैविक घर को छोड़ देने के कारण उनकी पढाई भी बीच में ही छूट गयी। जबकि 14.51 प्रतिशत किन्नरों का यह कहना है कि स्कूल के विपरीत माहौल के कारण अपने घर को छोड़ने से पहले ही वे स्कूल जाना छोड़ चुके थे ,जबकि 17.74 प्रतिशत किन्नरों का जवाब है कि वे गरीब जैविक परिवार से हैं और उनके जैविक परिवार के पास इतना पैसा नहीं था कि वे उन्हें पढ़ा-लिखा सकें। अन्ततः समुदाय में आने के बाद 20.96 प्रतिशत किन्नरों का कहना है कि समुदाय के गुरु ने उन्हें शिक्षित करने की ओर ध्यान ही नहीं दिया। तब्बसुम एवं जमील ;2014 का कहना है कि सर्वप्रथम तो परिवार ही अपने बच्चे का लिंग जानने के बाद उसे शिक्षित करने की ओर ध्यान नहीं देता है और दूसरी समस्या आर्थिक स्थिति की भी है। कमजोर आर्थिक स्थिति उन्हें शिक्षा न दिलवा पाने की राह में रोड़ा साबित होती है।

किन्नर समुदाय के सामने चुनौतियाँ :

1- किन्नर समुदाय के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपने स्वयं के परिवार का साथ न देने के कारण आती है। उपर्युक्त अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है कि जिन परिवार के सदस्यों ने अपने किन्नर बच्चे का साथ दिया है वे ही शिक्षा ग्रहण कर पाये हैं | यद्यपि उनकी शिक्षा भी परिवार को छोड़ देने के कारण बीच में ही छूट गयी। किन्नर समुदाय के गुरु अपने शिष्य की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते हैं | इसी कारण किन्नरों की शिक्षा, परिवार त्याग करने के बाद अवरुद्ध हो जाती है।

2- किन्नर बच्चों के अनुसार स्कूल का वातावरण किन्नर समुदाय के प्रतिकूल होता है। स्कूल प्रशासन के द्वारा किन्नर छात्रों के लिए शौच-प्रसाधन के लिए अलग स्थान की सुविधा नहीं दी जाती है। स्कूल यूनिफार्म को पहनना भी इनके सामने परेशानी खड़ी करता है क्योंकि ये स्वंय को न पुरुष मानते हैं और न ही महिला। सहपाठी किन्नर बच्चों का उपहास बनाते हैं तथा स्कूल प्रशासन इस

ओर ध्यान नही देता है। स्कूल में पुरुष अध्यापक किन्नर बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं | यहाँ तक कि इनका लैंगिक शोषण भी किया जाता है। इसी कारण ये स्कूल छोड़ने पर विवश हो जाते हैं।

3- किन्नरों के लिए उनकी पहचान भी एक चुनौती है। सामाजिक रूप से इन पर परिवार का दबाव रहता है कि वे पुरुषों की भांति व्यवहार करें और समाज के सामने पुरुष सदस्यों की भांति ही पेश आयें। पहचान अस्पष्ट हाने के कारण इनका अपमान होता है तथा इनके लिए अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है, जैसे कि 'छक्का' शब्द का प्रयोग।

4- किन्नर समुदाय का स्कूल में समावेशन करना या करवाना राज्य तथा प्रशासन के सामने एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। राज्य तथा स्कूल प्रशासन, समानता के साथ सभी को शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं और न ही राज्य किन्नर समुदाय को शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनुकूल वातावरण ही तैयार कर पा रहा है।

इन सभी चुनौतियों का सामना करते हुए समाज में कुछ किन्नर ऐसे भी हैं जो लोगों के सामने उदाहरण बन गये हैं। 'लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी' देश में एक जाना पहचाना नाम बन गया है, प्रसिद्ध किन्नर है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी ने 2006 में 'वर्ल्ड एड्स कॉन्फ्रेंस ', टोरंटो में भारत की ओर से सक्रिय कार्यकर्ता के तौर पर भाग लिया था। इन्हीं के द्वारा 'अस्तित्व' नाम से पुणे में एक सामाजिक संगठन भी चलाया जा रहा हे जो कि किन्नरों को मजबूत बनाने के लिए कार्य कर रहा है तथा हाल ही में इनके प्रतिनिधित्व में किन्नरों के एक दल ने बनारस जाकर गंगा आरती सम्पन्न की थी। 'मानाबी बन्धोपाध्याय' पश्चिम बंगाल में एक सरकारी कॉलेज में प्रधानाचार्य के रूप में कार्यरत हैं | 'अमृता अल्पेश सोनी' पंजाब, हरियाणा तथा छत्तीसगढ के 'राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण योजना' की अधिवक्ता अधिकारी के तौर पर कार्य कर रही हैं।

उपसंहारः

इस संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है और संसार का अभिन्न अंग है। इसी वजह से रुढ़िवादी सोच के साथ एक समुदाय विशेष अर्थात् किन्नर समुदाय के साथ भेदभाव करना तथा इनका अपमान करना गलत है। अब समय आ चुका है जब देश और देशवासी दोनों ही इस बात को समझें कि देश में प्रत्येक नागरिक और उसके अधिकार बराबर हैं साथ ही 'जियो और जीने दो' के विचार को पूरी तरह से अपनायें। भारतीय संविधान में भी सभी को बराबर माना गया है और सभी को समान अधिकार भी प्रदान किए गये हैं | साथ ही लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव और असमानता को रोकने के लिए राज्यों को निर्देशित किया गया है। इसके बावजूद भारतीय संविधान में किन्नर समुदाय जिनका लिंग अस्पष्ट है, को उपेक्षित श्रेणी में रखा है | संविधान में तृतीय लिंग की चर्चा नहीं है और न ही इनके अधिकारों व स्वतंत्रताओं के बारे में कुछ कहा गया है। अब समय आ गया है जब संविधान में संशोधन किया जाये | समाज के लोंगो

को भी किन्नर समुदाय के प्रति अपना नजरिया बदलने की आवश्यकता है। इसके साथ ही किन्नर समुदाय के लोगों को भी विकास को अपनाते हुए स्वयं को बदलने की आवश्यकता है।

डॉ. प्रियंका सिंह असिस्टेंट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान विभाग
सामाजिक विज्ञान संकाय, दयालबाग शिक्षण संस्थान
(डीम्ड यूनिवर्सिटी), आगरा
सुधा मिश्रा
शोधार्थी , समाजशास्त्र व राजनीति विज्ञान विभाग
सामाजिक विज्ञान संकाय, दयाल बाग शिक्षण संस्थान, आगरा

सन्दर्भ सूची:

- Nanda, S. (1999). Neither man nor woman, the Hijras of India. New Yark. Wadsworth Publishing .co.
- Chawla, Monica(2006). Gender Justice, Woman and Law in India. New Delhi. Deep and Deep Publication Pvt. Ltd.
- Chakrapani, Dr.Venkatesan (2010). Hijras/ Transgender Woman in India : HIV, Human rights and Social Exclusion. From- http://www.hijras-transgender-in-india-hiv-human-rights-andsocial-exclusion-pdf.
- Sinha, Sreoshi (2016). Social Exclusion of Transgender in the Civil Society: A case study of the status of the Transgender in Kolkata. International Journal of Humanities & Social Science Studies. Vol-3, Issue-2 . Page no.- 178-190. From- http://www.ijhsss.com/SocialExclusion:astudykolkata-sreoshi-sinha.pdf.
- AnithaChettair (2015). Problems faced by Transgender in Mumbai with reference to Their Health and Harassment by Police. Internation Journal of Social Science and Humanity. Vol-5, no.-9. Page no.- 752- 759.
- P.S.Vivek (2013). Sexual Accident: Hijra Community in Mumbai. Journals of Eastern Anthropologist. ISSN-0021-8686. Serial Publication Pvt. Ltd. Page no.-329-344. From- http://www.serialsjournals.com/serialjournalmanager/pdf/1406007244.pdf.

- Kumar, Dr.Raj (Nov.2016). Education of Transgenders in India: Status and Challenges. International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS). Vol.-6, Issue- 11. Page no.- 15-24.
- Saxena, P. (2011). Life of a Eunuch. Navi Mumbai. Santa Publishing House.
- Sakshi Raje (2019).Transgender: The Human Rights. From- http://lawtimesjournal.in/transgender-the-human-rights/
- Sara Hilton (2018). India's Relationship with the Third Gender . From- https://sites.uab.edu/humanrights/2018/10/29/indias-relationship-with-the-third-gender/
- Aijaz Ahmad Bund (2013). Other Sex: A Study on problems of Transgender women of District Srinagar. IOSR Journal of Huamanities and Social Science. Vol.- 17, Issue- 2. Page no.- 78-82.
- The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009.pdf. From- legislative.gov.in.
- Tabassum & Jamil (2014). Plight of Marginalized: Educational Issues of Transgender Community in Pakistan. Review of Arts and Humanities. Vol-3 (1). Page no.- 107-119.

वर्तमान युग में राष्ट्रीय सामाजिक समस्याएँ एवं समाधान

डॉ. सुनीता गौड़

प्रस्तावनाः-

भारतीय सामाजिक विचारों का आधार मनुष्य, उसकी अमर आत्मा, मानव धर्म और मानव सेवा, राष्ट्र के उत्थान की आवश्यकता, आध्यात्म और विज्ञान तथा पूर्व और पश्चिम में समन्वय जैसे बिन्दु हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के श्रेष्ठ तत्व , जिनका मूल्य शाश्वत है , उन मूल्यों को अपनाकर ही विश्व में भारत का स्थान सबसे ऊंचा रहा है। दूसरे देश के लोग भी भारत के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का ज्ञान प्राप्त कर भारत से प्रेम करने लगे हैं । यहाँ के लोगों की संस्कृति अत्यन्त विविधतापूर्ण और समृद्ध है | वर्तमान में इस संस्कृति में गिरावट देखी जा रही है | अनेक सामाजिक बुराइयाँ भारतीय समाज के लिए अभिशाप बनकर रह गयी हैं। जाति प्रथा , लिंग भेद,क्षेत्रवाद ,भाषावाद,मूल्य ह्रास ,कट्टर धार्मिकता तथा भ्रष्टाचार आदि सामाजिक बुराइयों ने भारत की छबि को धूमिल किया है | इन समस्याओं के समाधान का प्रयास किया जाना नितांत आवश्यक है |

सामाजिक समस्या का अर्थः-

'सामाजिक समस्या' का अर्थ समझने के लिए हमें सर्वप्रथम 'सामाजिक' शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है। जब भी हम 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा अभिप्राय मानवीय सम्बन्धों, सामाजिक संरचना (ढाँचा) तथा संगठन आदि से होता है। सामाजिक संरचना या मानवीय सम्बन्धों में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें हम सामाजिक समस्याएँ कहते हैं। सामाजिक समस्या सदैव विघटनमूलक होती हैं। इससे सामाजिक संगठन में उथल-पुथल हो सकती है तथा नियमित एवं सामान्य जीवन बुरी तरह से प्रभावित हो सकता है। सामाजिक समस्या केवल किसी विशेष स्थिति की ही सूचक नहीं होती, अपितु उस स्थिति की गम्भीरता के बारे में सामाजिक चेतना या सामाजिक चिन्ता की अभिवृत्ति को भी व्यक्त करती है ।

सामाजिक समस्या वास्तव में वे दशाएँ हैं जो सामाजिक मूल्यों को चुनौती देती हैं | समाज का महत्वपूर्ण भाग उनसे दबाव या तनाव महसूस करता है | समाज के लोग उस दबाव के कारण को जानते हैं और यह विश्वास करते हैं कि सामूहिक प्रयासों से इस

दबाव को दूर किया जा सकता है। सामाजिक समस्या, सामाजिक आदर्श और यथार्थ में अन्तर की सूचक है |अपराध, बाल-

अपराध, मद्यपान, मादक-द्रव्य व्यसन, वेश्यावृत्ति, टूटते परिवार, बेरोजगारी, गरीबी, मानसिक रोग इत्यादि सामाजिक समस्याओं के ही उदाहरण हैं। इन्हें क्षेत्रीय, प्रादेशिक ,देशव्यापी तथा अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है |

सामाजिक समस्या की उत्पत्तिः-

सामाजिक समस्या की उत्पत्ति अनेक कारणों से होती है । जब सामाजिक संगठन में सामंजस्य समाप्त हो जाता है और समाज द्वारा प्रचलित मूल्यों, आदर्शों व नियमों में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो सामाजिक समस्या जन्म लेती है। **जॉनकेन के अनुसार**- "जब कभी समाज द्वारा प्रचलित मूल्यों एवं आदर्शों के प्रतिकूल परिस्थितियाँ विकसित हो जाती हैं तो समस्याएँ जन्म लेने लगती हैं।"

सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति यद्यपि अनेक कारणों एवं परिस्थितियों के फलस्वरूप होती है, फिर भी प्रत्येक सामाजिक समस्या कुछ निश्चित चरणों में से गुजर कर ही विकसित होती है।

फुल्लर एवं मेयर्स ने सामाजिक समस्या के स्वाभाविक एवं प्राकृतिक विकास के चरणों की विस्तृत व्याख्या की है। उनमें से कुछ प्रमुख चरण निम्नवत् हैं-

1. चेतना की स्थिति- सामाजिक समस्या के विकास का प्रथम चरण समाज के व्यक्तियों में सामाजिक व्यवस्था एवं सामान्य जीवन को अवरुद्ध करने वाली कठिनाइयों के बारे में चेतना है।

2. कठिनाइयों का स्पष्टीकरण- द्वितीय चरण में कठिनाइयाँ अधिक स्पष्ट हो जाती हैं और सामान्य जनता इनसे असुविधा महसूस करने लगती है और इनकी ओर स्पष्ट संकेत किया जाने लगता है।

3. सुधार कार्यक्रमों का निर्धारण- समस्या स्पष्ट हो जाने के पश्चात् समाधान के लिए कार्यक्रमों एवं लक्ष्यों के निर्धारण का कार्य तृतीय चरण में होता है।

4. संगठन का विकास- लक्ष्य निर्धारित करने के पश्चात् इन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक लक्ष्य संगठन का विकास किया जाता है तथा एतदर्थ आवश्यक साधनों को एकत्र किया जाता है, ताकि सुधार कार्यक्रमों को लागू किया जा सके।

5. सुधार प्रबन्ध- सामाजिक समस्याओं के स्वाभाविक विकास का अन्तिम चरण इसके समाधान के लिए सुधार कार्यक्रमों को लागू करना है तथा अगर आवश्यक हो तो इसके लिए अनिवार्य संस्था का विकास करना है।

सामाजिक समस्याओं का वर्गीकरण -

समय के आधार पर-

तात्कालिक, अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक

प्रकृति के आधार पर-

बहिर्मुखी - जिन्हें स्पष्टतः देखा जा सकता है; जैसे-निर्धनता, बेराजगारी, अपराध आदि

अन्तर्मुखी -जिन्हें स्पष्टतः देखा नहीं जा सकता है; जैसे- जातीय पूर्वाग्रह, वेश्यावृत्ति, मद्यपान आदि

सामाजिक समस्याओं के कारण

सामाजिक समस्याओं के लिए कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं है ,अपितु प्रत्येक समस्या के पीछे एक जटिल इतिहास रहता है। यथा- बेरोजगारी, आत्महत्या, अपराध आदि समस्याओं के पीछे एक कारण न होकर अनेक कारण होते हैं -

* सामाजिक समस्याएँ मनुष्यों के व्यवहारों ,जो कि अनेक प्राणिशास्त्रीय मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारकों पर निर्भर करता है, में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती हैं । यदि व्यवहार सामाजिक मूल्यों के विरूद्ध होने लगता है तो सामाजिक समस्याएँ पैदा होने लगती हैं।

* सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति होने के कारण प्रायः सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, क्योंकि कई बार व्यक्ति नवीन परिस्थितियों से अनुकूलन करने में असमर्थ होता है।

* सामाजिक समस्या का एक प्रमुख कारण आर्थिक भी है। बेरोजगारी न केवल व्यक्तिगत समस्या है, अपितु यह आर्थिक समस्या भी है।

* अन्धविश्वास एवं भ्रांतियाँ |

सामाजिक समस्याओं का समाधान

सामाजिक समस्याओं का प्रभावकारी समाधान निम्नलिखित है-

1. तनावपूर्ण समस्यात्मक स्थितियों की पुनर्व्याख्या |
2. व्यक्तियों के व्यवहारों में सामाजिक मान्यताओं के अनुसार बदलाव लाना |
3. समस्याजनक व्यवहार पर वैधानिक नियन्त्रण |
4. विद्वानों की सेवाओं का उपयोग |
5. समाजिक संरचना में परिवर्तन |
6. समाजवादी समाज की स्थापना |
7. धार्मिक शिक्षा द्वारा |
8. सामाजिक सेवाएं |
9. मूल अनुप्राणित शिक्षा द्वारा |

निष्कर्ष-

सामाजिक समस्याओं का समाधान इतना आसान नहीं है, जितना प्रतीत होता है। यदि इतना सरल होता तो अनेक समाज समस्याओं से मुक्त हो जाते। अनेक समस्याओं की जड़ें हमारी भ्रांतियाँ एवं अन्धविश्वास हैं। उचित शिक्षा एवं ज्ञान के प्रसार से ऐसे अन्धविश्वासों को समाप्त करने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाया जा सकता है तथा अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। इस सन्दर्भ में यह बात अत्यन्त उल्लेखनीय है कि समस्याओं का समाधान केवल सरकारी प्रयासों द्वारा संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए जन सहयोग एवं जनचेतना जागृत किया जाना परमावश्यक है।

निराकरण कर हर बातों का, सभी बनाएँ स्वच्छ समाज।
कीर्ति-पताका फहराएंगे, मिलकर सभी विश्व में आज।।

डॉ. सुनीता गौड़

असि0 प्रोफेसर (शिक्षा संकाय)
डी.पी.बी.एस. पी.जी.कॉलेज, बुलन्दशहर (उ. प्र.)

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. महाजन, डॉ. धर्मवीर. , डॉ. कमलेश ,2008 : भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएँ, विवेक प्रकाशन. जवाहर नगर, दिल्ली।

2. गुप्ता, एम.एस. एवं शर्मा ,डी.डी. 1987, भारत में सामाजिक परिवर्तन. साहित्य भवन, आगरा।

3. सक्सेना , डॉ.द्वारिका प्रसाद, साहित्यिक निबन्ध, मीनाक्षी प्रकाशन, बेगम ब्रिज, मेरठ4. लाल ,प्रो0 रमन बिहारी, छठा संस्करण 2010-11. भारतीय शिक्षा का विकास एवं उसकी समस्याएँ, रस्तोगी पब्लिकेशन्स. गंगोत्री शिवाजी रोड, मेरठ

5. पाठक ,पी.डी. ग्यारहवां संस्करण- 1991-92. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ ,विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

6. लाल ,प्रो0 रमन बिहारी. द्वितीय संस्करण. 2006-07. शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग ,आर.लाल बुक डिपो, मेरठ

7. सक्सेना, एन.आर. , एवं स्वरूप चतुर्वेदी , डॉ. शिक्षा. पाण्डेय ,प्रो0 के.पी. ,संस्करण 2006. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आर. लाल बुक डिपो ,मेरठ

-------0-------

विविध

ज्ञान चर्चा- 1

प्रभामंडल

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

प्रकृति ने मानव शरीर में एक से बढ़ कर एक विचित्रताएँ भर दी हैं। ऐसी ही एक विचित्रता का नाम है 'आभा'। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के चारों ओर ऊर्जा का एक अदृश्य आवरण फैला रहता है जिसे उस व्यक्ति की आभा कहा जाता है। अंग्रेजी में इस आवरण को 'औरा (Aura)' कहा जाता है। यह आभा वस्तुत: उस व्यक्ति के अन्दर कार्यशील जीवनी शक्ति को परावर्तित करती है । यह ऊर्जा क्षेत्र कुछ उसी प्रकार का है जैसा किसी चुंबक के चारों ओर मौजूद चुंबकीय क्षेत्र का रहता है। चुंबकीय क्षेत्र के समान ही आभा वाले ऊर्जा-क्षेत्र की उत्पत्ति भी उस व्यक्ति के अन्दर होती है । परंतु यह ऊर्जा आस-पास की परिस्थितियों (सराउंडिंग) पर भी निर्भर करती है।

सामान्य तौर पर आभा (औरा) ऊर्जा का एक अदृश्य आवरण है। परन्तु प्रयास करने पर इसे देखा जा सकता है। इसके लिए आप किसी शांत तथा क्षीण प्रकाश वाले कमरे को चुनें । इस कमरे में पहुँचकर आप अपनी आँखों को ऐसा अभ्यस्त बनाएँ कि वह इस कम प्रकाश वाले कमरे में भी धीरे-धीरे देखने लगे। अब आप किसी व्यक्ति को उस कमरे की उजली दीवार के निकट बैठने को कहें। अब आप उस व्यक्ति की ओर दृष्टि डालें। परंतु अपनी नजरों से उस व्यक्ति को न देख उसके सिर से लगभग 10-15 सेंटीमीटर ऊपर देखें। शुरु-शुरु में आपको वहाँ कुछ नहीं दिखायी पड़ेगा। परंतु धीरे-धीरे आप उस व्यक्ति के सिर के ऊपर एक अत्यन्त धुंधला प्रकाश देखेंगे। अब आप अपनी नजरों को उस व्यक्ति के सिर के ऊपर से हटाकर किसी खाली स्थान पर डालें। यदि वहाँ पर धुंधला प्रकाश लुप्त होता हुआ दिखायी पड़े तो आप समझ लें कि आपने उस व्यक्ति की आभा देखी है। इस प्रयोग को आप बार-बार दुहराएं । यदि प्रत्येक बार आपको उपर्युक्त दृश्य दिखायी पड़े तो आप निश्चित रूप से समझ लें कि आपने उस व्यक्ति की आभा (औरा) देख ली है।

अब तो आभा के चित्र खींचने की भी तकनीक विकसित कर ली गयी है । आभा का चित्र खींचने हेतु विशेष प्रकार के कैमरे उपयोग में लाये जाते हैं । आभा का चित्र खींचने की इस विधि को ' किर्लियन फोटोग्राफी ' कहा जाता है । किर्लियन फोटोग्राफी हेतु काम में लाया जाने वाला उपकरण प्रकाश का उपयोग नहीं करता है , बल्कि उस विकिरण स्पार्क का उपयोग करता है जो ऑब्जेक्ट से निकलता है ।

इस प्रकार की फोटोग्राफी में उपयोग में लायी गयी फिल्म के अनुसार व्यक्ति के शरीर के चारों ओर मौजूद आभा का चित्र आ जाता है ।

आभा का चित्र प्राप्त करने की दूसरी विधि को ' इलेक्ट्रो क्रिस्टल थिरैपी 'कहा जाता है । इस विधि की खोज हैरी ओल्डफील्ड नामक एक ब्रिटिश वैज्ञानिक द्वारा आज से लगभग चार दशक पूर्व की गयी थी । इस फोटोग्राफी द्वारा रोगों की पहचान भी की जा सकती है । रोग को पहचानने से इस विधि को "इलेक्ट्रो स्कैनिंग मेथड (ई एस एम) " कहा जाता है । भारत में मुंबई के डॉ. के. एस. यमुना ने आभा की फोटोग्राफी तथा विश्लेषण हेतु इलेक्ट्रो स्कैनिंग मेथड में थोड़ा संशोधन कर एक नयी विधि विकसित की है जिसे ' पोली कंट्रास्ट इंटरफेस फोटोग्राफी (पी.आई.पी) ' कहा जाता है । इस विधि द्वारा अनेक रोगों की पहचान की जा सकती है ।

अध्ययनों से पता चला है कि मानव आभा सात परतों की बनी रहती है । यह आभा उस व्यक्ति के शरीर के चारों ओर तीन -चार फीट की दूरी तक फैली हुई रहती है । कभी - कभी कुछ व्यक्तियों की आभा उनके शरीर से पाँच - छह फीट की दूरी तक फैली हुई दिखायी देती है । इस प्रकार की आभा प्राय: महान आत्मा वाले लोगों में पायी जाती है । ऐसे लोगों में प्राय: बड़े - बड़े सन्यासी तथा सिद्ध पुरुष शामिल हैं ।

मेला या सभा इत्यादि के दौरान जहाँ बहुत लोग एकत्र होते हैं , वहाँ यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के निकट आता है , तो शारीरिक रूप से एक दूसरे से सम्पर्क नहीं होने पर भी उनकी आभाएँ एक दूसरे से टकराती तथा एक दूसरे को प्रभावित करती हैं । यही कारण है कि ऐसे भीड़ वाले स्थानों पर लोग प्राय: बेचैनी का अनुभव करते हैं । परंतु हम यदि किसी महान आत्मा या सिद्ध पुरुष के निकट आते हैं तो उनकी आभा हमारे ऊपर अच्छा प्रभाव डालती है । इस प्रभाव के फलस्वरूप हमारे मन में पैदा होने वाले कुत्सित विचार सुधर सकते हैं तथा हमें रोगों से मुक्ति प्राप्त हो सकती है ।

आभा के अनेक रंग हो सकते हैं । प्रत्येक व्यक्ति की आभा के रंग तथा आकार में समय - समय पर परिवर्तन होता रहता है । आभा का रंग तथा आकार उस व्यक्ति की मानसिक स्थिति ,उसके विचार , उसकी भावनात्मक स्थिति तथा उसके स्वास्थ्य पर निर्भर करता है । यदि हमें कोई बीमारी पकड़ती है तो सबसे पहले वह हमारी आभा पर आक्रमण करती है । आभा पर आक्रमण के दो-तीन महीने बाद बह बीमारी हमारे शरीर को प्रभावित करती है । यदि आभा का अध्ययन करने की क्षमता किसी व्यक्ति में हो तो वह काफी पहले ही अनुमान लगा लेता है कि अमुक व्यक्ति अमुक रोग से ग्रस्त होने जा रहा है । परंतु

आभा का अध्ययन करने तथा उससे कोई निष्कर्ष निकालने की क्षमता प्राप्त करता अत्यन्त कठिन काम है । इस क्षमता को प्राप्त करने के लिए किसी भी व्यक्ति को एकाग्रता पूर्वक तथा धैर्यपूर्वक निरन्तर अभ्यास करना पड़ता है । रॉबर्ट ब्रूस नामक एक ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक ने इस संबंध में काफी अध्ययन किए थे । इन अध्ययनों के फलस्वरूप उसने आभा को देखने तथा उसका विश्लेषण कर रोगों की पहचान करने में काफी सफलता प्राप्त की थी । उसने विचार व्यक्त किया था कि आभा किसी व्यक्ति के शरीर के चारों ओर इंद्रधनुष के समान छायी हुई दिखाई पड़ती है । किसी व्यक्ति की आभा के सामर्थ्य का मूल्यांकन उसके प्रवाहित होने वाली ऊर्जा के परिमाण तथा गुण के आधार पर किया जा सकता है ।

आभा के रंगों का उत्सर्जन रीढ़ में स्थित ऊर्जा केंद्रों से होता है । भारत के प्राचीन यौगिक ग्रंथों में रीढ़ में स्थित इन ऊर्जा केंद्रों को चक्र कहा गया है । इन चक्रों की संख्या आठ बतायी गयी है । हमारी रीढ़ में सबसे नीचे है मूलाधार चक्र जो गुदा द्वार के ठीक पीछे स्थित है । इसके ऊपर है स्वाधिष्ठान चक्र जो मूत्रेंद्रिय के ठीक पीछे स्थित रहता है । इसके ऊपर स्थित है मणिपुर चक्र जो पाकस्थली के ठीक पीछे स्थित है । मणिपुर चक्र के ऊपर स्थित है अनाहत चक्र जो हृदय स्थल के ठीक पीछे स्थित है । इसके ऊपर स्थित है विशुद्धि चक्र जो कंठ के ठीक पीछे स्थित है । इसके ऊपर स्थित है आज्ञा चक्र जो भृकुटी मध्य के निकट स्थित है । इसके ऊपर है बिंदु विसर्ग या सोम चक्र जो शिखा के निकट स्थित है । हमारे सिर के उच्चतम बिंदु पर स्थित है सहस्रार चक्र । अध्ययनों से पता चला है कि जो व्यक्ति जितना ही हीन प्रवृत्ति (काम , क्रोध इत्यादि से ग्रस्त) का होता है । उसकी आभा का मूल स्रोत उतना ही नीचे का चक्र होता है । इसके विपरीत जो व्यक्ति जितना अधिक उच्च विचार का होता है , उसकी आभा का स्रोत उतना ही अधिक ऊपर का चक्र होता है ।

काफी प्राचीन काल से ही हमारे देश के ऋषि -मुनियों ने आभा (औरा) का काफी गहन अध्ययन किया था । उन्होंने आभा के गुणों तथा व्यक्ति के स्वभाव के बीच काफी गहरा संबंध पाया । वे किसी व्यक्ति की आभा के रंग तथा आकार को देखकर अनुमान लगा लेते थे कि कोई व्यक्ति सात्विक प्रवृत्ति का है या तामसी प्रवृत्ति का । एक ही व्यक्ति के आभा के गुण समय-समय पर परिवर्तित होते रहते हैं । उदाहरण के तौर पर जब आप प्रसन्न मुद्रा में रहते हैं तब आपकी आभा का रंग तथा आकार आपकी उस आभा के रंग तथा आकार से भिन्न होगा जब आप क्रोध की मुद्रा में रहते हैं । इसी प्रकार जब आप

मानसिक तनाव में रहते हैं तो आपकी आभा उस आभा से भिन्न होगी जब आप आराम कर रहे होते हैं । आजकल बहुत से ऐसे लोग हैं जो किसी व्यक्ति के निकट पहुंचते ही उसकी आभा को देख लेते हैं तथा उसके विश्लेषण के आधार पर वे उस व्यक्ति के स्वभाव , स्वास्थ्य तथा उसकी मुद्रा का सही अनुमान लगा होते हैं ।

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

हाउसिंग कॉलोनी राजेन्द्र नगर ,के.के.सिंह कॉलोनी
पो.-जमगोड़िया,वाया-जो धाडीह
जिला-बोकारो ,पिन कोड-827013)

ज्ञान चर्चा -2

खिचड़ी - एक सम्पूर्ण और पौष्टिक व्यंजन

सतीश चन्द्र सक्सेना

खिचड़ी एक अत्यन्त पौष्टिक और सुपाच्य व्यंजन है। इसमें पोषक तत्वों का सही संतुलन होता है । चावल, दाल और घी के संयोजन से कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, रेशा (फाइबर) ,विटामिन C , कैल्सियम , फास्फोरस और पोटैशियम प्राप्त होता है । इसमें सब्जियां मिलाने से उसकी पौष्टिकता में वृद्धि हो जाती है। खिचड़ी , पेट और आंतों को स्निग्ध बनाने का भी काम करती है। इसलिए डॉक्टर बीमार व्यक्ति को खिचड़ी खाने की सलाह देते हैं। सुपाच्य होने के कारण खिचड़ी बच्चों और बुजुर्गों दोनों के लिए बेहतर भोजन है। पौष्टिकता से भरपूर खिचड़ी वात , पित्त और कफ से भी बचाव करती है। इसके सेवन से शरीर से आविषी(टॉक्सिक) तत्वों का भी बहिष्कार होता है। यह वजन कम करने में भी सहायक है।

लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए हाल ही में 'वर्ल्ड फूड फेस्टिवल' के अवसर पर कुछ शेफ (रसोइयों) ने दिल्ली के इंडिया गेट पर 800 किलोग्राम खिचड़ी तैयार की थी जो अपने आप में एक विश्व रिकार्ड है। खिचड़ी वर्ल्ड फूड घोषित हो या न हो परतुं इंडिया गेट पर बनी खिचड़ी प्रसिद्ध हो गई । वास्तव में खिचड़ी देश के अलग-अलग प्रांतों में बनाई और खाई जाती है |

खिचड़ी का इतिहास

भारतीय पुरातत्व विभाग के एक सर्वेक्षण में मिले प्रमाण के अनुसार,1200 ई. से पहले भारतीय लोग दाल और चावल मिलाकर खाया करते थे। मगध साम्राज्य के कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने भी खिचड़ी को संतुलित आहार बताया है। बीरबल की प्रसिद्ध खिचड़ी के अलावा भी मुगलों के खिचड़ी खाने की कहानियां प्रचलित हैं । मुगल काल में खिचड़ी एक लोकप्रिय व्यंजन था। सोलहवीं सदी के मुगल बादशाह अकबर के मंत्री अबुल फजल के अपनी पुस्तक आइन-ए-अकबरी अलग-अलग विधियों से खिचड़ी पकाने का उल्लेख है। माना जाता है कि अकबर के बेटे जहांगीर को भी खिचड़ी बहुत पसंद थी। कहा जाता है कि शाहजहां के शाही बावर्ची खाने में कीमा - खिचड़ी पकती थी। कहने का तात्पर्य है कि भारत में सैकड़ों सालों से हर प्रांत में खिचड़ी पकाई और खाई जा रही है।

भारत के अलावा मध्य पूर्व देशों, कई अफ्रीकी देशों, मोरक्को , मिश्र आदि देशों में भी खिचड़ी का प्रचलन है जिनके नाम और बनाने की विधियां अलग-अलग हैं। इतना ही नहीं, खिचड़ी का उल्लेख चरक संहिता में भी मिलता है ।

खिचड़ी जैसे व्यंजन का उल्लेख लगभग 2500 वर्ष पहले एक ग्रीक राजदूत ने भी किया था । माना जाता है कि खिचड़ी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के खिच्चा शब्द से हुई है। खिच्चा चावल और कई दालों को मिलाने से बना एक प्रकार का व्यंजन है।

अलग अलग प्रांतों की खिचड़ी

भारत के लगभग सभी प्रान्तों में खिचड़ी खाई जाती है। खिचड़ी में आपको विभिन्नताएं बहुत मिलेंगी। हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा क्षेत्र में मसाला खिचड़ी बहुत प्रसिद्ध है। यह काले चने, राजमा और छाछ से बनाई जाती है। बाद में इसमें देसी घी और धनिया का तड़का दिया जाता है जो इसके स्वाद को बढ़ा देता है। आंध्र में कीमा खिचड़ी का प्रचलन है। इसमें भी चावल, दाल, कीमा और खड़े मसाले डाले जाते हैं। हैदराबादी इसे इमली, राई और लाल मिर्च से तैयार रसम् के साथ खाना पसंद करते है।

कर्नाटक और तमिलनाडु में बड़े चाव से खाया जाने वाला बिसी बेले भात भी एक तरह की खिचड़ी ही है जिसमें दाल, चावल, मौसमी सब्जियां और इमली रहती है और जीरा, लौंग, इलायची, धनिया, मिर्च और सूखे नारियल का तड़का लगाया जाता है। गढ़वाली खिचड़ी उड़द की दाल, चावल, राई और मसाले से तैयार की जाती है। राजस्थान के खिचड़े में अलग-अलग दाल और खड़े मसालों का प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी खिचड़ी में चावल के स्थान पर गेहूँ या बाजरे का प्रयोग किया जाता है और इसमें भरपूर घी डाला जाता है।

गुजराती राम खिचड़ी का स्वाद अदभुत होता है। यह चावल, हल्दी, नमक और खड़े मसाले से तैयार होती है। इसमें करीपत्ता, राई और हींग का तड़का लगाकर इसे बेसन की कढ़ी के साथ परोसा जाता है। चावल, मूंग की दाल, बीन्स, मूंगफली और खड़े मसालों से तैयार महाराष्ट्र की वलाची खिचड़ी कुछ अलग है। कुछ लोग इसमें दही या इमली का पानी भी मिलाते हैं। चावल और मूंग दाल से बनी पश्चिमी बंगाल की खिचुड़ी हल्की मीठी होती है। बंगाली इसे तली हुई मछली,बैगन भाजा और हरी सब्जियों के साथ खाते हैं ।

खिचड़ी सिर्फ भारतीयों को ही नहीं भाती अपितु इसे अंग्रेज भी पसंद करते हैं। मिस्र, इटली और स्पेन जैसे देशों में भी खिचड़ी की अलग-अलग किस्में हैं। इटली में परोसा जाने वाला रिसोतो भी खिचड़ी का एक रूप है। स्पेन का राष्ट्रीय पकवान पाएला भी रिखचड़ी से ही मिलता-जुलता है। मिस्र की कोशारी भी चावल , मैक्रोनी और दाल से बनती है। इसमें तला हुआ प्याज, चना, टोमैटो सॉस और सिरका ऊपर से डाला जाता है।

वैसे तो खिचड़ी अपने आप में पूर्ण आहार है। इसके साथ किसी अन्य चीज की जरूरत नहीं है। जहाँ तक साज - सज्जा की बात है तो यह कहावत याद आती है कि खिचड़ी के चार यार दही, पापड़, घी और अचार । अर्थात् खिचड़ी के साथ ये उपलब्ध हों तो खिचड़ी

खाने का आनन्द बहुत बढ़ जाता है। खिचड़ी की सम्पूर्णता को देखते हुए , सप्ताह में एक या दो दिन खिचड़ी को अपने आहार में शामिल कीजिए।

खिचड़ी से लोगों का पेट तो भरता ही है। साथ ही यह भाषा में शामिल हो गई है। इस पर कहानी किस्सा और कविताएं भी लिखी गईं । कई मुहावरों में भी इसका प्रयोग किया गया। खिचड़ी की लोकप्रियता के बिना ऐसा संभव नहीं हो सकता।

खिचड़ी से संबंधित कुछ मुहावरे इस प्रकार है:-

बीरबल की खिचड़ी:- अनावश्यक और अप्रत्याशित विलंब

खिचड़ी पकाना:- गुप्त मंत्रणा या साजिश होना या करना

खिचड़ी खाते आस्तीन चढ़ाना:- फर्जी बहादुरी दिखाना

डेढ़ चावल की खिचड़ी:- अपना अलग राग अलापना, अपनी अलग राय रखना

अपनी खिचड़ी अलग पकाना:- अलग-थलग रहना, किसी के सुख-दुख में भागीदार न होना

खिचड़ी करना :- सब कुछ घालमेल करना

खिचड़ी होना:- बाल सफेद हो जाना

नौ-चूल्हे की खिचड़ी:- बार-बार विषय बदलना

बासी खिचड़ी:- अनुपयोगी,बेकार

घी-खिचड़ी:- पूर्णत: मिल जाना

सतीश चन्द्र सक्सेना

बी.बी. 35 F, जनकपुरी , नई दिल्ली-58

पत्रिकाएँ (त्रैमासिक) / Journals (Quarterly)

1- विज्ञान गरिमा सिंधु / Vigyan Garima Sindhu – Sciences, Applied Sciences and Technology

2- ज्ञान गरिमा सिंधु / gyan Garima Sindhu – Humanities and Social Sciences

सदस्यता शुल्क (उपर्युक्त दोनों के लिए) / Persons / Instututions:

प्रति अंक व्यक्तियों/ संस्थानों के लिए **Per Issue- For Individual / Institutions**	रु. 14.00 Rs. 14.00	पौंड 1.64 £ 1.64	डालर 4.84 $ 04.48
वार्षिक चंदा **Annual Subscription**	रु. 50.00 Rs. 50.00	पौंड 5.83 £ 5.83	डालर 18.00 $ 18.00
प्रति अंक विद्यार्थियों के लिए **Per Issue – For Students**	रु. 8.00 Rs. 08.00	पौंड 0.93 £ 0.93	डालर 10.80 $ 10.80
वार्षिक चंदा **Annual Subscription**	रु. 30.00 Rs. 30.00	पौंड 3.50 £ 3.50	डालर 2.88 $ 2.88

बिक्री संबंधी नियम / Rules Regarding Sales

1- आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध होंगे।

The Publications of the Commission are available at the sale counter of the Commission and at the sale counters of Department of Publication, Government of India.

2- सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25% की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75% तक भी छूट जाती है।

A rebate of 25% available on the purchase of all the publications of the Commission. Rebate upto 75% is given on a few old publications.

3- सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी की जाती है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, CSTT, New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं हैं। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं। लेकीन सरकारी संस्थानों, केन्द्रीय उपक्रमों और विश्वविद्यालयों को आदेश प्राप्त होने पर शीघ्र ही भेज दी जाएंगी, परन्तु इनका भुगतान एक माह के अंदर करना होगा।

An invoice is issued by the Commission on the receipt of all types of purchase orders, Bank draft or moey order for the requisite amount should be drawn in favour of the Chairman, CSTT, New Delhi. Cheques are not acceptable. The books are sent only after the receipt of requisite amount but in case of Universities, Government institutions and Government of India Undertaking, the books will be dispatched immediately after receiving the demand of books, for which the payment will have to make within a month.

4- चार किलोग्राम वजन तक सभी पुस्तकें सामान्य डाक / अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैंकिग तथा फॉरवर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

All books weighing upto 4Kg. are sent by ordinary dak/unregistered parcel. No packing and for warding charge is levied on sending these books.

5- चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जा सकती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन- व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही वहन किया जाएगा।

All books weighing more than 4 Kgs. are sent by road transport and the payment of transport charges on it are to be met by the indentor>

6- पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

After sending the books by the road, transport, the original receipt (Bill T) is immediately sent by the Commission to the indentor by registered Post. However, if the books are not got released from the transport office within the stipulated period, all the extra-charges to be levied on it are to be met by the indentor.

7- रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके पुस्तकें ले जा सकते है।

Minimum weighing charge is levied for books sent by road transport that varies based on distance. The concerned institution may also directly Purchase books by making necessary payment to the Sales Unit of the Commission.

8- दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं है। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होगीं।

It will not be possible to supply books by post against the orders received from Delhi and its nearby area. The concerned institution will have to get the books from the Sales Unit of the Commission by making necessary payment.

9- पुस्तकों की पैकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी

जाती हैं। परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह के नुकसान का दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

All care is taken to ensure that the books are properly packed and sent to the indentor in a good condition. The books are sent by ordinary dak/un-registered parcle/road transport. The Commission will not be held responsible for any damage/loss in the transit.

10- सामान्यतः बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकें वापस नहीं होंगी। यदि क्रय राशि का समायोजन-आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

Generally, after issuance of the bill, neither change is allowed in the purchase order nor books are taken back. If need arises to adjust the amount, money will not be returned. However Only books will be supplied against the said amount.

ग्राहक फार्म

सेवा में :

अध्यक्ष,

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,

पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110066

महोदय,

कृपया मुझे "ज्ञान गरिमा सिंधु" (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष /पाँच वर्ष के लिए ..... से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम.....

पूरा .....

.....

भवदीय

(हस्ताक्षर)

	सामान्य ग्राहकों / संस्थाओं के लिए	**विद्यार्थियों के लिए**
प्रति अंक	**रु. 14-00**	**रु. 8-00**
वार्षिक चंदा	**रु. 50-00**	**रु. 30-00**
पाँच व	**रु. 250-00**	**रु. 150-00**
दस वर्ष	**रु. 500-00**	**रु. 300-00**
बीस वर्ष	**रु. 1000-00**	**रु. 600-00**

डिमांड ड्राफ्ट "अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकांउट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी हैतो कृपया निम्न प्रमाणपत्र- भी संलग्न करे :

कृपया डिमांड ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम और पता लिखें

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारीश्रीमती/श्री/ ..... इस विद्यालय/ महाविद्यालयविश्व/विद्यालय के ..... विभाग का छात्रकी/ छात्रा है।

(हस्ताक्षर)

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)

(मोहर)

प्रकाशन विभाग के बिक्री केंद्र

Sales Counters of Department of Publication

1	**किताब महल** **प्रकाशन विभाग**, **बाबा खड़ग सिंह मार्ग**, **स्टेट एम्पोरियम बिल्डिंग**, **यूनिट नं**. 21, **नई दिल्ली**-110001	**Kitab Mahal** Department of Publication, Baba Kharag Sigh Marg, State Emporia Building, Unit No.-21, New Delhi-110001
2	**बिक्री पटल** **प्रकाशन विभाग**, **उद्योग भवन**, **गेट न**.-3, **नई दिल्ली**-110001	**Sale Counter** Department of Publication, Udyog Bhawan, Gate No.-3, New Delhi-110001
3	**बिक्री पटल** **प्रकाशन विभाग**, **लोयर्स चैंबर**, **दिल्ली उच्च न्यायालय**, **गेट न**.-3, **नई दिल्ली**-110001	**Sale Counter** Department of Publication, Lawyers **C**hambers, Delhi Highcourt, New Delhi-110001
4	**बिक्री पटल** **प्रकाशन विभाग**, **संघ लोक सेवा आयोग**, **धौलपुर हाउस**, **नई दिल्ली**-110001	**Sale Counter** Department of Publication, Union Public Service Commissions, Dholpur House, New Delhi-110001
5	**बिक्री पटल** **प्रकाशन विभाग**, **सी.जी.ओ.काम्पलेक्स**, **न्यू मेरीन लाइन्स**, **मुंबई**-400020	**Sale Counter** Department of Publication, C.G.O. Complex, New Marine Lines, Mumbai-400020
6	**पुस्तक डिपो** **प्रकाशन विभाग**, **के.एस.राय मार्ग**, **कोलकाता**-700001	**Pustak Depot,** Department of Publication, K. S. Roy Marg, Kolkata-700001

आयोग का बिक्री केंद्र

Sales Counter of CSTT

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग **शिक्षा मंत्रालय** **पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066.**	**Commission for Scientific and Technical Terminology** **Ministry** of Education **West Block-VII, R. K. Puram,** **New Delhi-110066**

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

For detailed information please contact:

प्रभारी अधिकारी (बिक्री) **वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग** **शिक्षा मंत्रालय** **पश्चिमी खंड**-7, **रामकृष्णपुरम**, **नई दिल्ली**-110066 **फोन नं**.-01126105211/**विस्तार**-246	**The Officer-in-Charge (Sales)** Commission for Scientific and Technical Terminology Ministry of Education West Block-VII, R. K. Puram, New Delhi-110066 Ph. No.-011-26105211/ Extn.-246

ISSN : 2321-0443
UGC Care list Journal

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार
COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY
MINISTRY OF EDUCATION
(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)
GOVERNMENT OF INDIA